गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ

[७१वें जन्म-दिवस की भेंट]

संपादक

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

वाइस-चांसलर

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

[दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर]

पहले संस्करण का वक्तव्य

यह अभिनंदन-ग्रंथ विश्ववंद्य महात्मा गांधी के जन्म-दिवस (आश्विन कृष्ण १२) पर हिन्दी में प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिए हम सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अत्यन्त आभारी हैं। अनुमति देने में श्री राधाकृष्णन् ने एक शर्त रक्खी थी जो उन्हींके शब्दों में इस प्रकार है—

"..You will not make any profit out of it and that the resulting profit will be handed over to me for the relief of distressed Indian students in Great Britain."

("...आप इस पुस्तक से कोई मुनाफा नहीं उठावेंगे और जो मुनाफा होगा उसे विलायत में पढ़नेवाले दीन-दुखी भारतीय विद्यार्थियों के सहायतार्थ मेरे पास भेज देंगे।")

इस शर्त को हमने सहर्ष स्वीकार किया, क्योंकि 'मण्डल' तो एक सार्वजनिक संस्था है। और उसका ध्येय सत्साहित्य का प्रचार करना है, पैसा कमाना नहीं।

अनुमति तो मिली पर काम भारी था। साढ़े तीन सौ पृष्ठों का अनुवाद, छपाई आदि। और इधर समय की कमी। अनुमति २८ सितम्बर को मिली और पुस्तक १० अक्तूबर (चर्खा द्वादशी) को गांधीजी को भेंट करनी थी।

इस दुस्तर भार को उठाने में हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के प्रबन्धक और कार्यकर्ताओं का सहयोग हमें पूर्ण रूप से मिला। जल्दी-से-जल्दी यथासाध्य पुस्तक छाप देने का जिम्मा उन्होंने लिया। अनुवाद के विषय में भी यही रहा। मण्डल के स्नेहियों, मित्रों और कार्यकर्ताओं ने उत्साहपूर्वक अपनी सुविधा-असुविधा का किंचित् विचार किये बिना अपना हार्दिक सहयोग दिया अथक परिश्रम किया और अपना अमूल्य समय दिया। अगर ये सब अपना काम समझकर सहायता को न दौड़ पड़ते तो इस ग्रन्थ का समय पर निकलना असम्भव ही था। अतः हम मण्डल की मित्र-मण्डली और हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के संचालक तथा कार्यकर्ताओं के अत्यन्त आभारी हैं।

देश की महत्त्वपूर्ण समस्याओं में अत्यधिक व्यस्त होने पर भी हमारी प्रार्थना पर पं० जवाहरलाल नेहरू ने वर्धा जाते समय रेल में से इस हिन्दी पुस्तक के लिए कुछ शब्द खास तौर से हिन्दी में लिख भेजे। इसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। इस

प्रकार श्री राधाकृष्णन् का भी हम पर बहुत अहसान है जो उन्होने इस हिन्दी-सस्करण के लिए विशेष रूप से 'भूमिका' लिख भेजी। इसके लिए हम उनके उपकृत है।

अनुवाद के विषय मे भी दो शब्द कहना आवश्यक है। मूल पुस्तक भाषा, विचार और भावो की दृष्टि से बहुत गम्भीर और क्लिष्ट है। पश्चिमी विद्वानो ने महात्माजी को हृदय मे न जान कर बुद्धि द्वारा जाना है। और बौद्धिक ज्ञान प्राय जटिल होता है। दूसरे, उन विद्वानो ने अपने पाश्चात्य वातावरण को सम्मुख रख कर महात्माजी का विवेचन किया है। फलस्वरूप उनके लेखो में ऐसे विदेशी मुहावरे, पारिभाषिक और शास्त्रीय शब्द आये कि जिनका हिन्दी में उल्था करना सुगम काम न था। समय तो कम था ही। सम्भव है अनुवादको और अनुवाद-सम्पादक के सतत प्रयत्नशील और सचेत रहने पर भी इस ग्रथ में कही-कही शका और मतभेद के लिए गुंजाइश रह गई हो। विज्ञ पाठको के ध्यान में यदि कोई ऐसी बात आये तो वे उससे हमें अवश्य सूचित करने की कृपा करें।

यह वक्तव्य हम श्री जैनेन्द्रकुमार को धन्यवाद दिये बिना समाप्त नही कर सकते। सारी पुस्तक का अनुवाद करा लेना तो आसान था, पर सारे अनुवाद को देखना, सम्पादन करना और उसमें सशोधन करना कही अधिक कठिन काम साबित हुआ। यदि श्री जैनेन्द्रकुमार इस समय हमारी सहायता को न आते तो यह चीज इतनी सुन्दर और सम्पूर्ण नही निकल पाती। सारे अनुवाद को उन्होने परिश्रम से रात-दिन एक करके देखा और सशोधन, तथा सपादन आदि का कार्य किया। इसके लिए हम श्री जैनेन्द्रकुमार के अत्यन्त कृतज्ञ है।

अन्त मे कृपालु पाठको से पुन अनुरोध है कि पुस्तक मे यदि छापे-सम्बन्धी या अन्य त्रुटियां रह गई हो तो हमारी समयाभाव की परिस्थिति को ध्यान में रखकर उनके लिए हमे क्षमा करे और उनकी सूचना हमे देने की कृपा करे जिससे उन्हे अगले सस्करण में सुधारा जा सके।

—मंत्री

मेरी झिझक !

[खास तौर से हिन्दी-संस्करण के लिए]

कुछ महीने हुए, श्री राधाकृष्णन् ने मुझे लिखा था कि वह गांधी-जयन्ती के लिए एक किताब तैयार कर रहे हैं, जिसमें दुनिया के बहुत सारे बड़े आदमी गांधीजी के बारे में लिखेंगे। मुझसे भी उन्होंने इस किताब के लिए एक लेख लिखने को कहा था। मैं कुछ राज़ी हुआ, लेकिन फिर भी एक झिझक-सी थी। गांधीजी पर कुछ भी लिखना मेरे लिए आसान बात नहीं थी। फिर मैं ऐसी परेशानियों में फँसा कि लिखना और भी कठिन होगया और आख़िर में मैंने कोई ऐसा मज़मून नहीं लिखा।

मैं यों अक्सर कुछ-न-कुछ लिखा करता हूँ और लिखने में दिलचस्पी भी है। फिर यह झिझक कैसी? कभी-कभी गांधीजी पर भी लिखा है। लेकिन जितना मैंने सोचा यह मज़मून मेरे क़ाबू के बाहर निकला। हाँ, यह आसान था कि मैं कुछ ऊपरी बातें जो दुनिया जानती है उनको दोहराऊँ। लेकिन उससे फ़ायदा क्या? अक्सर उनकी बातें मेरी समझ में नहीं आईं, कुछ बातों में उनसे मतभेद भी हुआ। एक ज़माने से उनका साथ रहा, उनकी निगरानी में काम किया, उनका छापा मेरे ऊपर पड़ा, मेरे ख़याल बदले और रहन का ढंग भी बदला। ज़िन्दगी ने एक करवट ली, दिल बढ़ा, कुछ-कुछ ऊँचा हुआ, आँखों में रोशनी आई, नये रास्ते दिखे और उन रास्तों पर लाखों और करोड़ों के साथ हमक़दम होकर चला। क्या मैं ऐसे शख़्स के निस्बत लिखूँ जोकि हिन्दुस्तान का और मेरा एक जुज़ होगया और जिसने कि ज़माने को अपना बनाया।

हम जो इस ज़माने में बड़े और उनके असर में पले, हम कैसे उसका अन्दाज़ा करें? हमारे रग और रगों में उनकी मोहर पड़ी और हम सब उनके टुकड़े हैं।

जहाँ-जहाँ मैं हिन्दुस्तान के बाहर गया चाहे यूरोप का कोई देश हो या चीन या कोई और मुल्क, पहला सवाल मुझसे यही हुआ— 'गांधी कैसे हैं? अब क्या करते हैं?' हर जगह गांधीजी का नाम पहुँचा था, गांधीजी की शोहरत पहुँची थी। गैरों के लिए गांधी हिन्दुस्तान था और हिन्दुस्तान गांधी। हमारे देश की इज़्ज़त बढ़ी, हैसियत बढ़ी। दुनिया ने तसलीम किया कि एक अजीब ऊँचे दर्जे का आदमी हिन्दुस्तान में पैदा हुआ, फिर से अँधेरे में रोशनी आई। जो सवाल लाखों के दिल में थे और उनको

लेख-सूची

गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ

प्रास्ताविक

गांधीजी का धर्म और राजनीति

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

[वाइसचांसलर, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी]

भूतल पर मनुष्य-जीवन की कथा में सबसे बड़ी घटना उसकी आधिभौतिक सफलतायें अथवा उस द्वारा बनाये और बिगाड़े हुए साम्राज्य नहीं, बल्कि सचाई तथा भलाई की खोज के पीछे उसकी आत्मा की हुई युग-युग की प्रगति है। जो व्यक्ति आत्मा की इस खोज के प्रयत्नों में भाग लेते हैं, उनको मानवी सभ्यता के इतिहास में स्थायी स्थान प्राप्त हो जाता है। समय महान् वीरों को, अन्य अनेक वस्तुओं की भाँति बड़ी सुगमता से भूल चुका है, परन्तु सन्तों की स्मृति कायम है। गांधीजी की महत्ता का कारण उनके वीरतापूर्ण संघर्ष इतने नहीं, जितना कि उनका पवित्र जीवन है, और यह भी कि ऐसे समय में जबकि विनाश की शक्तियाँ प्रबल होती दीख रही हैं वह आत्मा की सृजन करने तथा जीवन देने की शक्ति पर जोर देते हैं।

राजनीति का धार्मिक आधार

[illegible]

इसका जवाब हां भी होगा और नहीं भी। नहीं, इसलिए कि गांधीजी को गुप्ततम अथवा दूरतम कोई भी वाणी कुछ कहती सुनाई नहीं देती। हां, इसलिए कि उनको उत्तर मिला जान पड़ता है, वह अपने आपको ऐसा सन्तुष्ट अनुभव करते हैं कि उनको उत्तर मिल गया हो। वह मिला हुआ उत्तर इतना तर्क-शुद्ध भी होता है कि जिससे वह परख लेते हैं कि मैं अपने ही स्वप्नों या कल्पनाओं का शिकार तो नहीं हुआ। "एक अलक्षणीय रहस्यमय शक्ति है जो वस्तु-मात्र में व्याप्त है। मैं इसे देखता नहीं, परन्तु इसे अनुभव करता हूँ। यह अदृष्ट शक्ति अनुभव द्वारा ही गम्य है। प्रमाणों से इसकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि मेरी इन्द्रियों से गम्य जो कुछ भी है उस सबसे यह शक्ति सर्वथा भिन्न है। इसकी सत्ता बाह्य साक्षी से नहीं, प्रत्युत उन व्यक्तियों के कायापलट से—उनके जीवन व व्यवहार से—सिद्ध होती है, जिन्होंने अपने अन्तःकरण में ईश्वर का अनुभव कर लिया है। यह साक्षी पैग़म्बरों और ऋषियों की अविच्छिन्न शृंखला के अनुभवों से, सब देशों और सब कालों में, निरन्तर मिलती रही है। इस साक्षी को अस्वीकार करना अपने आपको ही अस्वीकार करना है।"[१]

"यह युक्ति या तर्क का विषय कभी नहीं बन सकता। यदि आप मुझे औरों को युक्ति द्वारा विश्वास करा देने को कहें तो मैं हार मानता हूँ, परन्तु मैं आपसे इतना कह देता हूँ—आप और मैं इस कमरे में बैठे हैं, इस सचाई से भी अधिक—मुझे उसकी सत्ता का निश्चय है। मैं यह भी कहता हूँ कि मैं बिना हवा और पानी के जी सकता हूँ, परन्तु उसके बिना नहीं। आप मेरी आँखें निकाल लें, मैं मरूँगा नहीं। आप मेरी नाक काट लें, मैं मरूँगा नहीं। परन्तु ईश्वर में मेरे विश्वास को उड़ा दें तो मैं मरा ही पड़ा हूँ।"[२]

हिन्दू-धर्म की महती आध्यात्मिक परम्परा के अनुसार, गांधीजी दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि जब हम एक बार अपनी पाशविक वासनाओं द्वारा होनेवाले पतन की गहराई से ऊपर उठकर आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं तब जीव-मात्र में सम-दृष्टि हो जाती है। यह ठीक है कि पर्वत-शिखर पर चढ़ने के मार्ग विभिन्न हैं, हम जहां-कहीं हों वहीं से ऊपर को चढ़ना पड़ता है। परन्तु हम सबका लक्ष्य एक ही है। इस्लाम का अल्लाह वही है जो ईसाइयों का गाड और हिन्दुओं का ईश्वर है। जिस प्रकार हिन्दू-धर्म में ईश्वर के नाम अनेक हैं उसी प्रकार इस्लाम में भी अल्लाह के बहुत-से नाम हैं। इन नामों से व्यक्तियों की अनेकता नहीं, बल्कि उनके गुण प्रकट होते हैं। मनुष्य तो अल्प है मगर उसने अपनी अल्पता से ही उस महान् शक्तिशाली परमेश्वर का उसके नाना गुणों द्वारा बखानने का यत्न किया है, यद्यपि वह सर्वथा गुणातीत, वर्णनातीत और मानातीत है। ईश्वर में सजीव विश्वास का परिणाम सब

१ 'यंग इण्डिया', ११ अक्तूबर १९२८
२ 'हरिजन', १६ मई १९३८

अपने साथ बेटे को निछावर कर दिया। ये सब यदि कोरी मनो-कल्पित कथायें हों, तो भी प्रश्न यह है कि उनसे यदि मनुष्यों की किन्हीं दृढ़मूल अन्त प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति नहीं होती तो उनकी सृष्टि ही क्यों की गई ? जितना आप प्रेम करेंगे, उतने ही आप कष्ट-सहिष्णु बनते जायेंगे। अनन्त प्रेम का अर्थ है अनन्त कष्ट सहिष्णुता। "जो कोई अपना जीवन बचायेगा वह उसे खो बैठेगा।" हम यहाँ ईश्वर का काम कर रहे हैं। हमें अपने जीवन का उपयोग उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए करना है। यदि हम ऐसा नहीं करते और अपना जीवन खर्चने की बजाय उसे बचाने का प्रयत्न करते हैं तो हम अपनी प्रकृति के विपरीत आचरण करते और अपने जीवन को खो देते हैं। यदि हमें जहाँतक हमारी दृष्टि जा सकती है वहाँतक पहुँचने के योग्य बनना हो, यदि हमें दूरतक की पुकार पर अमल करना हो, तो हमें सांसारिक अभिलाषा, यश, सम्पत्ति और ऐन्द्रियिक विषयों का परित्याग करना ही पड़ेगा। निर्धनों और जाति-बहिष्कृतों से एकता प्राप्त करने के लिए हमें भी वैसा ही निर्धन तथा बहिष्कृत बनना पड़ेगा। निन्दा-स्तुति की परवा न करके, बेधड़क सत्य कहने तथा करने में और निःशंक होकर सबके प्रति प्रेम तथा क्षमा का बर्ताव करने के लिए, वैराग्य की परम आवश्यकता है। ऐसी स्वतन्त्रता (मुक्ति) उन बन्धन-रहितों के लिए है जो तृण-मात्र का भी स्वामी हुए बिना निखिल जगत का उपभोग करते हैं। इस सम्बन्ध में गांधीजी सन्यासी के उस उच्च आदर्श का पालन कर रहे हैं जो उसे कहीं भी टिककर रहने और जीवन की कोई भी एक प्रणाली स्वीकार करने की इजाजत नहीं देता।

परन्तु जब कभी तपश्चर्या के इस मार्ग पर पूर्णतया अमल करने का उपदेश, केवल सन्यासियों को ही नहीं, मनुष्यमात्र को किया जाता है, तब कुछ अतिशयोक्ति से काम लिया जाता है। उदाहरणार्थ, जननेन्द्रिय का संयम सबके लिए आवश्यक है, परन्तु आजन्म ब्रह्मचारी कुछ ही रह सकते हैं। स्त्री-पुरुष के संयोग का प्रयोजन केवल शारीरिक अथवा ऐन्द्रियिक सुख ही नहीं है प्रत्युत प्रेम प्रकट करने और जीवन-शृंखला को जारी रखने का भी एक साधन है। यदि इससे दूसरों को हानि पहुँचे अथवा किसी की आध्यात्मिक उन्नति में बाधा हो तो यह काम बुरा हो जाता है वरना स्वयं काम में इन दोनों बुराइयों में से कोई भी वर्तमान नहीं है। जिस काम द्वारा हम जीते हैं, प्रेम प्रकट किया जाता है और जीवन-शृंखला बढ़ती है वह लज्जा अथवा पाप का काम नहीं हो सकता। परन्तु जब अध्यात्म के उपदेशक ब्रह्मचर्य पर जोर देते हैं तब उनका अभिप्राय यह होता है कि मन की शक्ति को ऐन्द्रियिक वासनाओं द्वारा नष्ट होने से बचाया जाय।

गांधीजी ने अपना जीवन यथासम्भव सीमातक सरल बनाने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा और जो उनको जानते हैं वे उनके इस दावे का सत्य मानेंगे कि वह सब सम्बन्धियों और अजनबियों, स्वदेशियों और विदेशियों, गोरों और कालों, हिन्दुओं

आदर्श, जिनका कि मनुष्यो को अधिकाधिक बोध होता जा रहा है और उनका तकाज़ा या मतालबा, ये सब उन विघ्न-बाधाओ के विरुद्ध सर्वसाधारण मनुष्य के विद्रोह के चिन्ह है जो उसे रोक रखने और पीछे खींचने के लिए अर्से से जमा हो रही थी। स्वतन्त्रता के लिए अधिकाधिक जागरूक होते जाना मानवीय इतिहास का सार है।

हम बहुधा अपवाद-स्वरूप घटनाओ को, उनके बिगडे हुए रूप में देखकर, आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे देते हैं। हम भलीभाति यह नही समझते कि कभी-कभी व्यतिक्रम हो जाने की घटनाये, अन्धेरी गलियाँ और घोर आपत्तियाँ सदियो से चली आ रही साधारण प्रवृत्ति का एक अग-मात्र है और इनको उक्त प्रवृत्ति के पृष्ठ-भाग पर रखकर ही देखना चाहिए। यदि हम मानव-जाति के सतत प्रयत्न का कही एकान्त अवलोकन कर पाते तो हम अत्यन्त चकित और प्रभावित रह जाते। गुलाम आज़ाद हो रहे हैं, काफिरो को अब जिन्दा जलाया नही जाता, जागीरदार अपने परम्परागत अधिकारो को छोडते जा रहे हैं, गुलामो को लज्जापूर्ण जीवन से मुक्ति मिल रही है, सम्पत्तिशाली अपनी सम्पन्नता के लिए क्षमा-याचना कर रहे हैं, सैनिक साम्राज्य शान्ति की आवश्यकता बतला रहे हैं, और मानव-जाति की एकता तक के स्वप्न देखे जा रहे है। हाँ, आज भी हम शक्तिशालियो का ऐश्वर्य-भोग, धूर्तों की ईर्ष्या, मक्कारो की दग़ाबाज़ी, और दर्पपूर्ण जातीयता तथा राष्ट्रीयता का उदय देख रहे हैं। परन्तु जिस किसी को प्रजातन्त्र की महती परम्परा आज सर्वत्र व्याप्त होती दृष्टिगोचर न हो, वह अन्धा ही होगा। उन लोगो के प्रयत्न और परिश्रम अथक है जो एक ऐसा नया ससार निर्माण करने में लगे हुए हैं जिसमें ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी अपने घर में पर्याप्त भोजन, प्रकाश वायु और धूप का तथा जीवन में आशा, प्रतिष्ठा व सुन्दरता का उपभोग कर सकेगा। गाधीजी मानव-जाति के प्रमुख सेवियो में से है। बिलकुल सामने ही खडी आपत्तियो को देखते हुए वह सुदूरवर्ती भविष्य की कल्पना से सन्तुष्ट नही हो सकते। वह तो बुराइयो के सुधार और आपत्तियो के निवारण के लिए दृढ विश्वासवाले व्यक्तियो के साथ मिलकर, यथासम्भव प्रत्यक्ष तथा सीधे उपायो द्वारा काम करना पसन्द करते है। प्रजातन्त्र उनके लिए वाद-विवाद की वस्तु नही, एक सामाजिक वास्तविकता है। दक्षिण अफ्रीका और भारत की तमाम सार्वजनिक कार्रवाइयाँ तभी समझ मे आ सकती है जब हम उनके मानव-प्रेम को जान ले।

यहूदियो के साथ नाज़ियो के व्यवहार ने समस्त सभ्य ससार बिलकुल हिल गया है, और उदार राजनीतिज्ञो ने जाति-पक्षपात के पुन फूट पड़ने पर गम्भीरतापूर्वक अपना खेद तथा विमति प्रकट की है। किन्तु यह एक विचित्र परन्तु आश्चर्यजनक सचाई है कि ब्रिटिश साम्राज्य और अमेरिका के सयुक्त-राज्यो-जैसे प्रजातन्त्री देशो में भी अनेक जातियो को केवल जातीय कारणो से राजनैतिक तथा सामाजिक रुकावटो का सामना करना पड़ रहा है। गाधीजी जब दक्षिण अफ्रीका में थे

और अन्य धर्मावलम्बी मुस्लिम, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि भारतीयों में कोई भेद नहीं करते।" वह कहते है, "मै यह दावा नही करता कि यह मेरा विशेष गुण है, क्योकि यह तो मेरे किसी प्रयत्न का परिणाम होने की अपेक्षा मेरे स्वभाव का ही अंग रहा है, जबकि अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि अन्य परम धर्मों के विषय में मैं खूब जानता हूँ कि मुझे उनकी प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना पड़ा है।"[१]

केवल शुद्ध हृदयवाला ही ईश्वर से और मनुष्य से प्रेम कर सकता है। सहन-शीलता-युक्त प्रेम आध्यात्मिकता का एक चमत्कार है। इसमें यद्यपि दूसरों के अन्याय हमें अपने कन्धों पर झेलने पड़ते है, तथापि उसमे एक ऐसे आनन्द का अनुभव होता है जो शुद्ध स्वार्थमय सुख की अपेक्षा भी अधिक वास्तविक तथा गहरा होता है। ऐसे अवसरों पर ही ज्ञान होता है कि संसार में इस ज्ञान से बढ़कर मधुर अन्य कुछ नहीं कि हम किसी दूसरे को क्षणभर सुख दे सके, इस भावना से बढ़कर मूल्यवान अन्य कुछ नहीं कि हमने किसी दूसरे के दुःख में भाग बँटाया। अहंकार-रहित, गर्व-शून्य, भलाई करने के गर्व से भी शून्य, पूर्ण दयालुता ही धर्म का सर्वोच्च रूप है।

मानवता की भावना

यह स्पष्ट होगया कि आध्यात्मिकता की कसौटी प्राकृतिक संसार से पृथक् हो जाना नहीं, प्रत्युत यहीं रहकर सबसे प्रेम रखते हुए कर्म करना है। **यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानत।**" अपने पड़ोसी से अपने समान ही (आत्मैव) प्रेम करो। यह शर्त निरपवाद है। जीव-मात्र को स्वतन्त्रता और स्थिति की समानता प्राप्त होनी चाहिए। इस शर्त की पूर्ति के लिए विश्वभर में स्वतन्त्र मनुष्य-जाति की स्थापना तो परम आवश्यक है ही, जो इसे स्वीकार करेंगे उनके लिए जाति और धर्म, धन और शक्ति, और वर्ग और राष्ट्र के कृत्रिम बन्धनों को छिन्न-भिन्नकर देना भी आवश्यक होगा। यदि एक गिरोह या राष्ट्र दूसरे को बरबाद करके आप सुरक्षित होने का, जर्मन चैकों को बरबाद करके, जमींदार काश्तकारों को बरबाद करके और पूंजी-पति मजदूरों को बरबाद करके आप सुखी होने का यत्न करें तो वह उपाय प्रजातन्त्र-विरोधी होगा। इस प्रकार के अन्याय की हिमायत केवल शस्त्र-बल से ही की जा सकती है। [illegible] वर्ग को सदा अधिकार छिन जाने का भय रहता है और पीड़ित वर्ग स्वभावतः हृदय में क्रोध का संग्रह करता रहता है। इस अप्राकृतिक अवस्था का अन्त त्याग द्वारा ही हो सकता है—त्याग भी ऐसा जो मनुष्य-मात्र के समाना-धिकार को स्वीकार करता हो। [illegible] मानवी बन्धुता की स्थापना करने की दिशा में [illegible] संसार के [illegible] बढ़ने के जो प्रसंग होते देखे गए हैं वे स्वार्थ, असमानता तथा शोषण से उत्पन्न होते हैं।

१. 'महात्मा गांधी—हिज़ ओन स्टोरी', पृष्ठ २०१

आदर्श, जिनका कि मनुष्यों को अधिकाधिक बोध होता जा रहा है और उनका तकाजा या मतालबा, ये सब उन विघ्न-बाधाओं के विरुद्ध सर्वसाधारण मनुष्य के विद्रोह के चिन्ह हैं, जो उसे रोक रखने और पीछे खींचने के लिए अर्से से जमा हो रही थीं। स्वतन्त्रता के लिए अधिकाधिक जागरूक होते जाना मानवीय इतिहास का सार है।

हम बहुधा अपवाद-स्वरूप घटनाओं को, उनके बिगड़े हुए रूप में देखकर, आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे देते हैं। हम भलीभांति यह नहीं समझते कि कभी-कभी व्यतिक्रम हो जाने की घटनायें, अन्धेरी गलियां और घोर आपत्तियां सदियों से चली आ रही साधारण प्रवृत्ति का एक अंग-मात्र हैं, और इनको उक्त प्रवृत्ति के पृष्ठ-भाग पर रखकर ही देखना चाहिए। यदि हम मानव-जाति के सतत प्रयत्न का कहीं एकान्त अवलोकन कर पाते तो हम अत्यन्त चकित और प्रभावित रह जाते। गुलाम आज़ाद हो रहे हैं, काफ़िरों को अब ज़िन्दा जलाया नहीं जाता, जागीरदार अपने परम्परागत अधिकारों को छोड़ते जा रहे हैं, गुलामों को लज्जापूर्ण जीवन से मुक्ति मिल रही है, सम्पत्तिशाली अपनी सम्पन्नता के लिए क्षमा-याचना कर रहे हैं, सैनिक साम्राज्य शान्ति की आवश्यकता बतला रहे हैं और मानव-जाति की एकता तक के स्वप्न देखे जा रहे हैं। हां, आज भी हम शक्तिशालियों का ऐश्वर्य-भोग, धूर्तों की ईर्ष्या, मक्कारों की दग़ाबाज़ी, और दर्पपूर्ण जातीयता तथा राष्ट्रीयता का उदय देख रहे हैं। परन्तु जिस किसी को प्रजातन्त्र की महती परम्परा आज सर्वत्र व्याप्त होती दृष्टिगोचर न हो वह अन्धा ही होगा। उन लोगों के प्रयत्न और परिश्रम अथक हैं जो एक ऐसा नया संसार निर्माण करने में लगे हुए हैं जिसमें ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी अपने घर में पर्याप्त भोजन, प्रकाश, वायु और धूप का तथा जीवन में आशा, प्रतिष्ठा व सुन्दरता का उपभोग कर सकेगा। गांधीजी मानव-जाति के प्रमुख सेवियों में से हैं। बिल्कुल सामने ही खड़ी आपत्तियों को देखते हुए वह सुदूरवर्ती भविष्य की कल्पना से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। वह तो बुराइयों के सुधार और आपत्तियों के निवारण के लिए दृढ़ विश्वासवाले व्यक्तियों के साथ मिलकर यथासम्भव प्रत्यक्ष तथा सीधे उपायों द्वारा काम करना पसन्द करते हैं। प्रजातन्त्र उनके लिए वाद-विवाद की वस्तु नहीं एक सामाजिक वास्तविकता है। दक्षिण अफ्रीका और भारत की तमाम सार्वजनिक कार्रवाइयां तभी समझ में आ सकती हैं जब हम उनके मानव-प्रेम को जान लें।

यहूदियों के साथ नाज़ियों के व्यवहार से सम्पूर्ण सभ्य संसार बिल्कुल हिल गया है और उदार राजनीतिज्ञों ने जाति-पक्षपात के पुनः फूट पड़ने पर गम्भीरतापूर्वक अपना खेद तथा विरक्ति प्रकट की है। किन्तु यह एक विचित्र परन्तु आश्चर्यजनक सचाई है कि ब्रिटिश साम्राज्य और अमेरिका के संयुक्त-राज्यों-जैसे प्रजातन्त्री देशों में भी अनेक जातियों को केवल जातीय कारणों से राजनैतिक तथा सामाजिक रुकावटों का सामना करना पड़ रहा है। गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका में थ

तव उन्होने देखा कि नाम को तो भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतन्त्र नागरिक थे, परन्तु उनको भारी रुकावटो का सामना करना पडता था। धर्माधिकारी और राज्याधिकारी दोनो ही गैर-यूरोपियन जातियो को समानाधिकार देने को राजी नही थे, तव गाधीजी ने इन अत्याचारपूर्ण पावन्दियो का प्रतिवाद करने के लिए सामूहिक-रूप से अपना निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उनका मूलभूत सिद्धान्त यह था कि मनुष्य मनुष्य समान है और जाति तथा रग की विना पर कृत्रिम भेदभाव करना तर्क तथा नीति के विरुद्ध है। उन्होने भारतीय समाज को वतलाया कि उसका सचमुच कितना पतन हो चुका है और उसमें आत्म-प्रतिष्ठा तथा आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत की। उनका प्रयत्न भारतीयो के सुख तक ही सीमित नही रहा। उन्होने अफ्रीका के मूल-निवासियो के शोषण को और भारतीयो के साथ, उनकी ऐतिहासिक सस्कृति के आधार पर, कुछ अच्छे व्यवहार को भी उचित नहीं माना। भारतीयो के विरुद्ध अधिक आपत्तिजनक भेदभावपूर्ण कानून तो उठा दिये गये, परन्तु आज भी भारतीयो पर ऐसी अनेक अपमानकारक पावन्दियाँ लगी हुई है, जो न तो उनके सामने झुक जानेवालो के लिए प्रशसा की वस्तु है और न उन्हे लागू करनेवाली सरकार की शान को ही वढाती हैं।

भारत में उनकी महत्वाकाक्षा यह थी कि देश के आन्तरिक भेदभावो और फूट को मिटाकर जनता को स्वाश्रय के लिए एक नियम में लाया जाय, स्त्रियो को उठाकर पुरुषो के वरावर राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक धरातल पर विठाया जाय, राष्ट्र को विभक्त करनेवाले धार्मिक घृणा-द्वेषो का अन्त किया जाय, और हिन्दू-धर्म को अस्पृश्यता के सामाजिक कलक से मुक्त किया जाय। हिन्दुत्व पर से यह धव्वा धोने में उनको जो सफलता प्राप्त हुई है, वह मानव-जाति की उन्नति को उनकी एक महत्तम देन के रूप में स्मरण की जायगी। जवतक अछूतो की पृथक् श्रेणी रहेगी, गाधीजी उसीमें रहेगे। "यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं अछूत के घर जन्मना चाहूँगा, ताकि मैं उनके दु ख-दर्द मे, उनके अपमान मे भाग ले सकूँ, और अपने आपको तथा उनको उस दयनीय अवस्था से छुडाने का यत्न कर सकूँ।' यह कहना कि हम अदृश्य ईश्वर को प्रेम करते है और साथ ही उसके जीवन द्वारा अथवा उससे प्राप्त जीवन द्वारा जीनेवाले मनुष्यो मे क्रूरता का वर्ताव करना, अपनी वात को आप ही काटना है। यद्यपि गाधीजी कट्टर हिन्दू होने का अभिमान करते हैं, तथापि जात-पाँत की कठोरताओ व कठिनताओ की, अस्पृश्यता के अभिशाप की, मन्दिरो के अनाचार की, और पशुओ तथा प्राणि-जगत् पर होनेवाली क्रूरता की तीव्र आलोचना करनेवाला भी उनसे वढ-कर कोई नहीं हुआ। "मैं सुधारक तो पूरा-पूरा हूँ परन्तु मैंने जोश मे आकर हिन्दुत्व के एक भी मूल तत्त्व का निषेध नही किया।"

आज वह भारतीय राजाओ की स्वेच्छाचारिता का विरोध कर रहे है। और

इसका कारण इन राजाओ की करोडो प्रजा के प्रति उनका प्रेम है उदारतम निरीक्षक भी यह नही कह सकता कि रियासतो में सब कुछ ठीक है। मैं यहाँ कलकत्ता के एक ब्रिटिश स्वार्थों के प्रतिनिधि पत्र "स्टेट्समैन' से कुछ वाक्य उद्धृत कर दूँ— "कई रियासतो की दशा भयकर है, यह कहकर हम व्यक्तियो की निन्दा नही कर रहे, केवल मनुष्य की प्रकृति को प्रकट कर रहे है। अच्छे और बुरे, दोनो ही प्रकार के जागीरदार किसी कानून के पाबन्द नही है। जिन्दगी और मौत की ताकत उनके हाथ में है। यदि वे लालची, ज़ालिम और पापी हो तो उनके लालच, पाप और ज़ुल्म के रास्ते में कोई भी रुकावट नही। यदि छुटभैये अत्याचारियो की रक्षक सन्धियाँ नही बदली जायेंगी, यदि अरक्षणीय की रक्षा करने की सर्वोच्च सत्ता की ज़िम्मेदारी केवल एक सम्मान की वस्तु रहेगी, तो एक न एक दिन एक अनिरोध्य शक्ति की टक्कर एक अचल वस्तु से होकर रहेगी और इस समस्या के शास्त्रोक्त उत्तर के अनुसार कोई वस्तु धूल में मिले बिना न रहेगी।" विकास की मन्दगति सद क्रान्तियो का कारण होती है। गाधीजी राजाओ के परममित्र है। इसी कारण वह उनको जागने और अपना घर ठीक कर लेने के लिए कह रहे है। मुझे आशा है कि वे समय बीतने से पहले ही समझ लेगे कि उनकी सुरक्षितता तथा स्थिरता, उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-पद्धति का शीघ्र सूत्रपात कर देने में ही है। सर्वोच्च सत्ता (ब्रिटिश सरकार) तक को, अपनी सब शक्ति के रहते, ब्रिटिश भारत के प्रान्तो में इसे जारी कर देना पडा है।

भारत मे ब्रिटिश शासन पर गाधीजी का सबसे बडा आक्षेप यह है कि इसने गरीबो का उत्पीडन होने लगा है। इतिहास के आरम्भ से ही भारत अपने धन और सम्पत्ति के लिए सर्वविदित रहा है। हमारे पास अत्यन्त उपजाऊ भूमि के विस्तृत क्षेत्र है, प्राकृतिक साधनो की अक्षय्य प्रचुरता है, और यदि उचित सावधानता तथा ध्यान से काम लिया जाय तो हमारे पास एक-एक स्त्री, पुरुष और बालक के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त सामग्री है। तो भी हमारे देश मे लाखो आदमी निर्धनता के शिकार हो रहे है, उनके पास भरपेट खाने को अन्न नही और रहने को ठीक-ठीक मकान नही, बचपन से बुढापे तक निरन्तर सघर्ष ही उनका जीवन है और अन्त को मृत्यु ही आकर उनके दुखी हृदय को शान्त करके उनकी रक्षा करती है। इन अवस्थाओ का कारण प्रकृति की क्रूरता नही, परन्तु वह अमानुषिक पद्धति है, जो न केवल भारत के बल्कि समस्त मानव-जाति के नाश के लिए स्वय अपने मिट जाने की पुकार कर रही है।

सन् १९३१ मे गाधीजी ने लन्दन से अमरीका को जो भाषण ब्रोडकास्ट किया था, उसमे उन्होने "उन्नीस-सौ मील लम्बे और पन्द्रह-सौ मील चौडे भूभाग पर फैले हुए सात लाख गाँवो मे जगह-जगह बिखरे पडे करोडो अध-भूखो का भी जिक्र किया था। उन्होने कहा था—

"यह एक दुखभरी समस्या है कि ये सीधे-सादे कमजोर दिल [illegible]

झुकी हुई गर्दन लेकर संसार मे आये हैं। हमारी वर्तमान निष्फलता, निराशा और परेशानी के नीचे जनता का बड़ा भाग आज भी वास्तविक स्वतन्त्रता व सच्चे आत्म-सम्मान के पुराने स्वप्न की पूर्ति का तथा ऐसे जीवन का भूखा हो रहा है जिनमे न कोई अमीर होगा न गरीब, जिसमे सुख व फुरसत की अतिशयता की समाप्ति करदी जायगी और जिसमे उद्योग तथा व्यापार सीधे-सादे रूप मे रहेगे।

गांधीजी का लक्ष्य ऐसा किसान-समाज नही है, जो मशीन के लाभो का सर्वथा परित्याग कर देगा। वह बड़े पैमाने पर उत्पादन के भी विरोधी नहीं हैं। उनसे जब यह प्रश्न किया गया कि क्या घरेलू उद्योग-धंधो और बड़े कल-कारखानो में समन्वय हो सकता है, तब उन्होने कहा, "हां, यदि उनका संगठन ग्रामो की सहायता के लिए किया जाय। बुनियादी-व्यवसाय, ऐसे व्यवसाय जिनकी राष्ट्र को आवश्यकता है, एक जगह केन्द्रित किये जा सकते हैं। मेरी योजना के अनुसार तो जो वस्तु ग्रामो मे भली-भांति उत्पन्न हो सकती है वह शहरो मे पैदा नहीं करने दी जायगी। शहरो को तो गांव की पैदावार की बिक्री का केन्द्र रहना चाहिए।' खादी पर बार-बार जोर देने मे और शिक्षण की अपनी योजना का आधार दस्तकारी को बनाने मे भी उनका प्रयोजन ग्रामो का पुनरुद्धार ही है। वह बार-बार चेतावनी देते हैं कि भारत उसके कुछ शहरो मे नही, उसके अनगिनत गावो मे ही मिलेगा। भारत की भारी जनता को पुन: लौटकर भूमि का ही सहारा लेना चाहिए, भूमि पर ही रहना और भूमि की ही पैदावार से अपना निर्वाह करना चाहिए, ताकि उसके परिवार स्वावलम्बी बन जावें। जिन औजारो से वे काम करते हैं, जिस खेत को वे जोतते हैं और जिन घर मे वे रहते हैं उन सबके वे स्वय मालिक हो। देश के सांस्कृतिक सामाजिक, आर्थिक और राज-नैतिक जीवन पर घर-बार से बिछुड़े व जगह पड़े रहनेवाले कारखानो के मजदूर-वर्ग का नही अथवा लालची महाजन या व्यापारी समाज का नही बल्कि जिम्मेदार ग्रामीण जनता का और छोटी-छोटी देहाती बस्तियो के स्थायी व दुरुस्त-दिमाग लोगो का प्रभुत्व [illegible] और उच्च ध्येय का [illegible] सदाचार का अभिप्राय केवल [illegible] लिए स्वाभा[illegible] है [illegible] जनता नहीं इसका करनी थी [illegible] जीवन की [illegible] आराम और [illegible] पाठ [illegible] पहुँचाई थी और न [illegible] का वास्तविक [illegible] ही [illegible] का [illegible]

हमारा प्रेम सच्चा है तो उसमें हमारे घोषित आदर्शों के विपरीत जो परिस्थिति हो उसे सुधारने से इन्कार करने की इस निष्क्रिय हिंसा को कोई स्थान न होना चाहिए। यदि साम्राज्यों का निर्माण मनुष्य की तृष्णा क्रूरता और घृणा ने किया है तो, संसार को न्याय तथा स्वतन्त्रता की शक्तियों का साथ देने के लिए कहने से पहले, हमें उनको बदलना होगा। हिंसा या तो सक्रिय होगी या निष्क्रिय। आक्रामक शक्तियाँ इस समय सक्रिय हिंसा कर रही हैं, वे साम्राज्यवादी शक्तियाँ भी हिंसा की उतनी ही अपराधिनी और स्वातन्त्र्य तथा प्रजातन्त्र की विरोधिनी हैं, जो भूतकाल की हिंसा द्वारा प्राप्त अन्यायपूर्ण लाभों का उपभोग करने में आज भी संलग्न हैं। जबतक हम इस मामले में ईमानदारी से काम न लेंगे तबतक हम अब से अच्छी संसार-व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकेंगे, और संसार में युद्ध तथा युद्धों का भय जारी रहकर यहाँ अनिश्चितता की अवस्था बनी रहेगी। भारत को स्वतन्त्र कर देना ब्रिटिश ईमानदारी की अग्नि-परीक्षा है। गांधीजी अब भी प्रति सोमवार को चौबीस घण्टे का उपवास करते हैं, ताकि सब सम्बद्ध लोगों को मालूम रहे कि स्वराज अभी नहीं मिला। और फिर भी यह गांधीजी का ही प्रभाव है, जो एक ओर जनता की उचित आकांक्षाओं और दूसरी ओर ब्रिटिश शासकों के हठ के विरोध में छिन्न-विच्छिन्न होता हुआ भारत को नियन्त्रण में रख रहा है। भारत में सबसे बड़ी शान्ति-रक्षिणी शक्ति वही है।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की समाप्ति के पश्चात्, जब वह इंग्लैंड पहुँचे तब उन्होंने देखा कि जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की जा चुकी थी। उन्होंने लड़ाई के मैदान में 'एम्बुलेंस' (घायलों की सहायता) काम करने के लिए, जबतक युद्ध चले तबतक अपनी सेवायें बिना शर्त पेश कीं। उनकी सेवा स्वीकार कर ली गई और उन्हें एक भारतीय टुकड़ी के साथ एक जिम्मेदारी के पद पर नियुक्त किया गया। परन्तु अपना काम करते हुए [illegible]

करने से इन्कार कर दिया, तब उन्होंने ब्रिटिश सरकार से सहयोग न करने का अपने जीवन का महान् निश्चय प्रकट किया। और सितम्बर सन् १९२० में कांग्रेस के कलकत्ता विशेषाधिवेशन ने उनका अहिंसात्मक असहयोग का प्रस्ताव पास कर दिया।

यहाँ उनके अपने ही शब्दों को उद्धृत करना उचित होगा। १ अगस्त १९२० को उन्होंने वाइसराय को एक पत्र में लिखा :

"अफसरों के अपराधों के प्रति आपकी अवहेलना, आपका सर माइकेल ओडवायर को निरपराध कहकर छोड देना, मि० माण्टेगु का खरीता और सबसे बढकर ब्रिटिश लार्ड-सभा की पजाब की घटनाओं में निर्लज्जतापूर्ण अनभिज्ञता तथा भारतीय भावनाओं की हृदयहीन उपेक्षा, इन घटनाओं ने साम्राज्य के भविष्य के विषय में मेरे हृदय को गम्भीर सशयों से भर दिया है तथा मुझे वर्तमान शासन का कट्टर विरोधी और जैसा मैं अबतक पूर्ण हृदय से सरकार को सच्चा सहयोग देता आया हूँ उसे निभाने में असमर्थ बना दिया है।

"मेरी विनम्र सम्मति में, जो सरकार अपनी प्रजा के सुख की तरफ से ऐसी सख्त लापरवाह हो जैसी कि भारत-सरकार साबित हुई है, उसे पश्चात्ताप करने के लिए दरख्वास्तों, डेपूटेशनों और इसी किस्म के आन्दोलन करने के दूसरे मामूली तरीकों से प्रेरित नहीं किया जा सकता। यूरोपियन देशों में, खिलाफ़त और पजाब सरीखे भारी अन्यायों की निन्दा तथा प्रतिवाद के परिणाम में जनता रक्त-मय क्रान्ति कर उठती। उसने सब उपायों से, राष्ट्रीय मान-मर्दन का विरोध किया होता। आधा भारत हिंसामय विरोध करने में असमर्थ है, और शेष आधा वैसा करना नहीं चाहता। इसलिए मैंने असहयोग का उपाय सुझाने का साहस किया है। इसके द्वारा, जो चाहें वे, अपने आपको सरकार से अलहदा कर सकते हैं। यदि इस उपाय पर बिना हिंसा के और व्यवस्थित रूप में अमल किया गया, तो यह सरकार को अपना कदम वापस लेने को और किया हुआ अन्याय धोने को जरूर मजबूर कर देगा। परन्तु असहयोग की नीति पर चलते हुए, और जहाँतक मैं जनता को अपने साथ ले जा सकता हूँ वहाँतक जाते हुए भी, मैं यह आशा नहीं छोड़ूँगा कि आप अब भी न्याय के मार्ग पर चल पडेंगे।"

यद्यपि उनकी राय है कि वर्तमान ब्रिटिश शासन ने भारत को "धन, पौरुष तथा धर्म में और उसके पुत्रों को आत्मरक्षा के सामर्थ्य में पहले से निर्बल" बना दिया है, तो भी उनको आशा है कि यह सब परिवर्तित हो सकता है। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन करते हुए भी वह ब्रिटिश सम्बन्ध के विरोधी नहीं है। असहयोग-आन्दोलन की पराकाष्ठा के दिनों में भी, उन्होंने ब्रिटेन से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद कर देने के आन्दोलन का दृढता से विरोध किया था।

ब्रिटिशों के साथ मित्रों और साथियों की तरह काम करने के लिए तैयार होते

हुए भी, उनकी दृढ़ राय थी कि जबतक संरक्षकता और प्रभुता का ब्रिटिशों का अस्वाभाविक रुख कायम रहेगा तबतक भारत की अवस्था में कोई सुधार सम्भव नहीं होगा। याद रखना चाहिए कि तीव्रतम उत्तेजना के समय भी उन्होंने ब्रिटिशों का बुरा कभी नहीं चाहा। "मैं भारत की सेवा करने के लिए इंग्लैण्ड या जर्मनी को हानि नहीं पहुँचाऊँगा।"

जब कभी, अमृतसर का हत्याकाण्ड अथवा साइमन-कमीशन की नियुक्ति सरीखे मूर्खता या नासमझी के किसी काम के कारण, भारत अपना धीरज और आत्म-संयम गवाकर क्रोध से उबल उठा तब गांधीजी सदा असन्तोष और क्षोभ को प्रेम और सुलह के शान्त प्रवाह में परिवर्तित करते देखे गये हैं। गोलमेज परिषद् में उन्होंने ब्रिटिशों के प्रति अपने अमिट प्रेम, शक्ति के बजाय युक्ति पर आश्रित 'कामनवेल्थ' में विश्वास और मनुष्य-मात्र की भलाई करने की अभिलाषा का परिचय दिया था। गोलमेज परिषदों के फलस्वरूप प्रान्तों को स्व-शासन की एक अपूर्ण मात्रा दी गई थी, और जब जनता के बहुमत ने शासन-विधान को स्वीकार करने का और उसपर अमल करने का विरोध किया, तब भी गांधीजी ही थे कि जिन्होंने अन्य किसीसे भी बढ़कर, कांग्रेस को शासन-सुधारों का यथाशक्य लाभ उठाने की प्रेरणा की। उनका एकमात्र आग्रह ब्रिटेन के साथ शान्ति का सम्बन्ध रखने पर है, परन्तु इस शान्ति का आधार होना चाहिए स्वतन्त्रता और मित्रता। आज भारत का प्रतिनिधित्व एक ऐसा नेता कर रहा है, जिसमें जाति-द्वेष अथवा वैयक्तिक ईर्ष्या का लेश भी नहीं है, जिसका बल-प्रयोग में विश्वास नहीं है, और जो अपने देशवासियों को भी बल-प्रयोग का आश्रय लेने से रोकता है। वह भारत को 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' से पृथक् नहीं करना चाहता, बशर्ते कि यह स्वतन्त्र राष्ट्रों का सहयोग और सबंध हो। सम्राट् ने २० मई को कनेडियन पार्लमेण्ट में अपने भाषण में कहा था कि ब्रिटिश साम्राज्य की एकता आज ऐसे राष्ट्रों के स्वतन्त्र सहयोग द्वारा प्रकट हो रही है जो शासन के समान सिद्धान्तों का उपभोग कर रहे हैं और जिनको शान्ति तथा स्वतन्त्रता के आदर्श से समान प्रेम है और जो समान राज-भक्ति द्वारा परस्पर सम्बद्ध हैं। गांधीजी इन शासन के सर्वनिष्ठ सिद्धान्तों को भारत पर भी लागू कराना चाहते हैं। [illegible] आप होना चाहिए। [illegible] महाभिलाषी पुरुषों के [illegible] अभिलाषी हैं।

यह खेद की बात है कि उनकी [illegible] नहीं हो रहा। [illegible] उद्देश्य अपूर्ण ही रहा है [illegible] मैं तो यही आशा करूँगा कि ब्रिटिश [illegible]

न्याय की प्रतिष्ठा करे। प्रेम और सहनशीलता शत्रु को जीत लेते हैं,—परन्तु उसका विनाश करके नहीं, उसको बदल कर,—क्योंकि आखिर उसके हृदय में भी तो हम सरीखे ही राग-द्वेष आदि के भाव हैं। गाधीजी के सत्याग्रह तथा आन्दोलन के कार्य नैतिक साहस, प्रायश्चित्त और त्याग से परिपूर्ण हैं।

प्रेम-प्रणाली का प्रयोग अबतक कहीं-कहीं कुछ व्यक्तियों ने निजी जीवन में ही करके देखा था। परन्तु गाधीजी की परम सफलता यह है कि उन्होंने इसे सामाजिक तथा राजनैतिक मुक्ति की योजना बनाकर दिखा दिया है। उनके नेतृत्व में दक्षिण अफ्रीका और भारत में सगठित समुदायों ने इसे अपनी शिकायतें दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाकर देखा है। राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए शारीरिक हिंसा का सर्वथा परित्याग करके, राजनैतिक क्रान्ति के इतिहास में उन्होंने इस नई योजना का विकास करके दिखाया है। यह योजना या विधि भारत की आध्यात्मिक परम्परा को हानि नहीं पहुँचाती, बल्कि उसीमें से उपजी है।

इसने निष्क्रिय प्रतिरोध, अहिंसात्मक असहयोग और सविनय आज्ञा-भग के विविध रूप धारण किये हैं। इन सबका आधार बुराई से घृणा, परन्तु बुराई करनेवाले से प्रेम रहा है। सत्याग्रही अपने विरोधी से सदा वीरोचित बर्ताव करता है। कानून का भग सदा सविनय होता है, और "सविनय का अर्थ केवल उस अवसर पर ऊपर से मीठा बोलना नहीं, बल्कि आन्तरिक मृदुता और मधुरता और विरोधी का भी भला करने की इच्छा है।" अपने सब आन्दोलनों में जब कभी गाधीजी ने शत्रु को कष्ट में देखा, वह उसकी सहायता को दौड़े गये। शत्रु की कठिनाई से फायदा उठाने के सब प्रयत्नों की वह निन्दा करते हैं। यूरोप में ब्रिटेन को कठिनाई में फँसा हुआ देखकर हमें उससे सौदा नहीं करना चाहिए। गत महायुद्ध के समय उन्होंने भारत के वाइसराय को लिखा था—"यदि मैं अपने देशवासियों से कदम वापस करा सकता तो उनसे काग्रेस के सब प्रस्ताव वापस करवा लेता और महायुद्ध जारी रहने तक किसीको 'होम रूल' या उत्तरदायी शासन का नाम भी न लेने देता। जनरल स्मट्स तक गाधीजी के उपायों की ओर आकृष्ट हुए थे और उनके एक सेक्रेटरी ने गाधीजी से कहा था—"मैं आपके देशवासियों को नहीं चाहता और मैं उन्हें मदद भी बिल्कुल नहीं देना चाहता। परन्तु मैं क्या करूँ? [illegible] हमारी मुसीबत में हमारी मदद करते हैं। आप पर हम हाथ कैसे उठायें [illegible] मैं बहुधा चाहता हूँ कि आप भी अंग्रेज हड़तालियों की भाँति हिंसा का सहारा [illegible] आप तो शत्रु को भी हानि नहीं पहुँचाते। आप [illegible] चाहते हैं और भद्रता तथा शौर्य की [illegible] इसीसे तो हम एकदम असहाय हो जाते हैं।"

१ 'महात्मा गान्धी—हिज़ ओन स्टोरी', पृष्ठ २८०

युद्धों की समाप्ति के लिए लडे गये महायुद्ध के बीस वर्ष पश्चात् आज फिर करोड़ो आदमी हथियार बाँधे हुए हैं और शान्ति-काल[1] में भी सैन्य-संग्रह जारी है, जहाजी बेडे समुद्र को नाप रहे हैं और वायुयान आकाश में एकत्र हो रहे हैं। हम जानते है कि युद्ध से समस्याओं का हल नहीं होता, बल्कि उनका हल कठिनतर हो जाता है। युद्ध के पक्ष-विपक्ष के युक्ति-जाल से अनेक ईसाई स्त्री-पुरुष असमंजस मे पड रहे हैं। शान्तिवादी पुकार रहे हैं कि युद्ध एक ऐसा अपराध है जो मानवता को अपमानित करता है, और बर्बरता के हथियारों से सभ्यता की रक्षा करने का न्यायत. समर्थन नही किया जा सकता। जिन स्त्री-पुरुषों ने हमारा कुछ झगडा नही उन्हे कष्ट में डालने का हमें कोई अधिकार नहीं। युद्ध में पड़ा हुआ राष्ट्र शत्रु का पराजय तथा विनाश करने के भयंकर संकल्प से अनुप्राणित होता है। वह भय और घृणा के प्रवाह में बह जाता है। बसे हुए नगर पर मृत्यु या विनाश की वर्षा हम प्रेम और क्षमा से प्रेरित होकर नहीं कर सकते। युद्ध का सारा तरीका शैतान को शैतान से सजा दिलाने का है। यह ईसामसीह के हृदय, उसकी नैतिक शिक्षा और आदर्श के विरुद्ध है। हनन और ईसाइयत में हम मेल नहीं कर सकते।

युद्ध के हिमायती कहते हैं कि यद्यपि युद्ध एक भयानक बुराई है। परन्तु कभी-कभी यह दो बुराइयों मे कम बुरी बुराई हो जाती है। सब वस्तुओं के तुलनात्मक मूल्य को ठीक-ठीक समझ लेना ही व्यवहार-बुद्धि कहलाती है। हमारी जिम्मेदारी समाज और उसके प्रतिनिधि-रूप राष्ट्र दोनो के प्रति है। और फिर राष्ट्र समाज का ही तो अंग है। जान-माल की रक्षा, शिक्षा और अन्य लाभ हम समाज का सदस्य होने के नाते ही उठाते है, और इससे हमारे जीवन का मूल्य तथा सुख बढ़ता है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि जब राष्ट्र पर आक्रमण हो तब हम उसकी रक्षा करें, हमारी विरासत पर जोखिम आवे तो उसे कायम रक्खें।

जिन लोगो ने हमारा कोई वैर नहीं उन्हे काटने, मारने, घायल और नष्ट करने को जब हमसे कहा जाता है तब हमारे सामने इसी प्रकार की दलीलें पेश की जाती हैं। नाजी जर्मनी कहता है कि मनुष्य का प्रथम कर्तव्य अपने राष्ट्र की सदस्यता है और राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति में ही उसकी वास्तविकता, भलाई तथा सच्ची स्वतन्त्रता है। राष्ट्र को अधिकार है कि वह अपने बडप्पन के सामने व्यक्तियों के सुख को गौण समझ े। युद्ध का गुण यह है कि मनुष्य अपनी निर्बलता के होते हुए वैयक्तिक स्वतन्त्रता ी जो इच्छा करने लगता है, उसे वह नष्ट कर देता है। फासिस्ट पार्टी की स्थापना बीसवे वार्षिकोत्सव पर अपने भाषण में मुसोलिनी ने कहा था—"आज की परम्परा यही है कि किसी भी खर्च पर किसी भी उपाय से, जिसे नागरिक जीवन कहा ता है उसे बिलकुल मिटाकर भी, अधिकाधिक जहाज, अधिकाधिक बन्दूकें, और

[1] ये पंक्तियाँ यूरोप में युद्ध छिड़ने से पहले लिखी गई थीं।—अनु०

अधिकाधिक वायुयान एकत्र किए जायें।" "पूर्वेतिहासिक काल से सदियों आज तक यही पुकार चली आ रही है, 'बेहथियारों का बुरा हो'।"

"हम चाहते हैं कि आगे भाईचारे, बहनचारे, भतीजा-भानजाचारे और उनके नकली माँ-बापचारे की कोई बातें सुनाई न दें, क्योंकि राष्ट्रों के आपसी सम्बन्ध बल तथा शक्ति के सम्बन्ध होते हैं, और बल तथा शक्ति के सम्बन्ध ही हमारी नीति के निर्धारक हैं।" मुसोलिनी ने और भी कहा था, "यदि समस्या का हल नैतिक दावे के आधार पर किया गया तो पहला वार करने का अधिकार किसी को भी नहीं रहेगा।" साम्राज्यों का निर्माण ताश के खेल-सा है। कुछ शक्तियों को अच्छे पत्ते मिल जाते हैं और वे ऐसे ढंग से खेलती हैं कि दूसरों का कहीं ठिकाना तक नहीं रहता। सारा नफा अपनी जेब में भर लेने के बाद वे मुँह फेर कर कहती हैं कि जुआ खेलना बुरा है और ताज्जुब ज़ाहिर करती हैं कि दूसरे लोग अब भी वही खेल खेलना चाहते हैं! ऊपर की पंक्तियों से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जाति, शक्ति और सशस्त्र सेनाओं की पूजा केवल मध्य यूरोप में ही होती है।

२० मार्च १९३९ को ब्रिटिश लार्ड-सभा में भाषण करते हुए कैण्टरबरी के आर्च-बिशप ने "न्याय की ओर शक्ति का संग्रह" करने की वकालत की। उनकी दलील थी कि "हमें यह इस कारण करना पड़ रहा है कि हमें निश्चय हो गया है कि कुछ वस्तुएँ शांति से भी अधिक पवित्र हैं और उनकी रक्षा होनी चाहिए।. ."मैं नहीं समझता कि जिन वस्तुओं का मूल्य मानव-सुख तथा सभ्यता के लिए इतना अधिक है उनकी यदि कुछ राष्ट्र रक्षा करेंगे तो उनका यह काम ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध होगा।" गांधीजी ऐसे दुर्लभतम धार्मिक पुरुष हैं जो जोशीले देशभक्तों की सभा में खड़े होकर भी कह सकते हैं कि, यदि आवश्यकता हुई तो, मैं सत्य पर भारत को भी निछावर कर दूँगा। गांधीजी कहते हैं, "मैं जितने धार्मिक पुरुषों से मिला हूँ, उनमें से अधिकतर को मैंने छद्मवेश में राजनीतिज्ञ ही पाया। परन्तु मैं राजनीतिज्ञ का वेश धारण करके भी हृदय से धार्मिक व्यक्ति हूँ।"

धार्मिक पुरुष का लक्ष्य अपने आदर्श को व्यावहारिक माँग तक उतार देना नहीं, बल्कि व्यवहार को आदर्श के नमूने तक चढ़ा देना होता है। हमारी देशभक्ति ने मानव-परिवार की आध्यात्मिक एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया है। अपनी वृहत् मानव-समाज-भक्ति की रक्षा, हम युद्ध में पड़ने से इन्कार करके और अपनी राष्ट्र-भक्ति की रक्षा, हम धार्मिक तथा मानसिक उपायों से करना चाहते हैं। कम-से-कम धार्मिक व्यक्तियों को, ईसाई 'अपोजलों'[1] की भाँति, मनुष्यों के स्थान पर ईश्वर का आज्ञाकारी होना चाहिए। हमारी दिक्कत यह है कि सब देशों में समाज का नियंत्रण ऐसे व्यक्तियों के हाथ में है जो युद्ध को अपनी नीति का साधन मानते हैं और उन्नति का

१. ईसाइयत के बारह खास धर्म-प्रचारक जो ईसामसीह के शिष्य थे।

विचार दिग्विजय के ही शब्दों में करते हैं।

आदमी यदि मनहूस ही न हो तो वह नम्रता और दया दिखा करके प्रसन्न होता है। निर्माण में सुख और विनाश में दुःख है। साधारण सिपाहियों को अपने शत्रुओं से घृणा नहीं होती, परन्तु शासक-वर्ग उनके भय, स्वार्थ और अभिमान के नाम पर अपीलें कर-करके उन्हें मनुष्यता के मार्ग से भ्रष्ट कर देता है। जिन मनुष्यों में बहकाकर घृणा और क्रोध के भाव उत्पन्न कर दिये जाते हैं, वे एक-दूसरे से लड़ पड़ते हैं, क्योंकि वे आज्ञा-पालन करना सीखे हुए हैं। परन्तु तब भी वे अपने हनन-कार्य में घृणा और द्वेष को नहीं ला सकते। जिस काम से वे नफरत करते हैं, वह भी उन्हें अनुशासन के कारण करना पड़ता है। अन्तिम जिम्मेदारी तो सरकार पर रहती है, जिसमें दया, तरस और संतोष नहीं होता। वह सीधे-सादे आदमियों को क़ैद करती है, और उनकी मानवता को तिरस्कृत करती है। जो अन्यथा उत्पादन का कार्य करके प्रसन्न होते उन्हीं को विनाशकारी जल स्थल और वायु-सेनाओं में संघटित किया जाता है। हम हत्याकाण्ड की प्रशंसा करते हैं और दया को लज्जा की वस्तु मानते हैं। हम सत्य की शिक्षा का निषेध करते हैं और असत्य के प्रचार की आज्ञा देते हैं। हम अपनों और परायों दोनों के सौंदर्य सुख-समृद्धि और प्राणों का अपहरण करते हैं और अपने-आपको सामूहिक हत्यों और आध्यात्मिक मृत्यु का जिम्मेदार बना लेते हैं।

जबतक सब राष्ट्र एक-दूसरे से स्वतन्त्रता और मित्रता का व्यवहार न करेंगे, और जबतक हम संगठित और समन्वित सामाजिक जीवन की नई धारणा को विकसित न करेंगे तबतक हमको शान्ति नहीं मिलेगी। इस लोक के मानव-समाज और सभ्यता का भविष्य आत्मा स्वतन्त्रता, न्याय और मनुष्य-प्रेम की उन गहरी विश्व-भावनाओं के साथ बँधा हुआ है जो गांधीजी का जीवन-प्राण बन चुकी है। हिंसा और द्वेष से पूर्ण इस संसार में गांधीजी की अहिंसा इतने मनोहर स्वप्न-सी प्रतीत होती है कि जिसके कार्यान्वित होने का विश्वास नहीं होता। लेकिन उनके लिए तो ईश्वर सत्य और प्रेम ही है और ईश्वर चाहता है कि हम नतीजे की परवा न करके सत्य और प्रेम के अनुयायी बनें [illegible] सत्य की तरह ऐसी ही नम्रता से करना है जैसे कि [illegible] अपने [illegible] वैयक्तिक [illegible] और [illegible] अपने वैयक्तिक [illegible] चुके हैं उन्होंने यह कहने का बल और साहस [illegible] है कि [illegible] परन्तु ईश्वर की इच्छा [illegible] कि ईश्वर सत्य और न्याय के [illegible] सकते हैं [illegible] निश्चय है कि [illegible] से टकराकर स्वयं नष्ट हो जायेंगे। [illegible]

इच्छा ही आत्म-पराजयकारिणी है। जब हम "राष्ट्रीय हित" की बात करते हैं तब हम यह कल्पना कर लेते हैं कि कुछ भू-भाग अपने कब्जे में रखने का हमारा अखण्डनीय और स्थायी अधिकार है। और "सभ्यता"! संसार कई सभ्यताओं को युगों की धूल के नीचे दबती देख चुका है और उनके द्वारा निर्मित हुए नगरों की जगह जंगल खड़े हो चुके हैं और वहाँ चाँदनी रात में सियार हूकते हैं।

धार्मिक पुरुष के लिए सभ्यता और राष्ट्र-हित के विचार अप्रासंगिक हैं। प्रेम कोई नीति या हिसाब का विषय नहीं है। जो लोग निराश हो चुके हैं कि वर्तमान संसार की हिंसा को रोकने का बचकर भाग निकलने या नष्ट हो जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं, उनसे गांधीजी कहते हैं कि एक उपाय है, और वह हम सबकी पहुँच में है। वह है प्रेम का सिद्धान्त, जो कि अनेक अत्याचारों में भी मनुष्य की आत्मा की रक्षा करता आया है, और अब भी कर रहा है। उनका सत्याग्रह चाहे पशु-शक्ति के विशाल प्रदर्शनों की तुलना में प्रभावहीन जँचे, परन्तु शक्ति से भी अधिक विशाल एक वस्तु है, वह है मनुष्य की अमर आत्मा, जो कि विशाल संख्याओं या ऊँची आवाजों से नहीं दबती। यह उन सब बेड़ियों को टूक-टूक कर देगी जिनमें अत्याचारी इसे जकड़ना चाहेंगे। गत मार्च के संकट-काल में 'न्यूयार्क टाइम्स' के एक संवाददाता ने जब गांधीजी से संसार के लिए सन्देश मांगा, तब उन्होंने सब प्रजातन्त्र शक्तियों को एकदम निःशस्त्र हो जाने की सलाह दी थी और उसे ही एकमात्र हल बतलाया था। उन्होंने कहा था, "मुझे यहाँ बैठे-बैठे ही निश्चय है कि इससे हिटलर की आँखें खुल जायँगी और वह आप निःशस्त्र हो जायगा।" संवाददाता ने पूछा, "क्या यह चमत्कार नहीं होगा?" गांधीजी ने जवाब दिया, "शायद! परन्तु इससे संसार की उस कत्लेआम से रक्षा हो जायगी जो अब सामने दीख रहा है।...कठोरतम धातु काफी आँच से नरम हो जाती है, इसी प्रकार कठोरतम हृदय भी अहिंसा की पर्याप्त आँच लगने से पिघल जाना चाहिए। और अहिंसा कितनी आँच पैदा कर सकती है इसकी कोई सीमा नहीं... अपने आधी शताब्दी के अनुभव में मेरे सामने एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं आई जब मुझे यह कहना पड़ा हो कि मैं असहाय हूँ और मेरी अहिंसा निरुपाय हो गई।" प्रेम मनुष्य-जीवन का नियम है, उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है। हम ऐसी अवस्था के नजदीक पहुँच रहे हैं जब यह आवश्यकता और भी स्पष्ट हो जायगी, क्योंकि यदि मनुष्य इस नियम से बचेंगे और इसकी अवहेलना और उल्लंघन करेंगे तो मनुष्य-जीवन ही असम्भव हो जायगा। हम लड़ाइयों का सामना इसलिए करना पड़ता है कि हमारा जीवन इतना निस्वार्थ नहीं हुआ कि जिससे युद्धों की आवश्यकता ही न हो। शान्ति का युद्ध तो मनुष्य के हृदय में ही लड़ा जाना चाहिए। उसकी आत्मा अहंकार-बल, स्वार्थ, लालसा और भय का पराजित करने में समर्थ होनी चाहिए। एक नई प्रकार की जीवन-प्रणाली पर राष्ट्रीय जीवन तथा विश्व-व्यवस्था की नींव पड़नी चाहिए। यह जीवन

हमारी रुचि, तो जो हम कहीं व्यक्तियों और राष्ट्रों में मनुष्य जाति की बुद्धि उन्नति और सहायता करे। जिन मनुष्यों ने मनुष्य-जाति को जीवन की ... और स्वार्थपरता की प्रवृत्ति से स्वतन्त्र कर लिया है, वे ही शान्ति की स्थापना और रक्षा के योग्य हो सकते हैं। शान्ति है जीवन में एक नवीन दर्शन और कुछ विश्व-व्यापी सिद्धान्तों और आदर्शों का आचरण। हमें इनकी रक्षा के लिए ऐसे अधिकारी चाहिए, जिनमें नैतिक गुणों का बल और मानव-प्राणों का विज्ञान न हो। इस प्रकार के हमें तो भी कष्ट हमारे मार्ग में आवें उन सबको सहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

मैंने संसार के विभिन्न भागों की अपनी यात्राओं में देखा है कि गांधीजी की ख्याति, बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञों और राष्ट्रों के नेताओं से भी अधिक विश्वव्यापी है और उनके व्यक्तित्व को किसी भी एक अथवा अन्य सबकी अपेक्षा, अधिक प्रेम और आदर की दृष्टि से देखा जाता है। उनका नाम इतना सर्व-परिचित है कि शायद ही कोई किसान या मजदूर ऐसा होगा, जो उनको मनुष्य-मात्र का मित्र न समझता हो। लोग ऐसा समझते प्रतीत होते हैं कि गांधीजी सुवर्ण युग का पुनरुद्धार करेंगे, परन्तु हम उसको (युग को) उस प्रकार ढूंढ़ नहीं सकते, जिस प्रकार रास्ते चलती किराये गाड़ी को ढूंढ़ लेते हैं, क्योंकि हम किसी राष्ट्र की अपेक्षा भी अधिक बलवान और किसी पराजय की अपेक्षा भी अधिक अपमानकारक एक वस्तु के अधीन हैं,—और वह है अज्ञान। यद्यपि हमको सब शक्तियां जीवन के लिए दी गई हैं, परन्तु हमने भ्रष्ट बनकर उनको मृत्यु के लिए प्रयुक्त हो जाने दिया है। यद्यपि मनुष्य-जाति की उत्पत्ति से ही यह स्पष्ट है कि वह सुख की अधिकारिणी है, परन्तु हमने उस अधिकार की उपेक्षा की है, और अपनी शक्ति का प्रयोग ऐसे धन और बल के संग्रह के लिए होने दिया है, जिसके द्वारा बहुतों का सुख कुछेक के सतायान्वित सन्तोष पर निछावर कर दिया जाता है। जिस भूल के आप और मैं शिकार हैं, सारा संसार भी उसीका गुलाम है। हमें धन और बल की प्राप्ति के लिए नहीं, प्रत्युत प्रेम और मानवता की स्थापना के लिए प्रयत्न करना चाहिए। भूल से मुक्त होना ही एकमात्र सच्ची स्वतन्त्रता है।

गांधीजी बंधन-मुक्त जीवन के मन्त्र-दाता हैं। उनके असाधारण धार्मिक पवित्रता और वीरोचित तप का करोड़ों-करोड़ मनुष्यों पर गहरा प्रभाव है। ऐसे कुछ लोग सदा मिलेंगे जो ऐसे पावन-जीवन के दुर्लभ उदाहरणों में वह शक्ति पावेंगे और उनमें सत्य की वह झांकी देखेंगे जो उन साधारण साधुतामय जीवन रूढ़ नैतिकता या अस्पष्ट कल्प-विचारों और भावों में नहीं मिलती जिनका आधुनिक काल के बहुत से उपदेष्टा प्रस्तुत किया करते हैं। सच्चे रहो और सरल हृदय से निर्मल और आर्द्र दुःख में प्रसन्न और आनन्द के साथ स्थिर-बुद्धि और चिरतुष्ट जीवन में प्रीति रक्खो और मृत्यु के प्रति अभय सनातन आत्मा की सेवा में समर्पित होओ और महात्माओं के

भार से निरातंक रहो—सृष्टि के आदि से दी गई और कौन शिक्षा है जो इस शिक्षा से बढ़कर है? अथवा कहाँ दूसरा उदाहरण है जब इस शिक्षा का अधिक तत्परता से पालन हुआ है?

: २ :

महात्मा गांधी : उनका मूल्य

होरस जी. एलेक्ज़ैण्डर, एम. ए.

[सैली ओक, बर्मिंघम]

किसी बड़े आदमी के जीवन-काल में उनका ठीक मूल्यांकन करना सुगम नहीं है। और अगर आपका उससे व्यक्तिगत परिचय है, तब तो वह और भी कठिन है; क्योंकि सही-सही दृष्टिकोण से एक आदमी को देखने के लिए आपको उससे थोड़ा तटस्थ होना चाहिए। गांधीजी से थोड़ा भी तटस्थ मैं नहीं होना चाहता। जबतक वह जीवित है तबतक मेरे लिए तो यही प्रयत्न करना सर्वोत्तम है कि प्रत्येक सप्ताह उनके पत्र 'हरिजन' से उनके विचार को समझकर उनके इतना समीप रहूँ जितना रह सकता हूँ।

फिर भी समय-समय पर उन प्रश्नों का सामना करने के लिए आवश्यक रूप से तैयार होना चाहिए जिन्हें उनके बारे में संसार पूछता है और उनके उत्तर देने का प्रयत्न करना चाहिए। मेरा अनुमान है कि इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यही दिखाना है कि अपने समकालीनों में से कुछ पर गांधीजी का क्या प्रभाव पड़ा है।

इसलिए थोड़े में अभी यह कठिनाई प्रकट करके मैं यह बताने का प्रयत्न करूँगा कि वर्तमान संसार-व्यवस्था में उन्हें किस प्रकार देखता हूँ।

हमारे युग में बहुत-से देशों में और विभिन्न रूपों में अपने अधिकारों से वंचित लोगों के विद्रोह हुए हैं। ट्रेड-यूनियन-आन्दोलन और समाजवाद के विभिन्न तरीकों ने समस्त पश्चिम में औद्योगिक मजदूरों के अधिकारों की घोषणा की है। सम्भवतः अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-संगठन इस हलचल की पहली पराकाष्ठा है लेकिन रूस में इसने और भी लम्बा कदम रक्खा है। वहाँ औद्योगिक मजदूर अब मामूली आदमी नहीं है। आपने यदि उसके साथ कठोर व्यवहार किया तो वह आपको डाटने नहीं दौड़ेगा। उस विशेष अधिकार का ध्यान दिया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-संगठन या सोवियट मजदूरों का काम-भार से छोटे दुकानदारों को, दीन किसानों, मछुओं और दूसरों को बिलकुल भूलना हो सो नहीं लेकिन जो कुछ उनके लिए किया गया है वह किसी रूढ़-वाद के विचार का परिणाम है।

जर्मनी में कट्टर समाजवादी या औद्योगिक मजदूर ही नहीं हैं जिन्होंने बड़ी शान से

सफलता पाई हो। दूसरे चालाक या शायद नीति-सिद्धान्तो का विचार न करनेवाले दल ने तरकीब निकाली कि हमारे समाज के दूसरे बडे अंग मध्यम वर्ग (Petit bourgeoisie) की सहायता कैसे प्राप्त की जा सकती है। वे भी निराश हो चुके थे। बस एक बार सिक्के का पूर आया और बाजार एकदम चढ़ जाने के सबब उसमें उनकी आय मँहगाई में उड़ गई थी और नीचे-ऊपर दोनो तरफ से बड़ी शक्तियो—आस्मानी और सुल्तानी—के बीच वे पिस गये थे। अगर कोई ऐसा वर्ग था जिसने दूसरों की अपेक्षा अधिक हिटलर की जीत कराई तो वह यही मध्यम वर्ग था जिसे कार्ल मार्क्स के अनुयायी बहुधा भूल जाते है और घृणा करते है।

लेकिन भारत से गांधीजी इन पश्चिमी क्रान्तियो को चुनौती देते हैं। औद्योगिक मजदूर, मध्यम वर्ग, बुद्धिवादी, सम्पत्तिवान्, ये सब दल जो शक्ति के लिए पश्चिम में होड़ लगा रहे हैं, इस बुनियादी बात को भूल जाते है कि आदमी का पेट तो भरना ही चाहिए। मशीनो को वह नही खा सकता, व्यापार को वह नहीं खा सकता। स्कूल की किताबो को भी वह नहीं खा सकता, न डिवीडेंडो (मुनाफो) को ही खा सकता है। इन सब चीजो के बिना भी आदमी जीवित रह सकता है। लेकिन वह रोजाना रोटी या चावल पाये बिना जीवित नही रह सकता। और अपने दैनिक भोजन के लिए जिसे सभ्य और शहरी आदमी साधारण बात समझते है, उसे अन्तिम रूप से हिन्दुस्तान, चीन, पूर्वी यूरोप, कनाडा, अर्जेण्टाइन, ट्रोपीकल अफ्रीका के लाखो मूक और बहुधा अधभूखे किसानो पर निर्भर रहना पडता है। किसान इन तमाम देशो में प्रत्येक वर्ष उस अन्न को पैदा करने के अर्थ, कि जिससे लोग जीवित रहते है, धूप, हवा और मेह का उपयोग करने के लिए (जो कितनी बार बहुधा उसे धोखा देते है) कितना हाथ-पैर पीटता है। हजारो वर्षो से, पुश्त-दर-पुश्त वे इसी तरह रहते आ रहे है। युद्ध और क्रान्तियाँ उनके परिश्रम के फल को थोडे समय के लिए नष्ट करती हुई गुजर गई है, सूखा और बाढ उन्हे नष्ट करते रहे हैं। अन्त में अब उन्हे एक सहारा मिला है, महात्मा गांधी।

भारतवर्ष के करोडो आदमियो में ऐसा शायद ही कोई आदमी मिलेगा जो गांधीजी का नाम न जाने। पहाडी जातियाँ और मूल-निवासी तक गरीबो के इस मित्र और रक्षक को जानते है और उनसे प्रेम करते है।

यद्यपि उन्होंने वकील का शिक्षण प्राप्त किया था, फिर भी वह पुन किसान बन गये है, किसान के मामूली कपडे पहनकर और एक कोने में पडे और पिछडे हुए, ऐसे गँवार और रूढि-पसन्द गाँव में रहकर कि जिसे खुद महात्मा के प्रयत्न करने पर भी स्वय साफ-सुथरा और आधुनिक ढग का बनना पसन्द नहीं है, अपने बाहरी जीवन में ही नही, बल्कि इससे भी बढकर अपने हृदय और मस्तिष्क से भी वह किसान बन गये है। वह ससार को एक किसान, चतुर, देहिहाथ, मात्र, सरल, कभी-कभी कुछ रूखे, विनोद-प्रिय, दयावान और सतोषी की दृष्टि से देखते है। वह अन्याय

धार्मिक है, जीवन को समष्टि रूप से देखते हैं और जानते हैं कि अदृश्य शक्तियाँ अगम्य रीति से काम कर रही हैं, हालाँकि बहुधा हमें उनकी झलक दिखाई पड़ सकती है, अगर हम मौन रहकर उसे देखना और ग्रहण करना चाहें।

जब भारत में छ महीने घूमने के बाद पहली बार १९२८ के वसन्त में साबरमती में मैं गांधीजी से मिला था तब उन्होंने जो शब्द मुझसे कहे थे उन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता। मैंने उनसे पूछा, "अपने घर इङ्गलैण्ड पहुँच कर मैं क्या कहूँ?" उन्होंने उत्तर दिया, "अंग्रेजों से कहिए कि वे हमारी पीठ पर से उतर जायँ।" सोचिए, इसमें कितना गहरा अर्थ है, ध्येय के बारे में ही नहीं, बल्कि उन साधनों के बारे में भी, जिनसे ध्येय सिद्ध किया जा सकता है।

क्योंकि एक ध्येय-मात्र में ही, जोकि उनके सामने है, गांधीजी हमारे युग के दूसरे क्रान्तिकारी नेताओं से भिन्न नहीं हैं, शायद उससे भी अधिक महत्वपूर्ण वे साधन हैं जिन्हें वह उस ध्येय की पूर्ति के लिए काम में लाते हैं। भारतीय मामलों में सक्रिय भाग लेने से पहले १९०८ में लिखी गई उनकी पुस्तक 'हिन्द-स्वराज'[१] में उन्होंने लिखा है—"बादशाह अपने शाही शस्त्रों को सर्वदा प्रयोग में लायेंगे। बल्कि बल-प्रयोग तो उनके रगरग में रमा हुआ है।...किसान तलवार से वश में नहीं हुए हैं। कभी होंगे भी नहीं। तलवार चलाना वे नहीं जानते और न दूसरों द्वारा चलाई गई तलवार से ही वे भयभीत होते हैं।" इसलिए किसान-स्वराज्य, किसान राज्य या किसान-स्वतन्त्रता जोकि गांधीजी का उद्देश्य है, उन्हीं तरीकों से मिलनी चाहिए जो उनके सामने के ध्येय के अनुकूल हैं। वे लोग, जिनका ध्येय मनुष्यों का शासक बनना है, तलवार से काम लेते हैं। हरेक शासक वर्ग का यह शस्त्र है। और जब समाजवादी या साम्यवादी, या नाज़ी या फासिस्ट, 'शासक वर्ग' को उसीके शस्त्रों से नष्ट करने को उद्यत होते हैं तो उनकी सफलता केवल एक शासक वर्ग को हटाकर दूसरा शासक वर्ग ला रखती है। धरती के मालिक, बैंकों के मालिक या कारखानों के मालिक-वर्ग के हाथों में रहने की अपेक्षा वह तलवार कम्यूनिस्ट, फासिस्ट या नाज़ी दल के हाथ में चली जाती है। मामूली नागरिक तब भी पद-दलित ही किये जाते हैं और एक नई शासक व्यवस्था लोगों की पीठ पर चढ़ जाती है सो अलग।

लेकिन गांधीजी शासक-जाति या जमात के बोझ को सर्वदा के लिए किसानों की पीठ से हटा देना चाहते हैं। वर्तमान शासकों को इसलिए नहीं हटाना चाहते कि उनके बाद उनके साथी सवार हो जायँ। इसलिए उन्होंने एक ऐसे शस्त्र के निर्माण में अपना जीवन लगाया है, जिसको, क्या शरीर से दुर्बल और क्या मजबूत, सभी चला सकते हैं। उनसे शिक्षा पाकर वे अपने पैरों पर सीधे खड़ा होना सीखते हैं और भारी बोझों के नीचे अब झुक नहीं रहते।

१. 'सस्ता साहित्य मण्डल' से प्रकाशित। दाम ≡)

गांधीजी कहते हैं कि किसी को अपनी पीठ से उतारने के लिए उसकी पीठ पर सवार होने की अपेक्षा उसे तबतक सहयोग देने से इन्कार कर देना उचित है जबतक वह वहाँ रहे। अन्त में उसे नीचे उतरना पड़ेगा और उसे टेकन या सहारे को कुछ भी नहीं मिलेगा। मगर आप उसकी बराबर सहायता न करेंगे तो वह आपको हर प्रकार के दण्ड की धमकी दे सकता है। अपनी धमकियों को वह कार्य में भी परिणत कर सकता है लेकिन अगर दण्ड और मृत्यु पर आपने हँसना सीख लिया है तो उसकी धमकियाँ और तलवार तक भी आपको विचलित नहीं कर सकेंगी। दबाव से वह ऐसा काम आपसे नहीं करा सकता है जिसे आपकी आत्मा कहती है कि गलत है।

कार्य के इस अहिंसात्मक तरीके को सक्रिय रूप से काम में लाने के पहले बहुत भारी कठिनाइयों पर विजय पानी होगी। तोप के गोलों के सामने डटे रहने के लिए तो उन दलों में भी सिपाहियों को तैयार करना कठिन है, जबकि उन्हें जवाब में गोली चलाने का अधिकार है। निश्चय ही उससे कठिन लोगों को यह सिखाना है कि वे बिना अपनी रक्षा किये हर प्रकार का बलात्कार और ज्यादती अपने पर स्वीकार करें। तीस बरस पहले गांधीजी ने घोषणा की थी कि निष्क्रिय प्रतिरोधक (या जिन्हें अब वह 'सत्याग्रही' कह कर पुकारते हैं, अर्थात् वे लोग जो पशु-बल के प्रयोग की अपेक्षा आत्मिक-बल का प्रयोग करते हैं) 'ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, सत्य और अभय का पालन करें।' हर युग में ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ हुए हैं जिन्होंने इस अजेय अहिंसात्मक जीवन के रहस्य को जान लिया है। जर्मनी के ईव्हैंजेलिकल पादरियों के जेल से हाल ही में आये पत्रों के पढ़ने से प्रमाणित होता है कि पूर्व की भाँति पश्चिम में अब भी ऐसे चरित्र का निर्माण किया जा सकता है। और यदि, या जब बहुसंख्यक लोग ऐसे दृढ़-चरित्र हो जायँगे तो भारत की स्वतन्त्रता और मानव का आदर्श समाज सामने दिखाई देंगे।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि गांधीजी जो अपने शान्ति और स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों [illegible]

ऐसे युग में जब कि हिंसा को नित्य नया प्रोत्साहन दिया जा रहा है, जबकि पश्चिम की एकमात्र आशा ऐसे वृहत् शस्त्रीकरण की 'सामूहिक सुरक्षितता' है जिसे कि दृढ़-से-दृढ़ आक्रमणकारी भी पैदा नहीं कर सकता, जबकि एक लाट पादरी (आर्चबिशप) भी यही सलाह देते हैं कि व्यवहारगत शान्ति के लिए प्रयत्न करें यह हो कि "शक्ति का संग्रह न्याय के पक्ष में किया जाय", तब हमारी आँखों के सामने—अगर हम उन्हें खोलें और देखें—एक आदमी है, जिसका शरीर दुबला-पतला है, स्वास्थ्य जिसका आशाप्रद नहीं है, बड़ी भारी योग्यतायें भी जिसमें नहीं हैं, जो अपने ही जीवन में अपने भारतीय साथियों पर प्रभाव डालनेवाली अपनी जादू की-सी शक्ति से दिखा रहा है कि आदमी की आत्मा जब स्वर्गीय तेज से प्रज्ज्वलित हो उठती है तो वह अत्यन्त शक्तिशाली शस्त्रीकरण से भी अधिक मजबूत होती है।

विनम्र व्यक्ति अब भी संसार में अपने अधिकार प्राप्त कर सकते हैं, यदि वे केवल अपनी विनम्रता में श्रद्धा रक्खें, यदि वे हिटलर या स्टेलिन के नर को छोड़ दें, यदि वे हमारे युग के इस सबसे महान् शिक्षक की ओर आशा से देखें।

: ३ :

एक मित्र की श्रद्धाञ्जलि

सी० एफ़० एण्डरूज़

[शान्तिनिकेतन बोलपुर, बंगाल]

इस लेख में मेरा उद्देश्य तीन प्रकार का है। पहिले, मैं अपने पाठकों के सामने महात्माजी के चरित्र के गूढ़तर धार्मिक पहलू की रूपरेखा खींचने का प्रयत्न करूँगा। दूसरे, उनके व्यक्तित्व के मानव-समाज से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले पहलू पर प्रकाश डालूँगा। और तीसरे, मैं संक्षेप में उन बातों का जिक्र करूँगा जिन्हें मैं वर्तमान युग में मनुष्य-जाति के उत्थान के प्रति महात्माजी की दो मूलभूत देन मानता हूँ।

१

कुछ ऐसे मूल धार्मिक तत्त्व हैं जिनपर महात्माजी सबसे अधिक जोर देते हैं। उनकी मान्यता है कि उनके [illegible] सत्यधर्मी मनुष्य भी परमात्मा के भय से संसार में चिरस्थायी काम कर जा सकता है।

इनमें पहला सत्य है। सत्य को वह इन सब में दैवी गुण मानते हैं। वह न सिर्फ मनुष्यों के शब्दों और कार्य में प्रकट होना चाहिए प्रत्युत अन्तरात्मा में भी उसका प्रकाश चाहिए। झूठ न बोलना ही सत्यपालन के लिए पर्याप्त नहीं यद्यपि यह इसका एक आवश्यक अंग है। उनके विचार से [illegible] सब सत्यों का आदिस्थान हृदय है।

सत्य कितना महान् है, यह इसी बात से मालूम पड सकता है कि वह इसे परमात्मा के नाम के लिए प्रयुक्त करते हैं। अहर्निश उनकी जबान पर एक ही सूत्र रहता है—"सत्य परमात्मा है और परमात्मा सत्य है।" उनका दैनिक जीवन इस बात का प्रमाण है कि वह सत्य की कितने उत्साह से आराधना करते हैं। इसलिए किसी भी अंश में सत्य से परे होने का अर्थ है दिव्य स्रोत से दूर जा पडना और परिणाम-स्वरूप आध्यात्मिक दृष्टि से हमेशा के लिए मर जाना। यह प्रकाश की जगह अन्धकार में चलने के समान है। महात्माजी की यह दैनिक प्रार्थना—

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

इसे तीन रूप में व्यक्त करती है। प्रकाश और अन्धकार तथा अमरत्व और आध्यात्मिक मृत्यु, ये सत्य और असत्य के इसी मूल भेद के दूसरे पहलू हैं।

दूसरा तत्त्व जिसका आदिस्रोत परमात्मा है, अहिंसा है। अगर इसका हम अक्षरशः अनुवाद करना चाहे तो इसे न-सताना कह सकते हैं। मगर महात्मा गांधी के लिये इसका उससे कहीं अधिक अर्थ है। उसमें दूसरों का स्वयं हित करना भी आता है। जहांतक युद्ध और रक्तपात का प्रश्न है, अहिंसा का अर्थ है इनमें भाग लेने से एकदम इन्कार कर देना। लेकिन वह अर्थ यहीं समाप्त नहीं हो जाता, वह पूरा तब होता है जब हम अधिक-से-अधिक कष्ट उठाकर उनका हृदय जीतने को तत्पर हो जाते हैं जो हमारे साथ बुराई करते हैं। सार रूप में—यह भी सत्य की तरह ही परमात्मा का अपना स्वरूप है। 'अहिंसा परमो धर्मः' एक पुरातन और पवित्र मन्त्र है जिसका अर्थ है 'अहिंसा सबसे बडा धार्मिक कर्तव्य है।' इसीलिए महात्मा गांधी अपना सारा जीवन इस 'परमधर्म' की सम्भावनाओं का पता लगाने और उनका सत्य के साथ समन्वय करने मे बिता रहे हैं। अहिंसा का सिर्फ यह अर्थ नहीं कि असत्य के मुकाबिले में निष्क्रिय प्रतिरोध किया जाय। इसमे उसका सक्रिय प्रतिरोध भी शामिल है। मगर यह क्रोध, ईर्ष्या और हिंसा के बगैर होना चाहिए।

तीसरा महत्वपूर्ण तत्त्व जिसपर महात्माजी सर्वाधिक जोर देते हैं ब्रह्मचर्य है। वह बताते हैं कि यह संज्ञा ही संस्कृत के ब्रह्म शब्द से बनी है, जिसका अर्थ है परमात्मा। पुरातन काल से चली आती हुई अन्य मान्यताओं के समान वह मानते हैं कि इन्द्रिय अर्थात् भोगक्रिया के दमन और फिर उस शक्ति के ऊर्ध्वगमन (Sublimation) से मनुष्य मे एक अद्भुत आत्मशक्ति और दैवी तेज प्रकट होता है। सत्य और अहिंसा के सच्चे अनुयायी को ब्रह्मचर्य का भी सच्चा पालक होना चाहिए और उस संयम के साथ जीवन बिताकर संसार के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। महात्माजी विवाह को भी मानव कमजोरी के लिए एक रियायत मानते हैं। दूसरे शब्दों

में यह कहा जा सकता है कि संभोग-कर्म से एकदम दूर रहकर इस विषय में विचार तक भी न करने को महात्माजी आत्मिक जीवन का, जिसे पुरुष और स्त्री दोनों प्राप्त कर सकते हैं, सबसे ऊँचा स्वरूप मानते हैं। यहाँ मैं यह ज़िक्र किए बगैर नहीं रह सकता कि वह ब्रह्मचर्य और तपस्या के सिद्धान्त में इतनी दृढ़ता से विश्वास करते हैं कि वह उन्हें अति तक ले गया है। इसी तरह उनका आमरण अनशन, जो तबतक जारी रहता है जबतक कि उन्हें उस अनशन के उद्देश्य में सफलता नहीं मिलती, मेरी समझ से बाहर की चीज़ है। यह मेरी रुचि के विरुद्ध पड़ता है और इस बारे में उनसे कई मर्तबा मैं अपने विचार प्रकट भी कर चुका हूँ।

महात्माजी मुख्यतया एक धार्मिक मनुष्य हैं। वह परमात्मा की कृपा के अतिरिक्त और किसी भांति बुराई से पूर्ण छुटकारा पाने की कल्पना का विचार तक भी अपने हृदय में नहीं ला सकते। इसलिए प्रार्थना उनके सब कार्यों का सार है। सत्याग्रही के लिए, जो सत्य के लिए मरना अपना धर्म समझता है, सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि वह परमात्मा में श्रद्धा रक्खे, जिसका गुण (प्रकृति) है **सत्य और प्रेम**। मैंने उनके सारे जीवन को अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार, जो उन्हें मूक प्रार्थना में सुनाई देती है, क्षणभर में बदलते पाया है। महान् क्षणों में वह एक विशेष वाणी सुनते हैं जो उनसे बात करती है, और दुर्धर्ष आश्वासन के साथ बात करती है, और जब वह इसे सुन लेते हैं तो कोई भी पार्थिव शक्ति उन्हें इस आवाज़ के, जिसे वह परमात्मा की वाणी समझते हैं, अनुसार कार्य करने से नहीं रोक सकती।

गीता उनकी सार्वजनिक प्रार्थना का एक अंग है। इसका वह हमेशा पाठ करते हैं। और जितना ही वह गीता का पाठ करते हैं उतना ही उसमें आत्मिक जीवन का जो मार्ग कहा गया है, उसपर उन्हें अधिकाधिक विश्वास होता जाता है।

अगर मैं उनके लम्बे और घनिष्ट अनुभव से उनको ठीक तरह समझ सका हूँ तो उनके परमात्मा-सम्बन्धी विचारों में हमेशा एक सहज श्रद्धालुता रहती है, जैसे सदा किसी मालिक की आंख उनपर हो।

२

अब हम उनके मानवीय रूप पर विचार करें। इसमें कुछ ऐसी मृदुल-मधुर बातें मिलती हैं जो चित्त को प्रेम-मग्न कर देती हैं। इन्हें सदैव उस कठोर तपस्या के साथ रखकर देखना चाहिए जिसका मैंने ऊपर अभी चित्र खींचा है।

कई साल पहले मैं महान फ्रांसीसी लेखक रोमां रोलां द्वारा महात्माजी के बारे में लिखे गए उस लेख से बहुत प्रभावित हुआ जिसमें उन्होंने गांधीजी को 'वर्तमान युग का 'सन्त पाल' बताया था। इससे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वास्तव में ही एक बहुत बड़ा सत्य निहित हो। क्योंकि गांधीजी सन्त पाल की भांति धार्मिक पुरुषों की उस श्रेणी के हैं जो द्विजन्मा होते हैं। उन्होंने अपने जीवन में एक विशेष-क्षण में

मानव आत्मा के उस भयकर कम्पन को अनुभव किया जो मानो कायाकल्प कर देता है। अपने प्रारम्भ के दिनो मे महात्माजी ने लगन के साथ वैरिस्टरी का जीवन विताया था उनकी मुख्य महत्वाकाक्षा थी सफलता। अपने पेशे की सफलता, लौकिक और सामाजिक सफलता, और गहरे जावे तो, राष्ट्र का नेता बनने की सफलता।

वह दक्षिण अफ्रीका अपने काम पर वकील के रूप में, एक महत्वपूर्ण मुक़दमे में जिसमें दो बडे भारतीय व्यापारी फँसे हुए थे, पैरवी करने के लिए गये थे। इस समय तक उन्हे काले और गोरे रग के भेद का बहुत दूर से ही ज्ञान था; लेकिन उन्होने इस पर यह कभी नहीं सोचा था कि अगर काले भारतीय होने के कारण किसीने उनके जिस्म पर हमला किया तो उनका क्या अर्थ होगा? मगर जब यह पहली दफा डरबन से मैरित्सवर्ग गये तो उन्हे रास्ते मे यह दुखद अनुभव अपने पूरे नग्न-रूप में हुआ। एक रेलवे के अधिकारी ने उन्हे रेल के डिब्बे मे से उठाकर बाहर पटक दिया; और यह सब तब हुआ जबकि उनके पास फर्स्टक्लास का टिकिट था। डाकगाडी उनको विठलाये बिना ही आगे चली गई। रात बहुत चली गई थी और महात्माजी ने देखा कि वह एकदम अजनबी स्टेशन पर थे जहाँ कोई भी व्यक्ति उनको नहीं जानता था। इस अपमान को सहन करने और रातभर ठड मे सिकुडने के पश्चात् उनके हृदय मे दो भावो मे जबर्दस्त सघर्ष शुरू हो गया। एक भाव कहता था कि उन्हे इसी समय टिकिट लेकर जहाज से भारत वापस चले जाना चाहिए तथा दूसरा भाव कहता था कि नहीं, उन्हे भी उन कष्टो और मुसीबतो को अखीर तक सहना चाहिए जिन्हें उनके देशवासी रोजाना सहते हैं। सुबह होने से पूर्व ही उनकी आत्मा में एक प्रकाश उदित हुआ। उन्होने परमात्मा की दया से मर्द की भाँति बढ चलने की ठानी। अभी तो ऐसे अपमान जाने कितने उन्हे सहने थे। और दक्षिण अफ्रीका में उनके मौको की कमी न थी। पर जब चले तो चल ही पडे, लौटने की बात कैसी?

मैंने गत नवम्बर मास में महात्माजी के मुख से स्वय इस रात की कहानी सुनी। वह डाक्टर मॉट को सुना रहे थे। उन्होंने साफ़ कहा कि उनके जीवन में यह एक परिवर्तनकारी घटना थी जिसके बाद से उनका एकदम नया ही जीवन प्रारम्भ हुआ।

महात्माजी में और भी कई ऐसे गुण हैं जिनकी तुलना तापसी सतपाल के चरित्र में मिलती है। वे हैं—परमात्मा में अगाध निष्ठा, जो उन्हे मनुष्य के सामने झुकने की कभी इजाज़त न देगी, पाप और विशेषकर शारीरिक पापो के विषय में भीषण आतक की भावना, सबसे अधिक प्रिय जनो के साथ सख्ती ताकि वह उनसे की गई आशा से कम न उतरे और इसके साथ ही उनमें मन की एक ऐसी सवरण शीलता है, जो उन्हे ग़लत समझे जाने पर, मानो सहानुभूति की याचना कर उठती है।

उनमें इससे भी अधिक कई गुण हैं, जो उन्हे असीसी के सत फ्रासिस के समीप

ले आते हैं। दरिद्रता और गरीबी को उन्होंने वरण ही कर लिया है। आज हम उन्हें सचमुच "सेवाग्राम का एक मामूली दीन" कह सकते हैं, क्योंकि वह वहाँ पददलितों और गरीब ग्रामीणों में उनके भाग में हिस्सा बँटाते हुए रह रहे हैं। दो अवसरों पर मुझे उनकी इस फ़कीरी के मार्ग की यह महत्ता प्रकाश की भाँति स्पष्ट हो गई है।

पहिला अवसर तो डरबन के पास फिनिक्स में मिला। दिन और रात के मिलने का समय था। अँधेरी संध्या का शांत राज्य था। हम आश्रम में थे। महात्माजी तमाम दिन गरीबों में अथक काम करते रहने के बाद विस्तृत आकाश में, एक वृक्ष के नीचे थके-माँदे, इतने थके हुए कि आदमी इसकी कल्पना भी मुश्किल से कर सकता है, बैठे हुए थे। इतनी थकान में भी उनकी गोद में एक बीमार बच्चा था, जिसकी वह सेवा-परिचर्या कर रहे थे और जो कातर होकर प्यार के मारे उनसे चिपटा जा रहा था। वहीं पर एक जुलू लड़की भी, जो आश्रम के परे की पहाड़ी पर एक स्कूल में पढ़ती थी, बैठी हुई थी। अँधेरा बढ़ता जा रहा था, इसलिए महात्माजी ने इस अवसर पर मुझसे "भगवान प्रकाश दिखाओ" (Lead kindly light) प्रार्थना-भजन गाने को कहा। उस समय यद्यपि महात्माजी इस समय की अपेक्षा पर्याप्त जवान थे, फिर भी उनका दुबला-पतला शरीर दुखों से, जिन्हें वह एक क्षण के लिए भी टाल नहीं सकते थे, बहुत क्षीण और थका हुआ प्रतीत हो रहा था, लेकिन इस क्षीण और थकित शरीर के भीतर की उनकी आत्मा उस समय एक दिव्य प्रकाश से चमक उठी जबकि प्रार्थना-गीत ने रात्रि की निस्तब्धता को भंग किया।

उस गीत का अन्तिम चरण इस प्रकार था —

तबतक जबतक, रात्रि अँधेरी रम्य उषा में आ बदलो।
खोये चिरप्रिय देवदूत वे मुसकाते फिर मुझे मिलो॥[1]

जब गीत समाप्त हुआ तो चारों ओर नीरवता थी। मुझे अब तक याद है कि उस समय हम कितने चुपचाप बैठे हुए थे। यह भी याद है कि इसके बाद महात्माजी उस चरण को मन ही मन में दोहराते रहे थे।

दूसरा अवसर उड़ीसा में मिला। वह जगह यहाँ से नजदीक ही थी, जहाँ मैं इस लेख को बैठा लिख रहा हूँ। महात्माजी मरणासन्न हो चुके थे, क्योंकि उनपर यकायक ही हद दर्जे की थकान की पस्ती छा गई थी और खून का दबाव चढ़ इतना गया था कि खतरे की बात थी। बीमारी का तार मिलते ही मैं रातोरात गाड़ी में बैठकर उनके पास मौजूद रहने के लिए चल दिया। पास पहुँचा तो मैंने उन्हें सारी रात बेचैनी से गुज़ारने के बाद उगते सूर्य की ओर मुँह किये हुए लेटे पाया। हमने अभी

१ मूल अंग्रेज़ी पद्य इस प्रकार है —

And with the morn those angel faces smile,
Which I have loved long since and lost a while

बातचीत शुरू ही की थी कि दलित जाति की सबसे निचली श्रेणी का एक आदमी अपनी फरियाद लेकर उनके पास आया। क्षणभर में ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उनकी अपनी बीमारी बिलकुल दूर होगई है। आदमी नीचे धरती पर लेटा हुआ था। उस निर्दय अपमान पर जिसने उसे मनुष्य के दर्जे तक नीचे गिराया था, उनका जी वेदना से फटने-सा लगा था।

३

दो बातें हैं, जिनके कारण महात्मा गांधी का नाम आज से सैकड़ों साल बाद भी अमर रहेगा। वे हैं (१) उनका खादी कार्यक्रम और (२) सत्याग्रह का उनका आचरण।

(१) आज के, इस मशीनयुग में महात्माजी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने संसार के किसानों में ग्रामीण व्यवसायों और घरेलू उद्योगधन्धों को बड़े पैमाने पर पुनर्जीवित किया है उन्होंने इसे इसलिए शुरू किया था कि किसानों को साल के उन दिनों में भी कुछ काम मिल जाय जबकि उनके खेतों पर कोई काम नहीं होता और वह घर पर खाली बैठे रहते हैं। भारतवर्ष में यह समय हर साल में चार या पांच महीने रहता है। पहले ज़माने में मशीनें नहीं थी। कातने, बुनने और अन्य ग्रामीण व्यवसायों में परिवार का प्रत्येक आदमी यहां तक कि छोटे-से-छोटे बच्चे भी, लगे रहते थे और रोज़ाना के काम के लिए घर पर ही उतना मज़बूत कपड़ा कात और बुन लिया जाता था।

यह कहना गलत नहीं होगा कि मनुष्य-जाति का कम-से-कम आधा भाग ऐसा है जो इस प्रकार की सामयिक बेकारी से पीड़ित है। इसका एक बड़ा कारण मशीन के कपड़े का बड़ी तादाद में पैदा होना है। जिसने अपने सस्तेपन के कारण आहिस्ता-आहिस्ता गृह-व्यवसायों और उद्योग-धन्धों को चौपट कर दिया है।

गांधीजी पहले व्यक्ति हैं जो इस बात में जीता जागता विश्वास रखते हैं कि घरेलू धंधों का पुनरुज्जीवन अब भी सम्भव है और इनसे ग्रामीणों का न सिर्फ शारीरिक [illegible] भूख की पीड़ा से भी बचाया जा सकता है। वह इस दिशा में लाखों हृदय में आशा का सञ्चार करने में कामयाब हुए हैं। उन्होंने [illegible] हिन्दुस्तान [illegible]

([illegible]

जिस रूप में कि मैं उनके जीवन को चीन्हता हूँ उसमें तीन बातें मुझे प्रधान दिखाई देती हैं। पहली और प्रमुख है उनकी निर्मल सादगी। दूसरी, अपनी मूल मान्यताओं पर प्रेम और तीव्र निष्ठा। और तीसरी, उनकी सहज-सम्पूर्ण निर्भीकता।

जहाँ जिस अवस्था में देखिये, सादा और व्यवस्थित उनका जीवन पाइएगा। और साधारण ऐसा कि हर परिस्थिति में हर को सुलभ। शोहरत की रोशनी सब कहीं हरदम उनको घेरे रहती है। पर उस सब प्रसिद्धि और व्यस्तता के बीच जैसे अनायास और सहज भाव से वह रहते हैं, वैसे यदि कहीं हम भी रह सकते होते तो? आत्मा उनकी संसार के आगे नग्न है। छोटी-से-छोटी आदतें उनकी सधी हैं और वह मौन की शक्ति का उपयोग जानते हैं जो कि हममें से बहुत ही कम लोग जानते होंगे।

उनका जीवन एक पदार्थ पाठ है। नित्य-प्रति की साधारण-से-साधारण बातों में हम उनसे शिक्षा ले सकते हैं। दुनिया की कृत्रिमता और विषमता उनके पास आकर सुलझ रहती है और उनका व्यवहार सदासहज, अकृत्रिम और ईशनियमाधीन होता है। मानव-परिवार या समस्त जीव-परिवार को अगर कभी शान्ति और समृद्धि प्राप्त होनी है, तो इसी सहज नीति से प्राप्त हो सकेगी।

यह मैं एक क्षण के लिए भी नहीं कहता कि उनकी सब बातों की हूबहू नकल करनी चाहिए। लेकिन यह तो सादर कहता ही हूँ कि उनके जीवन की स्फूर्ति और भावना को हम अपनायें तो हमारा कल्याण होगा।

अपने एक निजी और विलक्षण रूप में अन्धकार से प्रकाश में आने का मार्ग उन्होंने दिखाया है। वह दूरस्थ प्रकाश देखते हैं और उधर संकेत करते हैं। हममें से कुछ उस आदि प्रकाश-स्रोत को देख न भी सकें, पर स्वयं उनके व्यक्तित्व का प्रकाश तो देखते ही हैं। और दूसरे के पास का भी प्रकाश, फिर वह हमसे चाहे कितना भी भिन्न हो पथ-प्रदर्शन में हमारी सहायता ही करता है। आखिर तो प्रकाश सब एक ही है। हम ही उसे नाना रूप और आकार देते हैं।

उनके फैलाये कुछ [illegible] हूँ। जिन बातों पर मैं जोर देना चाहता हूँ [illegible] [illegible] गांधीजी [illegible] क्यों न हो — [illegible] की मान्यता क्या है और [illegible] सत्य-निष्ठा [illegible]

[illegible]

विश्व-बन्धुत्व की भावना से ज्वलन्त हो, सरल स्वभाव की महत्ता में जागरूक हो, जिनमें आदर्श की ऐसी अदम्य प्रेरणा हो कि वह आदर्श स्वयं जीवन से भी अधिक अनिवार्य और महत्वपूर्ण उनके लिए हो जावे. फिर वे सही माने जावें, या ग़लत माने जावें,— सही-ग़लत का भेद किसने पाया है ?—लेकिन हृदय जिनका जगद्गर्भ में व्याप्त विराट् करुणा के सुर के साथ बजना जानता हो।

ऐसा पुरुष है गांधी ! और क्या कहूँ ?

: ५ :

भारत का सेवक

रेवरेण्ड वी. एस. अज़ारिया, एम. ए., डी. सी. एल.

[बिशप दोर्नाकल, भारत]

मुझे हर्ष है कि गांधीजी के ७१वें जन्म-दिवस के अवसर पर औरों के साथ मुझे भी उन्हें बधाई देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

वर्तमान युग में किसी व्यक्ति का भारतीय जनता के निर्माण में ऐसा महत्वपूर्ण भाग नहीं है जैसा कि महात्माजी का है। यूरोप में तो सर्वसाधारण भारत को 'गांधीजी का देश' ही कहकर पुकारते हैं। रोम के पोप के महल के एक इटैलियन दरबान से हुई अपनी छोटी-सी बातचीत को मैं कभी नहीं भूल सकता। जब मैंने उसे अपना नाम और पता लिखकर दिया तो उसने मुझसे कहा—"भारत ?"

मैंने कहा, "हाँ।"

उसने फिर कहा 'गांधी ?'

जब उसके मुँह से एक हल्की मुस्कान के साथ गांधीजी का नाम निकला तो मैं फौरन समझ गया कि इसका [illegible] गांधीजी के देश से है और इसीलिए मैंने इसके जवाब में हाँ कह [illegible] मैं इटली में जहाँ भी कहीं गया, वहाँ-वहाँ [illegible]

[illegible] मैं उस समय [illegible] गया था। [illegible] बताऊँ। मैंने उन्हें [illegible] लायक कुछ और [illegible] होगया। इसके बाद [illegible] कुछ

तैयार हो जावे। जैसे कि मैंने ही स्वीकार तो किया, मगर मैं ही अपनी स्वीकृति और विश्वास को निष्ठा के बिंदु तक नहीं ला सका।)

गांधीजी के चले जाने के बाद मैं उन विभिन्न तत्त्वों के मिश्रण पर ग़ौर करने लगा जो उनमें पाये जाते हैं। मैंने उनमें सन्त फ्रांसिस को पाया, जिसने समस्त विश्व के साथ सामंजस्य और विश्व की सब वस्तुओं के साथ प्रेम अनुभव करते हुए ग़रीबी की सादी ज़िन्दगी बिताने की प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। मैंने उनमें सन्त थॉमस एक्विनस को भी पाया, जो संसार का एक महान् विचारक और दार्शनिक होगया है और जो बड़ी-बड़ी दलीलें देने में समर्थ तथा विचारों के सब तोड़-जोड़ों से उनकी बारीकियों से भली-भांति परिचित था। इन दोनों के अलावा मैंने उनमें एक व्यावहारिक मनुष्य को भी पाया, जिसके पास अपनी व्यावहारिकता को मज़बूत बनाने के लिए क़ानून की शिक्षा भी मौजूद थी और जो अपनी कुशल सलाह से लोगों को पथ-प्रदर्शन करने के लिए पहाड़ की चोटी से घाटी में भी उतर कर आ सकता था। यों तो हम सब मानव जटिल स्वभाववाले होते हैं, मगर गांधीजी तो मुझे हम सबसे अधिक जटिल प्रकृतिवाले मालूम पड़े। उनका एक अद्भुत मोहक और रहस्यमय व्यक्तित्व था। अगर वह केवल सन्त फ्रांसिस होते तो समझने में कठिनाई न थी। मगर कैसे एकान्त तपस्वी सदा उतना मंगलमय और उनके देशवासियों के तथा संसार के लिए उतना लाभकारी और उपयोगी भी हो सकता था? जब मैंने इस प्रश्न पर विचार किया तो मुझे उत्तर मिला—'नहीं।' रहस्य है असल में समन्वय। विभिन्न तत्त्वों का मिश्रण ही व्यक्तित्व का सार तत्व है। वह संसार के लिए जो कुछ है और संसार के लिए जितना कुछ वह कर सकते हैं उसका कारण है उनका एक ही साथ एक से अधिक बहुत कुछ होना।

यही बात मुझे इस लेख की अन्तिम और गांधीजी की एक और मौलिक विशेषता पर ले आती है जिसका ज़िक्र किये बिना मैं नहीं रह सकता। मैंने अभी उन्हें वह मनुष्य बताया है जिसमें सन्त फ्रांसिस और सन्त थॉमस के साथ क़ानूनदां और व्यवहार-कुशल मनुष्य भी मिला हुआ है [illegible]

जिनके इतने अनुयायी हैं जिन्होंने घटना-चक्रों में इतना परिवर्तन किया है और जिन्होंने एक से अधिक महाद्वीपों में लोगों के विचारों पर इतना प्रभाव डाला है, १९०३ में मिले सुयोग्य युवा वकील में जो आध्यात्मिक शक्तियाँ छिपी हुई थीं, उनका मैं उस समय अनुमान न कर सका था। उस अपनी असफलता को मुझे नम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

: १० :

गांधीजी और कॉंग्रेस

डा० भगवान्दास, एम. ए., डी. लिट्.

[काशी]

बीसवीं शताब्दि के इन अन्तिम चालीस वर्षों का मनुष्य-जाति का तूफानी-इतिहास केवल बीस-बाईस नामों का ही खेल है। इनमें से आधे से कम आज भी जीवित हैं। महात्मा गांधी केवल उनमें से एक ही नहीं हैं, अपितु उनमें भी अद्वितीय हैं। कारण कि वह स्वयं राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अहिंसात्मक आध्यात्मिकता के एकमात्र देवदूत हैं। बुद्ध के पश्चात् भारतीय इतिहास में गांधीजी से अधिक महान् या उनके समान भी कोई नैतिक कल्पना में भी नहीं आ सकते। जब कभी 'वर्तमान' भूत हो जायगा और 'वर्तमान' का निष्पक्ष महत्त्व कट-छँटकर ठीक हो जायगा तब भी ही भावी ऐतिहासिक उनकी बराबरी के नाम गिनाने लगें। निश्चय ही तुलना अन्यत्र भिन्न-अवस्था तथा विभिन्न समयों के प्रयोजनों के आधार पर ही होगी। अब तो महात्मा गांधी का व्यक्तित्व अद्वितीय है।

इसलिए यह स्वाभाविक है कि मैं उनका भारी प्रशंसक हूँ। मुझे आदर है उनके [illegible], अन्य स्फूर्ति और उत्साह उत्पादक [illegible] की एकता और एकनिष्ठता तथा 'ब्रह्मचर्य' और इन्द्रियदमन में भी (जो कि स्वयं ही उत्कृष्ट हैं)। इस सादगी और विशुद्ध ब्रह्मचर्य तथा इन्द्रियदमन [illegible] प्राचीन भारत में [illegible]

[illegible]

जिनके इतने अनुयायी हैं, जिन्होंने घटना-चक्रों में इतना परिवर्तन किया है और जिन्होंने एक से अधिक महाद्वीपों में लोगों के विचारों पर इतना प्रभाव डाला है। १९०३ में निरे सुयोग्य युवा वकील में जो आध्यात्मिक शक्तियाँ छिपी हुई थीं, उनका मैं उस समय अनुमान न कर सका था। उस अपनी असफलता को मुझे नम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

: १० :

गांधीजी और कॉंग्रेस

डा० भगवान्दास, एम. ए., डी. लिट्.

[काशी]

बीसवीं शताब्दि के इन अन्तिम चालीस वर्षों का मनुष्य-जाति का तूफानी-इतिहास केवल बीस-तीस नामों का ही खेल है। इनमें से आधे से कम आज भी जीवित हैं। महात्मा गांधी केवल उनमें से एक ही नहीं है, अपितु उनमें भी अद्वितीय हैं। कारण कि वह स्वयं राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अहिंसात्मक आध्यात्मिकता के एकमात्र देवदूत हैं। बुद्ध के पश्चात् भारतीय इतिहास में गांधीजी से अधिक महान् या उनके समान भी कोई नैतिक कल्पना में भी नहीं आ सकते। जब कभी 'वर्तमान' 'भूत' हो जायगा और 'वर्तमान' का निस्सीम महत्त्व घटबढ़कर ठीक हो जायगा तब भले ही भावी ऐतिहासिक उनकी बराबरी के नाम गिनाने लगें। निश्चय ही तुलना अत्यन्त भिन्न-भिन्न अवस्था तथा विभिन्न समयों के प्रयोजनों के आधार पर ही होगी। आज तो महात्मा गांधी का व्यक्तित्व अद्वितीय है।

इसलिए यह स्वाभाविक है कि मैं उनका भारी प्रशंसक हूँ। मुझे आदर है उनके [illegible] और [illegible] की [illegible] और [illegible] [illegible]

[illegible]

संकल्पयुक्त मनन आत्मपरिचालन की शक्ति 'धीरता' (धियम्+ईरयति) ऐसी विलक्षण है कि गम्भीर परिस्थितियों में या परीक्षा के कठिन अवसरों और कष्टों में, जिनसे वह घिरे ही रहते हैं, उनका सार्वजनिक वर्णन देखकर कहना होता है कि जब कभी परीक्षा हुई वह ओछे, हल्के कृत्य या विचार से मुक्त मिले। उनका अचूक शौर्य और सौजन्य, उनकी आत्मा की धीरता, भारत की सेवा में उनकी अपनी आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार मन और शरीर की अथक क्रियाशीलता, इन सबके कारण उनके घोर उग्रतम विरोधी भी उनकी प्रशंसा करते रहे हैं और प्रायः उनकी इच्छा के अनुरूप काम करने के लिए तैयार हो गये हैं।

यह अनुभव करते हुए, यह उचित है कि इस अवसर पर मैं श्रद्धाञ्जलि के रूप में कुछ फूल भेंट करके ही सन्तुष्ट न हो जाऊँ। ऐसे सत्कार से तो महात्मा गांधी अब तक ऊब चुके होंगे। इसलिए मैं उनके महान् कार्य के सम्बन्ध में कुछ ऐसे आलोचनात्मक विचार उपस्थित करने का साहस करता हूँ, जैसे मैं पन्द्रह या अधिक वर्षों से कुछ सुझावों के साथ-साथ उनके और भारतीय जनता के सम्मुख रखता आया हूँ। महात्मा गांधी ने भारत में जिस नवजीवन का संचार किया है उसके सम्बन्ध में मैं जो विचार प्रकट करूँगा, वे सब अपनी उत्कृष्ट बुद्धि की धृष्टता से नहीं उपजे हैं, बल्कि उनका आधार परम्परागत प्राचीनज्ञान ही है।

सामान्यतः विश्वपरिस्थिति : विशेषतः भारतीय परिस्थिति

मानव-जगत् चार वर्ष के पश्चात् सन् १९१८ में भयानक अग्निकुण्ड से बाहर निकल पाया। पर उसकी आँख नहीं खुली। अब भी वह फिर रौरव के तट पर खड़ा है और गिरना ही चाहता है। स्पेन इस युद्ध से नष्ट हो गया और इस युद्ध में फ्रान्को और फासिज्म की विजय हुई। चीन जापान से जीवन-मरण के संघर्ष में फँसा है। भारत—गुलाम, दरिद्र, आत्मिकता से च्युत भारत—एक अहिंसात्मक राजनैतिक आर्थिक संघर्ष में लगा हुआ है। इसपर बीच-बीच में साम्प्रदायिक दंगों का भी इसे शिकार होना पड़ता है, जो कि अहिंसा के विपरीत स्थिति के द्योतक हैं। भारत के दुष्ट-बुद्धि, धार्मिक, राजनैतिक 'नेताओं' की कुमन्त्रणाओं और ब्रिटेन की कूटराजनीति का यह परिणाम है। धर्म को अपने नफे का पेशा बनाकर रखनेवाले मजहब के ठेकेदारों ने दोनों मजहबों को उनकी यथार्थता से हटाकर विरूप, विकृत और कलुषित कर दिया है। इन सब कारणों से ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ फायदा उठा रहे हैं। यह कहना कि दोनों जातियों के [illegible] मानव चित्त [illegible] रहा है एक की हानि से ही दूसरे का लाभ है, इस [illegible] धारणा का ही [illegible] की भौंडी नकल है कि कोई दल, राष्ट्र या वर्ग दूसरे दल, वर्ग या राष्ट्र पर आतंक जमाकर या उसे दास बनाकर ही फल-फूल सकता है। यह धारणा उस जीवन-संघर्ष के नियम का जिसकी कि बड़ी डींग हाँकी

जाती है, और 'जीवन के लिए सहयोग' के उत्तम और महत्वपूर्ण नियम को भुला देने का स्वाभाविक परिणाम है। इसका नतीजा यह है कि भारत का सारा वातावरण पारस्परिक द्वेष और अविश्वास की विषैली गन्ध से ओतप्रोत है और प्रत्येक शांति-प्रिय, ईमानदार और भले हिन्दू और मुसलमान के लिए जीना चिन्तामय हो गया है। बहुत पहले, स्वर्गीय श्री गोपालकृष्ण गोखले ने कहा था—"हिन्दू, मुसलमान और ब्रिटिश शक्ति त्रिभुज की कोई-सी दो भुजायें मिलकर स्पष्टतया तीसरी से बड़ी हैं।' इसीलिए लन्दन में सन् १९३० से १९३३ तक हुई तीन गोलमेज परिषदों का परिणाम यही हुआ कि पृथक् चुनाव-पद्धति पर स्वीकृति की मोहर लगाकर और उसे भविष्य में जारी रखकर दोनों जातियों के पृथक्करण की कलुषित पद्धति की व्यवस्था की गई है। फिर यह तो होना ही था कि नौकरियों में साम्प्रदायिक अनुपात और स्थानानुपात को बढ़ावा देकर ऊपर से नीचे तक की राष्ट्र की सब नौकरियों में साम्प्रदायिक भावना भर दी गई। इन नौकरियों पर रहनेवाले स्वभावतः औसत नागरिक से अधिक चतुर और विज्ञ होते हैं, और इनके हाथ में सरकारी अधिकार की भारी शक्ति रहती है, और, आजकल, प्रायः हर जगह शक्ति का अर्थ होता है, निर्बल, भले और ईमानदार को सहायता देने की अपेक्षा उसे हानि पहुँचाना और उनके मार्ग में रोड़े अटकाना।

ब्रिटिश कूटनीति ने जब से पृथक् चुनाव-क्षेत्रों की स्थापना की है, तबसे भारत में साम्प्रदायिक समस्या सब समस्याओं से अधिक तीव्र बन गई है। पहले तो यह पृथक् निर्वाचन नियम इस शताब्दि के दूसरे दशाब्द में म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में दाखिल हुए और फिर इस तीसरे दशाब्द में धारासभाओं में प्रवेश पा गये।

२३ मार्च १९३९ को एक अमेरिकन सम्वाददाता ने महात्मा गांधी से प्रश्न किया—"क्या भारत आपकी पसन्द के माफिक ही उन्नति कर रहा है?" महात्माजी विचारमग्न होगये और फिर उत्तर दिया— हाँ कर रहा है। कभी-कभी इसमें अवनति भी होती है, लेकिन मूल में उन्नति है और वह उन्नति पक्की है। सबसे बड़ी बाधा हिन्दू-मुस्लिम मतभेद है। यह एक भारी रुकावट है [illegible]

[illegible]

करते हैं कि वह "केवल सत्य का मार्ग दिखा सकते हैं परन्तु स्वयं सत्य को नहीं।" और उन्होंने उस पूर्ण सत्य को स्वयं देखा भी नहीं है, जिसको भारत के प्राचीन ऋषियों ने देखा, दिखाया और जिसका मार्ग भी बताया था। व्यक्ति-समष्टि-तन्त्र के सत्य का जो सम्पूर्ण दर्शन ऋषियों ने पाया था, वह महात्मा गांधी को प्राप्त नहीं हुआ है। उनके 'हिन्द-स्वराज' में जो सत्य है वह उसी तथ्य का अस्पष्ट आभास-मात्र है जिसका उपनिषदों, गीता और मनुस्मृति ने प्रतिपादन किया है। उपनिषदादि प्रतिपादित तथ्य यह है कि इन सारी पृथक्-पृथक् चेतन सत्ता और सारी जीवन क्रिया का मूलाधार और आदि कारण अविद्या या माया है जिससे हम यह मान लेते हैं कि अनादि-अनन्त आत्मा और हाड-मांस का पिण्ड, यह सान्त शरीर दोनों एक ही हैं। इसीने 'अहंकार,' 'स्वार्थ-भावना,' 'राग-विराग,' 'प्रेम और घृणा' का जन्म है, और इसी कारण 'परमार्थ,' 'आत्म-त्याग,' 'दान-दया,' आदि भावनायें सम्भाव्य और यथार्थ बनती हैं, अन्त में सब मानवीय दुःख-सुख भी त्यागकर पूर्ण समाधि अर्थात् चित्शक्ति के सर्वोच्च तत्त्व में फिर से लीन हो जाना चाहिए। लौटकर केवल किसानी जीवन पर पहुँच जाना ही काफी नहीं होगा। इस सचाई पर चलने के लिए हमें और भी पीछे जाना पड़ेगा। राष्ट्रों और व्यक्तियों को इसी प्रकार लौटना पड़ेगा, लेकिन उचित अवसर देखकर, अर्थात् सब पदार्थों का भोग तथा अनुभव करने और अपेक्षाकृत कल्याण-मार्ग पर चलते रहने के और 'स्वार्थ' तथा 'परमार्थ' की अपनी सब तृष्णा-वासनाओं को तृप्त करने के पश्चात्। महात्मा गांधी ने प्रायः 'स्वराज' का अर्थ 'रामराज' किया है, परन्तु वहाँ भी रामराज का निश्चित लक्षण नहीं बताया। लेकिन अगर वाल्मीकि का विश्वास करें तो रामराज तो निरे कृषि-जीवन से बहुत भिन्न था। इसमें कृषि-जीवन की प्रधानता अवश्य थी, लेकिन इसमें केवल गाँव ही नहीं थे, अच्छे शहर भी थे। राम की अयोध्या का वाल्मीकि-कृत वर्णन अधिक रमणीय होते हुए भी रावण की सुनहरी लंका की भाँति ही महिमामय है। और लंका तो 'भौतिक' ही अधिक थी।

भारत की वर्तमान अवस्था और इसके अन्दर [illegible] हमारी युवक शिक्षित पीढ़ी की [illegible] समाजवाद या साम्यवाद पर [illegible] की [illegible] पुरानी पीढ़ी के [illegible] और [illegible] कुछ भी [illegible] कुछ तो यह अनुभव करते हैं [illegible] और

इसके स्थान पर सच्चे आध्यात्मिक धर्म की थोडी-सी मात्रा और कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त ग्रहण कर ले तो वे तत्काल एक-दूसरे मे हिलमिल ही नही जायगे, परस्पर आलिगन भी करने लग जायगे । इन सब 'विचारधाराओ' और 'वादो' ने भलाई की है और पाप भी कमाया है । वे केवल अपने-अपने पक्ष के गर्म मिजाजियो के कारण ही एक-दूसरे को घूर रहे है, और यही इनकी गर्मदिली अपने-अपने आदमियो की शक्ति 'युद्ध का सगठन' करने मे खर्च कर देती है, 'शान्ति की व्यवस्था' करने में नहीं।

दुर्बल जातियो के साथ पश्चिमी सभ्यता ने जो पाप किये है वे अब प्रकट हो रहे है । भाग्य उसका सूत के धागे मे लटकता दीखता है । उस सभ्यता की ऐसे सकट और मरणासन्न हालत देखकर हमारे 'प्रजातत्री' और 'समाजवादी' नेताओ का अनेक पश्चिमी वादो का मोह और जोश दूर नही तो कम तो पडना ही चाहिए । क्योकि इन वादो की स्वय पश्चिम के ही बहुत से प्रमुख वैज्ञानिक और विचारक प्रबल निन्दा कर रहे हैं । इससे चाहिए कि वे और हम अपने पुराने काल-परीक्षित समाज-व्यवस्था के सिद्धान्तो की ओर जायें और उन पर गम्भीरता से विचार करे । प्रश्न हो सकता है कि यदि वे सिद्धान्त इतने अच्छे थे तो भारत का पतन क्यो हो गया ? उत्तर यह है कि उनके सरक्षको में शील-चारित्र्य नही रहा, उनकी 'स्पिरिट', 'आत्मा' बदल गई, 'दिमाग' बिगड गया, भले सिद्धान्तो का व्यवहार छोड दिया गया, उनकी उपेक्षा की गई; यही नही उनके स्थान पर बुरे सिद्धान्त अपना लिये गए । भारत के विधि-विधान के सरक्षक 'तप' और सद्ज्ञान दोनो खो बैठे । कोई राष्ट्र, कोई जाति, कोई सभ्यता तब तक पनप नही सकती जबतक उसके अतरग में ठोस सत्य न हो और दुर्दमनीय हृदय और मस्तिष्क न हो । राष्ट्र का बल होते है ऐसे व्यक्ति जो स्वभाव से परमार्थी, त्यागी और ज्ञानी हैं । जो राष्ट्र या जाति 'हृदय और मस्तिष्क' की इस शक्ति को नहीं बना या पाल सकते, वे या तो भ्रष्ट होकर, या किसी प्रचण्ड आकस्मिक घटना से, युद्ध के ध्वस से अकाल ही काल के ग्रास हुए बिना या गुलाम बने बिना और दूसरो की दया पर जिये बिना नही रह सकते । भारत के भाग्य मे यह दूसरी बात लिखी थी उनके बुद्धिबल की । परन्तु भारत मे अभी तक बहुत कुछ जीवन बच रहा है, और नया जीवन मिलने की भी पूरी सम्भावना है, यदि, महात्मा गाधी के 'तप' मे आवश्यक 'विद्या' का मेल हो जाय ।

महात्मा गाधी आज हमारी महत्तम नैतिक और तप शक्ति है । बस, आवश्यकता है कि समाज-व्यवस्था-सम्बन्धी पुरातन विद्या और ज्ञान का सयोग प्राप्त हो जाय । गाधीजी तब भारत की रक्षा कर सकेगे और इसको एक ऐसा ज्वलत आदर्श बना सकेंगे कि पश्चिम भी अनुकरण करेगा । यह देश तब पश्चिम के आकार-प्रकार की ही एक निस्तेज और विकृति छायामात्र नही रहेगा ।

यह काम तभी होगा जब कि महात्मा गाधी और काग्रेस के दूसरे नेता इस

सम्बन्ध में अपने-अपने मस्तिष्क निर्भ्रान्त कर लेंगे और भारतीय जनता के अनुकूल सर्वोत्तम सामाजिक रचना या व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने निश्चित विचार बना लेंगे। तब उन्हें हिन्दू, मुसलमान, और ईसाई स्वयंसेवकों का एक मजबूत दल संगठित करना होगा। ये स्वयंसेवक त्यागी, घूमने-फिरने और कड़ा परिश्रम करने के आदी, बौद्धिक क्षमताओं से सम्पन्न हों, यदि वह सम्पन्नता न हो तो उसे प्राप्त करने की तत्परता होनी चाहिए। ये स्वयंसेवक ऐसे हों कि जो, मिलकर, भारत के कोने-कोने में निम्न सन्देश सुनाने में अपना जीवन अर्पित कर दें। यह सन्देश दो प्रकार का होगा। प्रथम, केवल भारतीयों के लिए ही नहीं, अपितु जाति, धर्म, रंग, वर्ग या लिंग-भेद के बिना समग्र मानव-जाति के हित के लिए प्राचीन बुजुर्गों द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवादी योजना और संगठन का ज्ञान-प्रसार। दूसरा, एक ही विश्व-धर्म की यह घोषणा कि **मूलतः सब धर्म एक और अभिन्न ही हैं।** कांग्रेस कमेटियाँ प्रत्येक नगर और जिले में हैं, और रियासतों में भी हैं। वे स्वयंसेवकों को इस काम में सहूलियत पहुँचा सकती हैं। वे स्वयंसेवक लोकमत को शिक्षण देंगे और लोगों को बतायेंगे कि 'स्वतन्त्रता' का अर्थ अपने अधिकारों का प्रयोग करने की आजादी तो है ही, पर उससे भी अधिक अर्थ है उन कर्तव्यों का पालन जो कि उक्त समाज-रचना की योजना में भिन्न-भिन्न व्यवसाय के लोगों के लिए निश्चित किये गये हों।

: ११ :

गांधीजी का राजनेतृत्व

अलबर्ट आइन्स्टाइन, डी. एस-सी.

[दि इन्स्टीट्यूट ऑव एडवान्स्ड स्टडीज, स्कूल ऑव मैथेमेटिक्स, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी, अमेरिका]

गांधीजी [illegible] व्यक्ति हैं। उन्होंने [illegible] [illegible]

[illegible]

करना पड रहा है, उनमें यह योजना विशेष आशाजनक है। इससे न केवल विद्यार्थी पढते-पढते अपनी पढाई का खर्च कमाने के लायक हो सकेंगे, बल्कि यह शिक्षा में से बहुत-से कूडे-कचरे को साफ करके उसे जीवन के लिए उपयोगी बना देगी। एक और बडा लाभ यह होगा कि शिक्षा कम-से-कम राष्ट्रीय व्यय में जनता के लिए सुलभ हो जायगी। इसके अतिरिक्त मानव-जाति के विकास में मनुष्य का मन सदा हाथ और आँख का सहारा लेता रहा है—यह योजना इस विचार के भी अनुकूल है।

हिंसा की समस्या और उसे हल करने के गाधीजी के उपाय पर मैंने अपनी पुस्तक 'दि पावर ऑव नॉन-वायलेन्स'[१] में विचार किया है और यहाँ मैं उसपर ज्यादा विवेचन नही करूँगा। यद्यपि उनके उपाय से भारतवर्ष को अभी स्वतन्त्रता नही मिल सकी, तथापि इसने बडी उन्नति करके दिखलाई है, और प्राय. सारी-की-सारी जनता के राजनैतिक और सामाजिक विचारो को परिवर्तित कर दिया है। अधिकांश लोगो ने पहले की भाँति अपनी हीनता को छोड दिया है और उनमें आशा, आत्म-विश्वास, राजनैतिक उत्साह आगया है और एक नये प्रकार के नवीन बल का परिचय दिया है। मुझे विश्वास है कि गाधीजी के उपाय से भारत स्वतन्त्र होकर रहेगा। इतना ही नही, बल्कि यह तमाम दुनिया का काया-पलट कर देगा।

ग़रीबी और बेकारी की समस्याओ को गाधीजी धुनने, कातने, कपड़ा बुनने और दूसरी दस्तकारियो के पुनरुद्धार द्वारा हल करना चाहते हैं। उनकी इस योजना के औचित्य का पश्चिम मे—और पश्चिमी शिक्षा तथा रहन-सहन में दीक्षित भारतीयो द्वारा भारत में भी—इतना अधिक विरोध किया है कि मैं इसकी पुष्टि में पश्चिमी विचार-प्रणाली से ही विस्तार के साथ विवेचन करना पसन्द करूँगा।

भारत में यह अनुभव किया जाता है, परन्तु अन्यत्र प्राय नही, कि भारत की विशेष ऋतु के कारण, वर्षा-ऋतु का समय छोटा और गर्मी तथा सूखे का समय बहुत बडा होने के कारण, बहुधा सारे भारत मे किसान तीन से छ महीने तक बिलकुल निकम्मा रहता है। बहुत सख्त गर्मी मे वह कठोर जमीन को जोत नहीं सकता और न फसल बो या काट सकता है। भारत के विशाल भूभाग में खेतो और जगलो मे सचमुच काम करनेवाले मजदूरो की सख्या लगभग बारह करोड है और इस कारण देश की सारी आबादी के साथ अपेक्षाकृत और एकान्त रूप से भी खेतिहर ग्रामीणो की इस सामयिक बेकारी का अनुपात और सख्या प्रतिवर्ष बहुत बडी रहती है। सारा नुकसान बहुत ज्यादा होता है। इसके कारण होनेवाले नैतिक और मानसिक पतन और ह्रास भी भयकर है। जबतक पश्चिम के मिल का बना कपडा भारत मे नहीं आया था तबतक किसान इस फुरसत के समय को कातने और कपडा बुनने और अन्य दस्तकारियो मे खर्च करते थे। आज भी हिन्दुस्तान के लिए आवश्यक कपडे का एक-

१ इसका हिंदी रूपातर मडल से 'अहिंसा की शक्ति' के नाम से निकल रहा है।

तब भी, हम इस सचाई की भी उपेक्षा नहीं कर सकते कि कल-कारखानों के सब देशों में आबादी जल्दी-जल्दी घट रही है। इस सचाई को कार-सौण्डर्स, कुजिन्स्की, टी० एच० मारशल, एनिड चार्ल्स, एच० डी० हेण्डरसन, आरनॉल्ड प्लाण्ट और हॉगबेन सरीखे अधिकारियों ने प्रमाणित कर दिया है। आबादी की इस घटती का भावी आर्थिक और सामाजिक प्रभाव सारे संसार पर, खासकर पश्चिम पर बहुत करारा और भयंकर पड़ेगा। इस कारण भी, दस्तकारियों और विशेषकर खद्दर का प्रसार अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

अन्य विचारों के अतिरिक्त इन कारणों से भी मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि गांधीजी एक महान् समाज-वैज्ञानिक और सामाजिक तथ्यों के आविष्कर्ता हैं। उनकी सफलतायें देखकर मुझे एक पुरानी संस्कृत लोकोक्ति याद आती है कि "महापुरुषों की चमत्कारिक शक्तियाँ कठिन काम करने से प्राप्त नहीं होतीं, बल्कि इस कारण प्राप्त होती हैं कि वह उन्हें शुद्ध हृदय से करता है।" इसका अभिप्राय यह है कि उच्च सरल उद्देश्य और उत्कट लगन ही चमत्कार दिखला सकती हैं। आइए, हम गांधीजी के लिए ईश्वर का धन्यवाद करें।

: १३ :

काल-पुरुष

जेराल्ड हेयर्ड

[हॉलीवुड, यूनाइटेड स्टेट्स अमरीका]

पश्चिमी दुनिया ने जब यह [illegible]

तब भी, हम इस सचाई की भी उपेक्षा नही कर सकते कि कल-कारखानो के सब देशो में आबादी जल्दी-जल्दी घट रही है। इस सचाई को कार-सौण्डर्स, कुकजिन्स्की टी० एच० मारशल, एनिड चार्ल्स, एच० डी० हेण्डरसन, आरनॉल्ड प्लाण्ट और होगबेन सरीखे अधिकारियो ने प्रमाणित कर दिया है। आबादी की इस घटती का भारी आर्थिक और सामाजिक प्रभाव सारे ससार पर, खासकर पश्चिम पर बहुत करारा और भयकर पड़ेगा। इस कारण भी, दस्तकारियो और विशेषकर खद्दर का प्रसार अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

अन्य विचारो के अतिरिक्त इन कारणो से भी मै इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि गाधीजी एक महान् समाज-वैज्ञानिक और सामाजिक तथ्यो के आविष्कर्ता है। उनकी सफलताये देखकर मुझे एक पुरानी सस्कृत लोकोक्ति याद आती है कि "मनुष्य को चमत्कारिक शक्तियाँ कठिक काम करने से प्राप्त नही होती, बल्कि इस कारण प्राप्त होती है कि वह उन्हे शुद्ध हृदय से करता है।" इसका अभिप्राय यह है कि उच्च, सरल उद्देश्य और उत्कट लगन ही चमत्कार दिखला सकती है। आइए, हम गाधीजी के लिए ईश्वर का धन्यवाद करें।

: १३ :

काल-पुरुष

जेराल्ड हेयर्ड

[हॉलीवुड, युनाइटेड स्टेट्स अमरीका]

पश्चिमी दुनिया ने जब यह कल्पना करनी शुरू की कि धनवान होना ही सभ्य होना है, तो यह खयाल रहा होगा कि जरूरी तौर पर ज्यो-ज्यो यन्त्र-कौशल उन्नत होगा, त्यो-त्यो कल्याण भी उतना ही बढता जायगा और सुख-समृद्धि भी स्थायी हो जायगी, लोग सब समान माने जाने लगेंगे, क्योकि बेहद सामान उन्हे समान भाव से मिल सकेगा और इस तरह उन्नति की सीमा न रहेगी।

अब जब यह थोडे दिनो की कल्पना उड रही है और यह पश्चिम का वहम साबित हुई है तब यह कहना सम्भव है कि आदमी सब बराबर नही है। प्रकृति की सबको भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक देन है और उनमे छोटे-बडे भी हो सकते है। यह भी जाहिर है कि सभ्यता अनिवार्य रूप से प्रगति ही नही करती जाती है बल्कि उसमे उतार-चढाव दोनो आते है। कभी तीव्र ह्रास का युग भी आ जाता है तो कभी किसी विशिष्ट सृजन-शक्तिशाली अकेले व्यक्ति की स्फूर्ति-प्रेरणा से आकस्मिक उत्थान और परिवर्तन भी हो सकता है।

सत्य का यह उद्‌घाटन समय से एक क्षण भी पहले नहीं हुआ। उसका अब ऐन अवसर था। पश्चिमी दुनिया समझे बैठी थी कि एक भविष्य उसकी प्रतीक्षा में है। वहाँ आराम, ऐश और इफरात होगी। सो वह उसीकी खुमारी में थी और मूलभूत समस्याओ के न सिर्फ हल करने में नाकामयाब हो रही थी, बल्कि वह समस्या दिनो-दिन घीरगति से विषम होती जाती थी। वह समस्या यह है कि पृथिवी पर न्याय का और व्यवस्था का सच्चा समर्थन किस मूल नियम में खोजा जाय और अगर हिंसा ही एकमात्र तरीका है, जिससे न्याय और अमन को कायम रक्खा जा सकता है, तो उस न्याय और अमन की सुरक्षा खुद हिंसा-विश्वासी शासक के हाथो कैसे हो ? इस प्रश्न का सामना सभी बडे-बडे सुधारको को करना पडा। ईसामसीह ने शस्त्र को नही छुआ, लेकिन उनके अनुयायियो के हाथ जैसे ही लोकसत्ता आई, वैसे ही उनमें तलवार भी दीखने लगी। मुहम्मद साहब ने भी प्रीति और सेवा के धर्म का उपदेश देना आरम्भ किया था, पर वहाँ भी अत्याचार को सुगम प्रचार का साधन बना लिया गया। तो भी सिद्ध है कि खूरेजी कभी सफल नहीं होती, फिर उसके उचित होने का प्रश्न ही जुदा है। हर नये यान्त्रिक आविष्कार के साथ शस्त्रास्त्र अपनी हिंस्रता में भीषण किन्तु निशाने में अनिश्चित होते जाते है। यही बात नही है कि 'मानो या न मानो तो भी मानना ही होगा।' बात तो इससे भी आगे पहुँची है। अब लडाई का निशान तो अधाधुन्ध और गलत होता है जिसमें ऐसे लोग भी मारे जाते है, जिनका बुनियादी झगडे से कोई वास्ता नही होता। और वे भी आक्रान्ता के खिलाफ खिच आते हैं। युद्ध कोई 'सामाजिक समस्याओ का निर्णायक' नहीं ह। वह तो समाज में पैठा हुआ रोग है।

अत अनेक प्रतिभाशील व्यक्तियो ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक शक्ति निर्माण करना चाहा। पहले तो वे मुश्किल से यह जानते थे कि हमें क्या करना है, परन्तु समय बीतने पर उसकी आवश्यकता अधिकाधिक अनुभव करने लगे। एक ऐसा शासन निर्माण करना था और ऐसी 'सेना' बनानी थी जो उचित, मौजूं, अचूक और रामबाण हो। श्री इग्नेशस लोयला की मसीही सोसाइटी (Society of Jesus) ऐसे ही प्रयत्न का गणनीय उदाहरण है। इस सस्था मे ऐसे चुने हुए लोग थे, जिन्हे बुद्धि-योग की ही शिक्षा नही मिलती थी, बल्कि हृदय को भी सस्कार दिया जाता था और तरह-तरह के मनोवैज्ञानिक अभ्यासो मे गम्भीर सकल्प-शक्ति-सग्रह की शिक्षा भी दीजाती थी। अनुशासन और बडो की आज्ञा-पालन की जहाँतक बात है, सोसाइटी का सगठन फ़ौजी तरीक़े का था। घर बसाने या जाने की छूट न होती थी, न पुत्र-कलत्र होसकते थे, न धन दौलत, न मान-सम्भ्रम। इस तरह की शिक्षा और साधना में से तैयार करके फिर शिष्यो को एक गुरु-सेनानी के मातहत भेज दिया गया रोमन चर्च की सुधार-प्रवाह में खोई हुई विभुता की पुनःप्रतिष्ठा के लिए।

इस नई निःशस्त्र सत्ता के विकास में अगली मंजिल पहले से भिन्न हुई। इस बार वह किसी निश्चित धर्म-मत की पुनःप्रतिष्ठा का प्रयत्न करनेवाली किसी व्यवस्था के रूप में नही, बल्कि जीवन की कुछ खास समस्याओ का निराकरण करने की सफलता के रूप में आई, जोकि अबतक हिंसात्मक उपायो से हल न हो सकी थी। पागलपन की नवीन मानसिक चिकित्सा पद्धति के उदय के साथ हम कह सकते हैं कि एकागी ही सही, पर अहिंसा की निश्चित विजय के लिए एक नवीन क्षेत्र खुल गया। उन्माद और मस्तिष्क-विकारो का इलाज दमन में नही, बल्कि प्रीति में देखा जाने लगा। अहिंसा की इस सूनी शक्ति ने पागलपन का मिटाना और पागल होने के अवसरो का कम करना सफल हुआ। पहले के रूट और गलत हिंसक साधनो में यह शक्ति कभी नही पाई जा सकती थी। जबर्दस्ती के विरोध में मुक्ति और दमन के विरोध में प्रीति के सिद्धान्त के इस वैज्ञानिक प्रयोग से हमने बहुत-कुछ सीखा है। असभ्य और पिछडी जातियो के साथ सम्पर्क की आवश्यकता सीखी, मानवता का विस्तार करना सीखा, जंगली जानवरो को साधना सीखा और अपराधी को फिर समाज-योग्य बनाने की शिक्षा ली।

तो भी हिंसक-साधनो से बस में न आनेवाले विशेष श्रेणी के मनुष्यो और पशुओं को सुधारने में इन अहिंसक पद्धति के अपूर्व फल तो दीख पड़े, पर ये फल अधिकतर व्यक्तिगत रूप में घटित और प्राप्त किये गये। जैसे कि अतिशय धर्मशील जीवन बितानेवाले क्वेकर लोगो ने जगह-जगह इनकी सफलता प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा दिखलाई थी। पर ये इक्के-दुक्के प्रयोग थे। इनमें कोई वैज्ञानिक एकसूत्रता की प्रतिष्ठा नही हुई थी। इन्हें उपयोग में लानेवाले लोग भी युद्ध और शान्ति, या समाज-व्यवस्था अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के सामान्य प्रश्नो की अपने इन अन्वेषण, पद्धति या सफलता से [illegible] संगति बैठती है, यह उस समय तक समझ नही पाये थे।

पर इस बीच लड़ाई-झगडे अधिकाधिक भीषण रूप पकड़ते गये। उनकी [illegible] की नौबत यहांतक पहुँची कि जिसकी सभावना भी नही थी। यहांतक [illegible] कल्पना भी उसपर [illegible]। और जैसा कि मनुष्य-जाति के विषय में अक्सर [illegible] है, जैसे-जैसे उस युद्ध की विभीषिका और व्यापकता बढ़ती चली गई और लोग उसके [illegible] से बच नहीं पाने लगे, वैसे-ही-वैसे यह युद्ध के [illegible] स्वयं साध्य समझा [illegible] लगा। [illegible] करने [illegible] थी, वह [illegible] बड़ी महत्त्वपूर्ण और [illegible] लगी।

इस प्रकार की [illegible] और [illegible] के बीच [illegible] और [illegible] एक व्यक्ति की [illegible] [illegible] हो [illegible] और [illegible] भी अधिक [illegible] विवेकहीन [illegible]। ठीक

कैसे घटित होगा। कल हमारे हाथ नहीं। लेकिन इतना कह सकते हैं कि सफलता हो या असफलता हो, जो अपने दूसरे भाइयों का हित चाहते हैं और उनकी हत्या नहीं चाहते उनके लिए राह यही और एकमात्र यही है, दूसरी नहीं और वह राह यदि प्रशस्त होकर आज हमारे आगे खुली हुई है तो उसका श्रेय सबसे ज्यादा उस व्यक्ति को है जो आज दिन अपने जीवन के और मानवजाति की सेवाओं के शिखर पर खड़ा है।

: १४ :

गांधी : आत्मशक्ति की प्रकाश-किरण

कार्ल हीथ

[अध्यक्ष इण्डिया कन्सिलियेशन ग्रुप, लन्दन]

मानवता के इतिहास में अवतारी पुरुष को सदा दुर्धर्ष संघर्ष का सामना करना होता है। किसी की उक्ति है "प्रकाश की भाँति मैं जग में आया हूँ।" किन्तु प्रकाश-पुंजों को यह जगत् स्वागत नहीं देता क्योंकि लोगों को प्रकाश से अधिक अन्धकार प्रिय होता है। अज्ञान, दुराग्रह और उपेक्षा ही जैसे रक्षक बनकर उन्हें बचाये रखते हों। अवतारी पुरुष इसी सुरक्षा के खोल को भंग करते और आत्मा की जय साधते हैं।

जीवनभर इस अन्धकार को छिन्न-भिन्न करके बढ़ते रहना और अज्ञान और दुराग्रह से कभी न हारना, बल्कि सदा उसे परास्त करते रहना—गांधी के चरित्र की विशेषता रही है। यही वजह है कि आज दिन हिन्दुस्तान की सर्वश्रेष्ठ आत्मा और प्रतिभा के रूप में ही उनकी दीप्ति फैली हुई नहीं है बल्कि समस्त सहृदय मानवता के स्फूर्तिदाता ही आज वह हैं। जीवन उनका सतत साधना, तपस्या, आर्त-कातर प्रार्थना और अनेक उपवासों का लम्बा इतिहास है। ऐसा न होता तो वह इतने महान् नहीं हो सकते थे।

बहुत पहले ही [illegible] गांधी [illegible] के [illegible] लिया था। [illegible] है [illegible]। गांधी ने स्वतन्त्र ही इस कथन की सचाई का [illegible] है। [illegible] गांधी के जीवन का अध्ययन [illegible] उनके [illegible] देखेंगे, वे यह अनुभव किये बिना नहीं [illegible] को देखकर उनके [illegible] भंग नहीं हो सकता [illegible] है [illegible] के [illegible] गति, अनगिनती दरिद्रनारायणों के प्रति [illegible]—

स्मरण कीजिए, भारतवासियों और उनकी स्वतन्त्रता के लिए किये गये प्रयत्नो को देखिए, दीन, दरिद्र और अपढ छितरे-छाये हिन्दुस्तान के गांवों को देखिए, सरहद के पठानों और कबीलेवालों को देखिए, मुस्लिम-हिन्दू ऐक्य या राजबंदियों के छुटकारे की बात लीजिए, सब वर्गों, जातियों, सम्प्रदायों और धर्मों के स्त्री-पुरुषों को देखिए, गोरक्षा की भावना से व्यक्त होनेवाले पशु-जगत् को लीजिए—गांधी का कर्म सब जगह व्याप्त दीखेगा। और बुराई के प्रति अहिंसात्मक प्रतिरोध की शिक्षा उनकी जीवित और अमर सूत्र है। दुनिया में जो लोग युद्ध की जिघांसा से युद्ध करने में प्रवृत्त हैं, उन सबको उनके उदाहरण मे आश्वासन और दिशा-दर्शन प्राप्त होगा। अपने समूचे और विविध लौकिक कर्म के बीच उस व्यक्ति ने किसीके प्रति असद्भावना को प्रश्रय नही दिया। सदा विकार पर विजय पाई और इस भांति "भारत के और 'मानवता' के एक विनम्र सेवक" कहलाने का गौरवपूर्ण अधिकार पाया।

सत्याग्रह के सिद्धान्त को ऐसी अविचल निष्ठा के साथ उन्होंने पकडे रक्खा, यह योग्य ही है, क्योंकि वह स्वय आत्म-शक्ति के अवतार हैं। अपनी सब सामाजिक और राजनैतिक प्रवृत्तियों से परे वह प्रकृत भाव में सदा आध्यात्मिक पुरुष ही रहे हैं। अत आधुनिक युग के लिए उनकी वाणी चुनौती की वाणी बनगई है, यही उनका सर्वोत्तम गुण है। इसीमें उनकी अवतारता सिद्ध है। जेल मे रहकर, त्रस्त होकर, उपेक्षा, अपमान और उपहास के शिकार बनकर भी वह मानवता की माप में हर पग पर ऊंचे-ही-ऊंचे चढते गये।

मनुष्यों तथा अन्य जीवधारियों के प्रति उनकी मानवोचित सहृदयता के कारण इस धरती पर हर देश और हर जगह उन्हें अनेक स्नेही बन्धु प्राप्त हुए हैं। उनके मन मे हिन्दू और मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी, यहूदी धर्मों के लोगों के बीच कोई भेद-भाव नहीं है। सब उनके मित्र हैं और सत्य के इस अनन्त परिवार के अंग हैं, और सत्य ही ईश्वर है। मनुष्य अथवा मनुष्येतर, अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति अहिंसा की भावना उनके जीवन में ओतप्रोत है। इस युग में सभ्य और परिपूर्ण मानवता का उन्हें नमूना समझिए।

: १५ :

मुक्ति और परिग्रह

विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग

[अध्यापक दर्शनशास्त्र, हारवर्ड-यूनिवर्सिटी]

आदमी पाता है कि खान-पान की अपनी स्थिति और अपने समाज-संबंधों के कारण गोया कर्म और विचार की उसकी स्वतन्त्रता में बाधा पहुँचती है। यह समस्या

सबके प्रति—धीरज उनका अखण्डित रहता है। यह अनन्त धैर्य-धन उनका स्वत्व है, और दारुण-से-दारुण घटना या जघन्य-से-जघन्य अपराध भी उनके धीरभाव को विचलित नही कर सकता। इसका कारण कदाचित् यह हो कि भीतर आत्मा मे उनके अखण्ड निष्ठा है कि प्रभु के राज्य मे अमगल की तो कभी कोई आशका ही नही हो सकती। और मोहनदास करमचन्द गाधी उस प्रभु के राज्य के ही सेवक है।

और फिर वह सत्य के अनन्योपासक है। वह कभी गलतिया न करने का ढोग नही रचते और जब-जब भूल उनमे होगई है, अनुपम साहस के साथ उसे उन्होंने स्वीकार किया है और सार्वजनिक आँखो के आगे उसका प्रायश्चित्त किया है। तीन वर्ष हुए, उन्होने लिखा था, "अब तो मेरे ईश्वर का एक ही नाम और बखान है। वह है सत्य! उससे अधिक सम्पूर्णता में और नही जानता।" ध्यान रहे कि इस ईश-धर्म मे वह काल्पनिक सचाइयो की दुनिया में नही जा रमते है, बल्कि इस भाँति उनकी कर्मनिष्ठा ही बढती है। "ऐसे धर्म के सच्चे अनुयायी रहने में व्यक्ति को जीव-मात्र की सतत सेवा में अपने को खो देना होता है।" और यह सेवा ऊपर से की जानेवाली दया-दान की सेवा नही है। "यह तो अपनी क्षुद्र बूद को जीवन के अपार महासागर मे पूरी तरह डुबोकर एकाकार कर देना है।" "जीवन के सब विभाग उस सेवा में समा जाने चाहिएँ।" इस तरह सत्य उनके लिए एक जीवन्त तथ्य है।

और इसलिए गाधी मे जीवन की एक अखण्डता—परिपूर्णता देख पडती है। आत्मिक ऊँचाई मे कही अलग जाकर वह नही खडे होते। यदि वह महात्मा है तो सर्वसाधारण के बीच सर्वाति साधारण भी है। दृष्टि स्पष्ट, ईश्वर के समक्ष मौन-मग्न, सच्चे अर्थ में विनय-नम्र! ऐसा यह प्रार्थना, अध्यात्म और ईश-लगन का पुरुष एक ही साथ शरीर के काम मे भी अथक और चुस्त है। सबके प्रति सुलभ, अतिशय स्नेही और अत्यत विनोदी। वह व्यक्ति मानव सघर्ष के निकट घमासान मे भी जितना नैतिक और धार्मिक है उतना ही सामाजिक और राजनैतिक भी है।

कभी वह रहस्य की भाँति दुरधिगम्य होते हुए भी अपनी आत्मा की सरलता और विमलता के कारण सबके स्नेह-भाजन भी है। फिर अपने अन्दर का मैल तो उन्होने कोने-काने मे धो डाला है। मैल नही ना बाहरी परिग्रह भी उनके पास नही ही जितना है। इसस उनके अपने या अन्य देशो के स्त्री पुरुष बडी सख्या मे दूर-दूर से खिचकर उनके पास पहुचते है। स्वत्व के नाते सब उन्होने तज दिया है। यारो की भाँति वह कुछ न रखकर भी सब पा जाने का आनन्द उठाते है। और समूची जीव सृष्टि की सेवा के अर्थ सत्य-शोध मे अपने को गला देनेवाले वह गाधी लाखो स्त्री-पुरुषो के आश्वासन और आकाक्षा के केन्द्र-पुरुष बन गये है।

दक्षिण अफ्रीका मे अपने राष्ट्रवासियो के हक मे उनके युद्ध को याद कीजिए। उनकी अपनी हिन्दू-जाति के अछूतो—हरिजनो—के अर्थ किये उनके आन्दोलन को

स्मरण कीजिए, भारतवासियो और उनकी स्वतन्त्रता के लिए किये गये प्रयत्नो को देखिए, दीन, दरिद्र और अपढ छितरे-छाये हिन्दुस्तान के गाँवो को देखिए, सरहद के पठानो और कबीलेवालो को देखिए, मुस्लिम-हिन्दू ऐक्य या राजबंदियो के छुटकारे की बात लीजिए, सब वर्गो, जातियो, सम्प्रदायो और धर्मो के स्त्री-पुरुषो को देखिए, गोरक्षा की भावना मे व्यक्त होनेवाले पशु-जगत् को लीजिए—गाधी का कर्म सब जगह व्याप्त दीखेगा। और बुराई के प्रति अहिंसात्मक प्रतिरोध की शिक्षा उनकी जीवित और अमर सूझ है। दुनिया मे जो लोग युद्ध की जिघांसा से युद्ध करने मे प्रवृत्त हैं, उन सबको उनके उदाहरण मे आश्वासन और दिशा-दर्शन प्राप्त होगा। अपने समूचे और विविध लौकिक कर्म के बीच उस व्यक्ति ने किसीके प्रति असद्भावना को प्रश्रय नही दिया। सदा विकार पर विजय पाई और इस भाँति "भारत के और 'मानवता' के एक विनम्र सेवक" कहलाने का गौरवपूर्ण अधिकार पाया।

सत्याग्रह के सिद्धान्त को ऐसी अविचल निष्ठा के साथ उन्होने पकडे रक्खा, यह योग्य ही है, क्योकि वह स्वय आत्म-शक्ति के अवतार है। अपनी सब सामाजिक और राजनैतिक प्रवृत्तियो से परे वह प्रकृत भाव से सदा आध्यात्मिक पुरुष ही रहे है। अत आधुनिक युग के लिए उनकी वाणी चुनौती की वाणी बनगई है, यही उनका सर्वोत्तम गुण है। इसीमे उनकी अवतारता सिद्ध है। जेल मे रहकर, त्रस्त होकर, उपेक्षा, अपमान और उपहास के शिकार बनकर भी वह मानवता की माप मे हर पग पर ऊँचे-ही-ऊँचे चढते गये।

मनुष्यो तथा अन्य जीवधारियो के प्रति उनकी मानवोचित सहृदयता के कारण इस धरती पर हर देश और हर जगह उन्हे अनेक स्नेही बन्धु प्राप्त हुए है। उनके मन मे हिन्दू और मुसलमान, ईसाई बौद्ध पारसी, यहूदी धर्मो के लोगो के बीच कोई भेद-भाव नही है। सब उनके मित्र है और सत्य के इस अनन्त परिवार के अग है, और सत्य ही ईश्वर है। मनुष्य अथवा मनुष्येतर अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति अहिंसा की भावना उनके जीवन मे ओतप्रोत है। इस युग मे सच्ची और परिपूर्ण मानवता का उन्हे नमूना समझिए।

: १५ :

मुक्ति और परिग्रह

विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग

[अध्यापक दर्शनशास्त्र, हारवड यूनिवर्सिटी]

आदमी पाता है कि आस-पास की अपनी स्थिति और अपने समाज-व्यवस्था के कारण गोया कर्म और विचार की उसकी स्वतन्त्रता मे बाधा पहुँचती है। यह समस्या

स्मरण कीजिए भारतवासियों और उनकी स्वतन्त्रता के लिए किये गये प्रयत्नों को देखिए, दीन, दरिद्र और अपढ़ छितरे-छाये हिन्दुस्तान के गांवों को देखिए, सरहद के पठानों और कबीलेवालों को देखिए; मुस्लिम-हिन्दू ऐक्य या राजबंदियों के छुटकारे की बात लीजिए; सब वर्गों, जातियों, सम्प्रदायों और धर्मों के स्त्री-पुरुषों को देखिए, गोरक्षा की भावना से व्यक्त होनेवाले पशु-जगत् को लीजिए—गांधी का कर्म सब जगह व्याप्त दीखेगा। और बुराई के प्रति अहिंसात्मक प्रतिरोध की शिक्षा उनकी जीवित और अमर सूत्र है। दुनिया में जो लोग युद्ध की जिघांसा से युद्ध करने में प्रवृत्त हैं, उन सबको उनके उदाहरण से आश्वासन और दिशा-दर्शन प्राप्त होगा। अपने समूचे और विविध लौकिक कर्म के बीच उस व्यक्ति ने किसीके प्रति असद्भावना को प्रश्रय नहीं दिया। सदा विकार पर विजय पाई और इस भांति "भारत के और 'मानवता के एक विनम्र सेवक' कहलाने का गौरवपूर्ण अधिकार पाया।

सत्याग्रह के सिद्धान्त को ऐसी अविचल निष्ठा के साथ उन्होंने पकड़े रक्खा, यह योग्य ही है; क्योंकि वह स्वयं आत्म-शक्ति के अवतार हैं। अपनी सब सामाजिक और राजनैतिक प्रवृत्तियों से परे वह प्रकृत भाव में सदा आध्यात्मिक पुरुष ही रहे हैं। अतः आधुनिक युग के लिए उनकी वाणी चुनौती की वाणी बनगई है, यही उनका सर्वोत्तम गुण है। इसीमें उनकी अवतारता सिद्ध है। जेल में रहकर, त्रस्त होकर, उपेक्षा, अपमान और उपहास के शिकार बनकर भी वह मानवता की माप में हर पग पर ऊंचे-से-ऊंचे चढ़ते गये।

मनुष्यों तथा अन्य जीवधारियों के प्रति उनकी मानवोचित सहृदयता के कारण इस धरती पर हर देश और हर जगह उन्हें अनेक स्नेही बन्धु प्राप्त हुए हैं। उनके मन में हिन्दू और मुसलमान, ईसाई, बौद्ध पारसी, यहूदी वर्गों के लोगों के बीच कोई भेद-भाव नहीं है। सब उनके मित्र हैं और सत्य के इस अनन्त परिवार के अंग हैं, और सत्य ही ईश्वर है। मनुष्य अथवा मनुष्येतर, अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति अहिंसा की भावना उनके जीवन में ओतप्रोत है। इस युग में सभ्य और परिपूर्ण मानवता का उन्हें नमूना समझिए।

: १५ :

मुक्ति और परिग्रह

विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग

[अध्यापक दर्शनशास्त्र, हारवर्ड-यूनिवर्सिटी]

आदमी पाता है कि आस-पास की अपनी स्थिति और अपने समाज-सम्बंधों के कारण गोया कर्म और विचार की उसकी स्वतंत्रता में बाधा पहुँचती है। यह समस्या

स्वीकार कर चुके, उसे तोड़कर स्वाधीनता के लिए आतुर हो रहे हैं। अधिक क्या कहें राजनैतिक कार्यों के संघर्ष से, संगठित धर्म से, और यहाँतक कि अपने खुद के प्रत्यक्ष अस्तित्व से भागकर स्वाधीनता के लिए छटपटा रहे हैं। लोक-सत्ता लड़खड़ाती है, क्योंकि चिन्तन और मनन उसे उन व्यक्तियों की सेवा से वंचित कर देते हैं जो उसके भार को सबसे अच्छी तरह वहन कर सकते हों। 'अपूर्ण की महिमा' हमें अब भी सीखनी है, और सीखना है कि जो विशिष्ट या व्यक्त और एकदेशीय को छोड़कर छूट जाता है, वह स्वयं अस्तित्व से ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है, क्योंकि अस्तित्व सविशेष या विशेषतया व्यक्त ही है।

गांधीजी ने हमें यह सिखलाया है कि अपनी जाति के अन्दर मिली अपनी आत्मा की महत्ता के अतिरिक्त दूसरी कोई महत्ता नहीं है। अपने प्रान्त या क्षेत्र के अन्दर जो हमारी सार्वलौकिकता है, उससे परे कोई सार्वलौकिकता नहीं है। स्वपरिग्रह से मुक्ति ही सच्ची मुक्ति है, अन्य मुक्ति नहीं।

: १६ :

गांधी की महत्ता का स्वरूप

पादरी जॉन हेन्स होम्स

[दि कम्यूनिटी चर्च, न्यूयार्क, अमरीका]

कोई बीस वर्ष हुए होंगे, मैंने अमरीका की जनता के आगे यह घोषित किया था कि "गांधीजी संसार में सबसे महान् पुरुष हैं। उन दिनों मेरे देशवासी गांधीजी के बारे में कुछ नहीं जानते थे। हमारे पाश्चात्य संसार में उनका नाम तब मुश्किल से पहुँच पाया होगा। किन्तु इस समय में उनका नाम इतना अधिक प्रसिद्ध हो गया जितना कि किसी भी महापुरुष का हो सकता है और अमरीकावासी इस बात को जानते हैं कि मैंने गांधीजी को जो सबसे महान् कहा था सो ठीक ही कहा था।

गांधीजी की महत्ता इस बात में [illegible] ऐसी [illegible] के कारण नहीं है जिनको कि साधारणतया [illegible] तो उनके पास बड़ी-बड़ी सम्पत्ति [illegible] कोई उच्चपदासीन राजनीतिक [illegible] दार्शनिक अथवा [illegible] भी नहीं हैं [illegible] शब्द। उनमें तो स्पष्ट और [illegible] को कम-से-कम [illegible] प्रभावशाली [illegible] शक्ति के क्षेत्र में सन्निहित है। वही उनका [illegible]

'आत्मबल' ही है जिसने उन्हे अनुपम प्रभाव और नेतृत्व के पद पर बिठा दिया है, और ऐसी वस्तुओ को प्राप्त कराया है जो इतिहास के छोटे-से बडे-से-बडे व्यक्तियो को छोडकर सबकी पहुँच और शक्ति से परे है ।

भारत को अन्त मे जब स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी तब उसका श्रेय जितना गाधी को दिया जायगा उतना किसी दूसरे भारतीय को नही मिलेगा । यह भी श्रेय गाधीजी को ही मिलेगा कि उस स्वाधीनता के योग्य अपने देशवासियो को उन्होने बना दिया है और ऐसा उन्होने उनकी अपनी सस्कृति का पुनरुद्धार करके, आत्मगौरव और आत्मसम्मान की भावना को उनके अन्दर जाग्रत करके, उनमे आत्मनियत्रण का अनुशासन विकसित करके, अर्थात् उन्हे आध्यात्मिक तथा राजनैतिक दृष्टि से आजाद करके, किया है । इसके अलावा, उनका एक महान् कार्य अस्पृश्यो के उद्धार का है—यह अकेला काम ही उनका इतना महान् है कि जो मानव-जाति के उद्धार के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा । फिर गाधी के जीवन की श्रेष्ठ वस्तु 'अहिसात्मक प्रतिरोध' का सिद्धान्त है, जिसको उन्होने विश्व में स्वतन्त्रता, न्याय और शान्ति प्राप्त करने के लिए एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक कला में परिणत कर दिया है । दूसरे मनुष्यो ने जिस वस्तु को एक व्यक्तिगत अनुशासन के रूप मे सिखलाया है, गाधी ने उसे विश्व के उद्धार के लिए एक सामाजिक कार्यक्रम के रूप में परिणत कर दिया है ।

गाधीजी अतीत युगो के तमाम महापुरुषो में भी महान् है । राष्ट्रीय नेता के रूप मे वह अल्फ्रेड, वालेस, वाशिगटन, कोसियस्को, लफाइनी की कोटि में आते है । गुलामो के त्राता के रूप मे वह क्लार्कसन, विल्बरफोर्स, गैरिज़न, लिंकन आदि की भाँति महान् है । ईसाई धर्मग्रन्थो में जिसे 'अप्रतिरोध' और इससे भी सुन्दर शब्द 'अमोघ प्रेम' कहा है, उसकी शिक्षा देनेवाले के रूप मे वह सन्त फ्रासिस, थॉरो और टाल्स्टाय की श्रेणी मे आते है । युग-युगान्तरो के महान् धार्मिक पैगम्बरो के रूप में वह लाओज़े, बुद्ध, जरथुस्त और ईसा के समकक्ष है । सर्वश्रेष्ठ रूप मे वह मानव है, जिसके विषय मे मैने 'री-थिकिंग रिलीजन' नामक अपनी हाल की पुस्तक में लिखा है

"वह विनम्र है, मृदुल है और बडे दयालु है । उनकी विनोदशीलता अदम्य है । उनके व्यवहार की सरलता मोहक है, उनकी सकल्प-शक्ति को कोई दबा नही सकता, उनका साहस मानो लोहा है । यद्यपि उनके तौर-तरीके शान्त और मृदुल होते है, फिर भी उनकी सच्चाई स्फटिक मणि के समान पारदर्शक है, सत्य के प्रति उनकी निष्ठा अनुपम है, खोने के लिए कुछ न होने के कारण उनकी स्थिति ऐसी है कि उनपर आक्रमण नही किया जा सकता । हरेक वस्तु का खुद जिसने उत्सर्ग कर दिया है वह दूसरो से किसी भी वस्तु को त्यागने के लिए कह सकता है । उसके जीवन से सासारिक विचार, सासारिक महत्वाकाक्षाये और चिन्ताये कभी की विलुप्त हो चुकी है । उसपर तो आत्मा का ही, जो सत्ता और अहिसा के रूप में व्यक्त है, पूर्ण अधिकार है । गाधीजी

(M K Gandhi An Indian Patriot in South Africa) पढकर यह जानने की कोशिश की कि अपने देशवासियो पर उनके नियत्रण और बहुत-से श्वेताग विरोधियो पर भी उनके गहरे प्रभाव का रहस्य क्या है ? मुझे नीचे लिखी बाते विशेष जान पडी:

पहली वस्तु उनकी मानसिक शक्ति है। इस इच्छा-शक्ति द्वारा ही वह ऐसे उत्तेजना के वातावरण मे भी जबकि और आदमी लडने के लिए तैयार हो जाते और हिंसा के मुकाबिले मे हिंसा का ही प्रयोग करते, वह अहिंसा के प्रति अपनी श्रद्धा पर अटल रहे। अपनी जाति की उच्चता प्रदर्शित करने और इस 'कुली' को अपनी मर्यादा बताने के लिए गोरो ने उन्हे कितनी ही बार ठोकरे मारी, घूँसे जमाये, और गालियाँ भी दी, लेकिन उन्होने कभी बल-प्रयोग से बदला नही लिया। प्रेसिडेन्ट क्रूगर के घर के सामने की पटरी पर ठोकर मारनेवाले सत्री पर मुकदमा चलाने मे उन्होने इन्कार कर दिया। और जब उनके अपने देशवासियो में से उनके विरोधियो ने ही उन पर इतना बर्बर हमला किया कि वह लोहूलुहान और असहाय हो गये, तब भी उन्होने पुलिस से यह अनुरोध किया कि वह उनके हमलावरो को सजा न दे। गाधीजी ने कहा—"उनकी समझ में वे ठीक कर रहे थे, और उनपर मुकदमा चलाने की मेरी तनिक भी इच्छा नही है।" स्पष्ट ही, दूसरो पर उनके आधिपत्य की पहली कुजी उनका आत्म-नियत्रण ही है।

दूसरी बात यह कि गाधीजी, दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो को, कडे प्रतिबन्ध लगाने पर भी, जो विदेशियो की भाति असह्य लगते थे और सिद्धान्तत नागरिक नही समझे जाते थे, अस्पृश्य बनानेवाले वहाँ के कानून के विरुद्ध उकसाने और उसके विरोध के लिए उन्हे सगठित करते हुए केवल अधिकार माँगकर ही सन्तुष्ट नही थे। भारतीयो मे आत्म-सम्मान की भावना पैदा करने की ओर उनका अधिक ध्यान था। उन्होने देखा कि ये भारतीय निरुत्साह और उदासीन है, अपने कष्टो का विरोध तक नही करते और चुपचाप सह लेते है। गाधीजी ने उन्हे उनके पुरुषार्थ का स्मरण दिलाया और पुरुषार्थ को ही वहाँके गोरो से अपने साथ मनुष्यता का व्यवहार करने की माँग का नैतिक आधार बनाया। रेवरेण्ड डोक के शब्दो में वहाँके प्रवासी-भारतीयों के भविष्य के सम्बन्ध में उनकी कल्पना यह थी "दक्षिण अफ्रीका का भारतीय समाज ऐसा हो जिसके हित और आदर्श एकसमान हो, जो शिक्षित हो, नैतिक हो, विरासत मे मिली अपनी प्राचीन संस्कृति का अधिकारी हो, मूलत भारतीय रहते हुए भी उसका व्यवहार ऐसा हो कि अन्तत दक्षिण अफ्रीका अपने इन पूर्वीय निवासियो पर अभिमान कर सके, और इन्हे उचित और न्याय्य समझकर वे अधिकार दे जो हरेक ब्रिटिश प्रजा-जन को मिलने चाहिएँ।"

तीसरे, गाधीजी यह भली भाति जानते थे कि नेतृत्व के साथ विनय का मेल कैसे होता है। अपेक्षाकृत अधिक धनी भारतीयो के सामने उन्होने लोक-भावना का

मैं यहाँ 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के 'अस्त्र' के सम्बन्ध में कुछ अपने विचार प्रकट कर दूँ। यह तो साफ है कि यह एक स्थायी सिद्धान्त बन गया है। लोगों ने इसे कई प्रकार से प्रयुक्त किया है और करेंगे। व्यक्ति (जैसे कि युद्ध के समय इसके नैतिक विरोधी) व्यक्ति के रूप में इसका प्रयोग कर सकते हैं। राजनैतिक और सैनिक दृष्टि से असमर्थ जन-समूह इसको एकमात्र सम्भव साधन समझकर इसपर निर्भर रह सकते हैं। नैतिक शस्त्र के रूप में (शारीरिक शस्त्र के रूप में नहीं), यह राजनैतिक युद्ध के धरातल को ऊँचा उठा देता है। इसके प्रयोग करनेवाले योद्धा स्वेच्छा से दुःख और अपमान सहते हैं और उन्हें आत्मनिग्रह और इच्छा-शक्ति असाधारण पैमाने तक बढ़ानी पड़ती है। इसकी सफलता का प्रभाव यही होता है कि जिनके विरुद्ध इसका प्रयोग किया जाता है उनकी विवेक-बुद्धि पर इसका असर पड़ता है। 'सच्चाई उनमें ही है', यह विश्वास उनका जाता रहता है। शारीरिक शक्ति व्यर्थ हो जाती है तथा दुःख देने में अपना हाथ रहा है, यह अनुभव करने से उत्पन्न अपने दोषी होने की एक प्रकार की भावना उनके संकल्प को ढीला कर देती है। प्रभावित करने के लिए जिनमें विवेक-बुद्धि ही न हो, ऐसे विरोधियों पर भी इस शस्त्र का कोई सफल प्रभाव हो सकता है, इसमें मुझे सन्देह है। जैसा कि समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ है, गांधीजी ने जर्मनी के यहूदियों को 'निष्क्रिय प्रतिरोध' से अपनी रक्षा करने की सलाह दी है। यदि सलाह पर अमल किया जाय, तो शायद यही पता लगेगा कि नाज़ी बवंडर-नेताओं और उनके नेताओं की विवेक-बुद्धि पर ऐसे नैतिक दबाव का कोई असर नहीं होता।

और भी। चूँकि निष्क्रिय प्रतिरोध एक नैतिक अस्त्र है, इस कारण समूहरूप से लोगों के लिए यह प्रायः सम्भव नहीं होगा कि वे निःस्वार्थ लगन के उस क्षेत्र तक पहुँच सकें, अथवा वहाँ पहुँचकर स्थिर रह सकें, जिस क्षेत्र पर पहुँचने से मनुष्य की स्वभावजन्य कलहेच्छा, क्रोध, प्रतिहिंसा, धैर्य, क्षमा और प्रेम में बदल जाती हैं। इस 'रीति' का व्यवहार उसे उस 'प्रयोग' से जुदा करके, जिसका कि यह केवल एक अंग-मात्र है, किया ही नहीं जा सकता। अर्थात् अपने शत्रुओं के प्रति प्रेम और बुराई के बदले में भलाई करने की भावना के बगैर इसका प्रयोग हो नहीं सकता।

मिलकर काम करने के लिए नेता चाहिए ही, लेकिन मनुष्य-समूह को इतना ऊँचा उठाने के लिए नेता की और भी अधिक आवश्यकता है। और वह नेता साहस तथा नैतिक दृढ़ता की साक्षात् मूर्ति ही होना चाहिए, ताकि बड़े-बड़े प्रचार-साधनों या बवंडर-नेताओं की बन्दूकों की सहायता के बिना भी वह अपने अनुयायियों को अपने आचरण और उपदेश के बल से ही साहसी और दृढ़निश्चयी बना सके। ऐसे नेता विरले ही होते हैं। किसीके जीवनभर में एक बार भी गांधी पैदा नहीं हुआ करता।

इस समय इस बात का स्मरण दिलाना रुचिकर होगा कि दक्षिण अफ्रीका के गोरे उन दिनों गांधीजी की आलोचना इसलिए करते थे कि उनको डर था कि

हिन्दुस्तानियो के निष्क्रिय प्रतिरोध की नकल कही यहांके आदि-निवासी भी न करने लगे। दक्षिण अफ्रीका को 'श्वेतागो का देश' बनाने के लिए इन आदि-निवासियो को कानून और चलन दोनो के द्वारा हिन्दुस्तानियो की स्थिति से भी नीचे रक्खा जाता था और रक्खा जाता है। गाधीजी उत्तर देते थे कि बलवा हिंसा और खून-खराबी से तो नैतिक अस्त्र बेहतर ही है, इसका प्रयोग ही न्यायसगत प्रयोजन का सूचक है। इसलिए यदि आदि-निवासियो का ध्येय न्यायसगत है और निष्क्रिय प्रतिरोध के तरीके का प्रयोग करने के लिए नम्रता की उचित मात्रा तक वे पहुँचे हुए है, तो वे वस्तुत 'मत देने के अधिकारी है और दक्षिण अफ्रीका के अनेक जातीय तानेबाने में उन्हे अपना स्थान नियत करने के लिए आवाज उठाने का पूरा अधिकार है।

ये तीन साल पहले की बातें है। दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी आज भी गाधीजी के नेतृत्व को याद करते है, पर जबसे वह हिन्दुस्तान लौटे, आजतक उन लोगो ने निष्क्रिय प्रतिरोध के अस्त्र का प्रयोग नहीं किया। और आदि-निवासी, अनेक बाधाओ की मौजूदगी में भी पर्याप्त आगे बढ गये है। लेकिन कोई निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि वे इस अस्त्र का प्रयोग कभी करने के लिए तैयार होगे भी तो कबतक ? क्योकि उनके लिए प्रयोक्ताओ को ऐसी असाधारण विशेषताये प्राप्त करनी पडती है। निरस्त्र वे है, पारस्परिक मतभेद उनमें है, और असहाय वे है। इसलिए अन्त मे यही एक अस्त्र उनकी आशा का आधार है। परन्तु आदिनिवासी गाधी का दिन अभी नहीं निकला। इनके निकलने की कभी जरूरत भी न हो, परन्तु दक्षिण अफ्रीका के स्वच्छन्द गोरे सदा इसी कोशिश में रहते है कि यहांके राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र की उन्नति में किसी गैर की पहुँच हो ही न सके। इन कोशिशो का सम्भाव्य परिणाम यही होगा कि यहाँ की सारी-की-सारी गैर-यूरोपियन जातियाँ इनके विरुद्ध सगठित हो जायँगी। उस अवस्था में हो सकता है कि हिन्दुस्तानियो में से कोई गाधीजी के पद-चिन्हो पर चलता हुआ, गैर-यूरोपियनो के निष्क्रिय प्रतिरोध के मोर्चे का नेतृत्व करे।

: १८ :

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी

ऑनरेबल जान एच. हाफ़मेयर, एम ए.

[चासलर, विटवाटरसंड यूनिवर्सिटी]

प्रसिद्ध मिशनरी राजनीतिज्ञ डॉ० जॉन आर० मॉट जब पिछली बार ताम्बरम् कान्फ्रेन्स मे उपस्थित होने के लिए हिन्दुस्तान गये तो उन्होंने सेगांव में महात्मा गाधी

से भेंट की। वहाँ उन्होंने जो प्रश्न गांधीजी से पूछे उनमेंसे एक यह था—"आपके जीवन के वे अनुभव क्या हैं, जिनका सबसे विधायक प्रभाव हुआ?" इसके उत्तर में यहाँ महात्माजी के उत्तर को ही उद्धृत कर देना ठीक होगा।

"जीवन में ऐसे अनेक अनुभव हुए हैं। लेकिन इस समय आपने पूछा तो मुझे एक घटना खास-तौर पर याद आती है, जिससे कि मेरे जीवन का प्रवाह ही बदल दिया। दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के सात दिन बाद ही वह घटना घटी। मैं वहाँ निरे जीविको-पार्जन और स्वार्थ-साधन का उद्देश्य लेकर गया था। मैं अभी इंग्लैण्ड से लौटकर आया हुआ निरा लड़का ही था और कुछ धन कमाना चाहता था। मेरे मवक्किल ने अचानक मुझे प्रिटोरिया से डरबन जाने के लिए कहा। यह यात्रा सुगम नहीं थी। चार्ल्सटाउन तक रेल का रास्ता था और जोहान्सबर्ग तक बग्घी से जाना पड़ता था। रेलगाड़ी का मैंने पहले दर्जे का टिकिट लिया। पर बिस्तर का टिकिट मेरे पास नहीं था। मेरित्सबर्ग स्टेशन पर जब बिस्तर दिये गये, तो गार्ड ने मुझे बाहर निकाल दिया और माल के डिब्बे में जा बैठने के लिए कहा। मैं नहीं गया और गाड़ी मुझे सर्दी में काँपता छोड़कर चल दी। यहाँ वह विधायक अनुभव आता है। मुझे अपनी जान-माल का डर था। मैं अँधेरे वेटिंगरूम में घुसा। कमरे में एक गोरा था। मुझे उससे डर लगा। मैं सोचने लगा कि क्या करूँ? मैं हिन्दुस्तान लौट जाऊँ या परमात्मा के भरोसे आगे बढ़ूँ और जो मेरे भाग्य में बदा है, उसको सहन करूँ। मैंने फ़ैसला किया कि यहीं रहूँगा और सहन करूँगा। जीवन में मेरी सक्रिय अहिंसा का आरम्भ उसी दिन से होता है।"

इस घटना का स्मरण दक्षिण अफ्रीका निवासी को रुचिकर नहीं है; लेकिन गांधीजी के जीवन में दक्षिण अफ़्रीका के महत्त्व पर इससे प्रकाश पड़ता है। क्योंकि उनमें दक्षिण अफ्रीका में ही सत्याग्रह के सिद्धान्त की लहर उठी और वहीं 'हिंसा-रहित प्रतिरोध' का अस्त्र गढ़ा गया। प्राय ऐतिहासिक घटनायें भी प्रतिफल देती हैं। हिन्दुस्तान ने, यद्यपि स्वेच्छा से नहीं, दक्षिण अफ्रीका की सबसे अधिक कठिन समस्या पैदा की और दक्षिण अफ्रीका ने, वह भी स्वेच्छा से नहीं, हिन्दुस्तान को सत्याग्रह का विचार दिया।

दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी इसलिए आये कि गोरों के हित में उनका आना आवश्यक समझा गया। नेटाल के किनारे की भूमि से लाभ उठाना गिरमिटिया (प्रतिज्ञाबद्ध) मज़दूरों के बिना असम्भव जान पड़ा। इसलिए हिन्दुस्तानी आये और उन्होंने नेटाल को हरा-भरा बनाया। बहुत से वहीं बसकर उपनिवेश को खुशहाल बनाने लगे। फिर और भारतीय भी आते रहे। स्वतन्त्र प्रवासी भी आये और गिरमि-टिया लोग भी। लेकिन समय आया और यूरोपियनों को खतरा पैदा होगया कि अपने रहन-सहन के निम्नतर मानवाले हिन्दुस्तानी हमारे एकाधिकार के किसी-किसी क्षेत्र

मे हमें मात कर देंगे। वर्ण-विद्वेष के लिए इतना ही पर्याप्त था। हिन्दुस्तानियो को लार्ड मिल्नर के शब्दो मे, "स्वागत के लिए अनिच्छुक समाज पर अपने आपको बलात् लादनेवाले विदेशी' कहा जाने लगा। इस द्वेष भावना का ही मेरित्सबर्ग स्टेशन पर युवक गांधी को अनुभव हुआ और उसका फल हुआ सत्याग्रह का जन्म।

दक्षिण अफ्रीका मे महात्माजी के जीवन और कार्य का वर्णन करने की आवश्यकता नही है। वह लम्बा सघर्ष था। इसमे उनके प्रतिद्वन्द्वी जनरल जे० सी० स्मट्स भी आज ससार के प्रसिद्ध पुरुषो मे से है। दोनो मे बहुत-सी समानताये थी। कुछ साल पहले मै एक उच्च सरकारी अफसर के साथ जोहान्सबर्ग के बाहर हिन्दुस्तानी और देसी बच्चो के लिए सुधार-जेल (रिफार्मेटरी) देखने गया—यह पहले जेल ही थी। मेरे साथी ने मुझे वह कोठरी बताई जिसमे तीस साल पहले गांधीजी को रखा गया था और तब वह एक जूनियर मजिस्ट्रेट की हैसियत से उन्हे दर्शनशास्त्र की पुस्तके देने आये थे। ये पुस्तके उनको अफसर जनरल स्मट्स ने उपहारस्वरूप भेजी थी। बडी प्रसन्नता की बात है कि अन्त मे सारी विनाशकारिणी शक्तियो के ऊपर इन दोनो महापुरुषो के पारस्परिक सम्मान और मित्रता के भावो की विजय हुई और आज भी वह मेल बना हुआ है।

दक्षिण अफ्रीका मे गांधीजी को जो [illegible] उद्देश्य दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दुस्तानियो के प्रवास को रोकना था। लेकिन गांधीजी इस बात मे सफल हुए कि [illegible] हिन्दुस्तानियो [illegible]

इसकी शक्ति तथा शस्त्र के रूप में इसकी सार्थकता की परीक्षा कर रहे थे।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि दक्षिण अफ्रीका ने उस महापुरुष के विकास में महत्वपूर्ण भाग लिया है जो केवल भारत का महात्मा ही नहीं, बल्कि संसार के महान् आध्यात्मिक नेताओं में से एक होनेवाला था।

हाँ, वहाँके श्वेत शासक उस विशिष्ट परिस्थिति को शायद ही सन्तोष के साथ स्मरण करेंगे, जो उस महान् आत्मा के परिवर्तन में कारणीभूत हुई।

: १६ :

गांधी और शांतिवाद का भविष्य

लारेन्स हाउसमैन

[स्ट्रीट, सोमरसेट, इंग्लैण्ड]

सफल शान्तिवाद के जीवित प्रतिपादकों में महात्मा गांधी का आसन सबसे ऊँचा है। उन्होंने यह दिखला दिया है कि व्यावहारिक शान्तिवाद संसार की राजनीति में एक शक्ति हो सकती है। बल और दमन द्वारा शासन करने के हथियार से भी यह हथियार अधिक मजबूत साबित हुआ है। दक्षिण अफ्रीका में उनको पूरी सफलता मिली। हिन्दुस्तान में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली और अगर इसके प्रयोग करनेवालों की संख्या और अधिक होती और वह प्रयोग एकसमान हिंसा-रहित होता, तो महात्मा के इस शांतिमय अस्त्र की अवश्य विजय होती।

'व्यावहारिक राजनीति' के नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र में शान्तिवाद की शक्ति के इस सफल प्रयोग की कीमत कूती नहीं जा सकती और स्वाधीनता में प्रयत्नशील राष्ट्रों और जातियों के लिए तो वह भविष्य निर्देश करनेवाला प्रकाश-स्तम्भ ही है।

अहिंसा की सफलता इसलिए और भी अधिक महत्वपूर्ण माननी चाहिए कि आजतक मनुष्यजाति प्रायः जिन हथियारों का प्रयोग करती आई है, उनसे यह सर्वथा निराला है और अन्याय को दूर करने के लिए हिंसा को ही साधन मानने की युग से चली आई मानवीय परिपाटी के सर्वथा विपरीत है। इस प्रचलित परिपाटी के बावजूद ऐसी कठोर अग्नि-परीक्षा में से गुजरने के लिए महात्मा गांधी को इतने अधिक और कुल मिलाकर इतने विश्वस्त लोगों का सहयोग मिला, यह बात ही इसका प्रमाण है कि महात्मा गांधी की शिक्षा मानवीय प्रकृति में अन्तर्निहित मूल सत्य ही है। और न तो यह सत्य उदाहरण प्रस्तुत करने के बाद साधारण स्त्री-पुरुषों की समझ में और न महान् उद्देश्यों की साधना के लिए उसे अपनाने और व्यवहार में लाने के उनके सामर्थ्य से परे की ही वस्तु है।

ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा न खो बैठे और धन पर निर्भर न रहने लगे। धन पर निर्भर रहना एकदम छोड देना होगा।

"दक्षिण अफ्रीका मे जब मैने सत्याग्रह-यात्रा शुरू की तो मेरी जेब मे एक पैसा भी नही था और मै वैसे ही बिना गहरा विचार किये आगे बढा। मेरे साथ तीन हजार आदमियो का काफिला था। मैने सोचा, "कुछ फिक्र नही, अगर भगवान् की मर्जी हुई तो वही पार लगायेगा।" हिन्दुस्तान मे धन की वर्षा होने लगी। मुझे रोक लगानी पडी, क्योकि ज्यो ही धन आया, आफत भी शुरू होगई। जहाँ पहले लोग रोटी के टुकडे और थोडी-सी शक्कर मे सन्तुष्ट थे, अब तरह-तरह की चीजें मागने लगे।

"और इस नये शिक्षा-सम्बधी परीक्षण को लीजिए। मैने कहा कि यह प्रयोग किसी प्रकार की आर्थिक सहायता मांगे बिना ही चलाया जाय। नही तो मेरी मृत्यु के बाद सारी व्यवस्था तीन-तेरह होजायगी। **सच बात तो यह है कि जिस क्षण आर्थिक स्थिरता का निश्चय हो जाता है, उसी समय आध्यात्मिक दिवालियेपन का भी निश्चय हो जाता है।"**

यह अन्तिम वाक्य गाँधीजी के आदर्शवाद का सर्वोत्तम नमूना है। उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि मुनाफे की इच्छा से नियोजित कोष पर अधिकार जमाना और आर्थिक साधनो को हस्तगत करलेना किसी जीवित आदोलन का आध्यात्मिक विनाश करना है। स्वेच्छा से और स्वार्थत्याग की भावना से बने स्वयसेवक फिर उस आन्दोलन से लाभ उठानेवाले लोलुप बन जाते है और जो इससे मदद पाते और उदात्त बनते है, वे दरिद्र हो जाते है। आन्दोलन और उसका कोष बार-बार अच्छी तरह और चतुराई के साथ एक ही आदमी से दुही जानेवाली गाय बन जाते है। बुराई और पतन तब अनिवार्य हो जाते है और सब प्रकार के दभ और छल चलने लगते है।

लेखक को महामारी, दुर्भिक्ष और युद्ध के पश्चात् सहायता मे धन-वितरण का कुछ अनुभव है। उसके आधार पर उसे निश्चय है कि गाधीजी ठीक कहते है। वस्तुत जीवित आध्यात्मिक आन्दोलन, धन-सचय करने मे जितना अधिक-से-अधिक बचेगा उतना ही उसका बल बढेगा। गाधीजी के इन विचारो की उत्पत्ति 'अपरिग्रह' के सिद्धान्त में विश्वास होने से हुई है। यह सिद्धान्त फ्रान्सिस के अनुयायियो के 'स्वत्व-वाद'—वैयक्तिक सम्पत्ति—को छोडने के सिद्धान्त से मिलता-जुलता है। गाधीजी के अत्यन्त समीपस्थ शिष्यो मे से एक ने सार-रूप मे यह बात यो कही है "धन उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आयगा जिसके लिए तुम अपना जीवन उत्सर्ग करने को तैयार हो, लेकिन जब धन नही होगा तो यदि तुम विमुख नही होगे तो उद्देश्य पूरा होता रहेगा, और शायद धन के अभाव मे और भी अधिक अच्छी तरह पूरा होगा।"

दूसरा—और बहुत महत्व का—प्रश्न जो ईसाई नेताओ और गाधीजी के इस वार्तालाप में छिडा, वह यह था कि 'डाकू' जातियो से कैसा बर्ताव होना चाहिए। हम

अंग्रेजों के लिए यह अच्छा है कि ऐसे प्रश्नों पर विचार करते हुए हम मान लें कि बहुत-से लोग हम अंग्रेजों की गिनती 'डाकू' जातियों में करते हैं। यह बात, कि ब्रिटिश साम्राज्य में नौ नई आबादियाँ मिलाने के बाद सन् १९१९ के पीछे लूट की अपनी ढेरी को बढ़ाना हमने बन्द कर दिया है और तब से काफी सब्र और शांति से बैठे हैं, दूसरे राष्ट्रों का सन्तोष नहीं करती। इतने से ही वे यह अनुभव नहीं करते कि अन्तर्राष्ट्रीय लूट के नये लोलुपों से हम किसी तरह कम 'डाकू' हैं। जो लोग ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर शासित जातियों की दुखपूर्ण स्थिति में हैं, वे आमतौर से उत्सुक हैं कि इस अन्तर्राष्ट्रीय डाकूपन से हमारी विवेक-बुद्धि कब उठे और जर्मनी इटली तथा जापान के साथ बदाबदी से हमारा कोई लगाव न रहे।

गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि जिनकी अहिंसा में श्रद्धा है और इस पर कुछ-कुछ आचरण करना सीखे हैं उन्हें यह मानना होगा कि आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय 'डाकूपन' के इस अत्यन्त अप्रिय और भीषण रूप का मुकाबिला भी अहिंसा से किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा—"बल का प्रयोग चाहे कितना ही न्यायसंगत क्यों न दीखे, अन्त में हमें उसी दलदल में ला पटकेगा जिसमें हिटलर और मुसोलिनी की ताकत ला पटकती है। केवल भेद होगा तो मात्रा का। जिन्हें अहिंसा पर श्रद्धा है, उन्हें इसका प्रयोग संकट के क्षण में करना चाहिए। चाहे हम इस समय जड़ दीवार से अपना सर टकराते-फिरते अनुभव करें, लेकिन डाकुओं के दिल भी एक दिन पसीजेंगे—यह आशा हमें नहीं छोड़नी चाहिए।

कुछ देर बाद बातचीत में किसी ऐसे [illegible] अनुभव का जिक्र होने लगा जो पाप के विरुद्ध अहिंसात्मक युद्ध के लिए जीवन का निश्चित [illegible], गांधीजी ने वहाँ अपना एक [illegible] अनुभव सुनाया जो १८९३ के अन्तिम [illegible] में दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के [illegible] दिन बाद ही [illegible]
[illegible]

अंग्रेजों के लिए यह अच्छा है कि ऐसे प्रश्नों पर विचार करते हुए हम मान लें कि बहुत-से लोग हम अंग्रेजों की गिनती 'डाकू' जातियों में करते हैं। यह बात, कि ब्रिटिश साम्राज्य में सौ नई आबादियाँ मिलाने के बाद सन् १९१९ के पीछे लूट की अपनी ढेरी को बढ़ाना हमने बन्द कर दिया है और तब से काफ़ी सब्र और शान्ति से बैठे हैं, दूसरे राष्ट्रों का सन्तोष नहीं करती। इतने से ही वे यह अनुभव नहीं करते कि अन्तर्राष्ट्रीय लूट के नये लोलुपों से हम किसी तरह कम 'डाकू' हैं। जो लोग ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर शामिल जातियों की दुःखपूर्ण स्थिति में हैं, वे आमतौर से उत्सुक हैं कि इस अन्तर्राष्ट्रीय डाकूपन से हमारी विवेक-बुद्धि जग उठे और जर्मनी, इटली तथा जापान के साथ बदाबदी से हमारा कोई लगाव न रहे।

गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि जिनकी अहिंसा में श्रद्धा है और इस पर कुछ-कुछ आचरण करना सीखे हैं उन्हें यह मानना होगा कि आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय 'डाकूपन' के इस अत्यन्त अप्रिय और भीषण रूप का मुकाबिला भी अहिंसा से किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा—"दण्ड का प्रयोग चाहे कितना ही न्यायसंगत क्यों न दीखे, अन्त में हमें उसी दलदल में ला पटकेगा जिसमें कि हिटलर और मुसोलिनी की ताकत ला पटकती है। केवल भेद होगा तो मात्रा का। जिन्हें अहिंसा पर श्रद्धा है, उन्हें इसका प्रयोग संकट के क्षण में करना चाहिए। चाहे हम उस समय उस दीवार से अपना सर टकराते-फिरते अनुभव करें लेकिन पाषाणों के दिल भी एक दिन पसीजेंगे—यह आशा हमें नहीं छोड़नी चाहिए।"

कुछ देर बाद बातचीत में किसी ऐसे उत्पादक अनुभव पर विचार होने लगा जो पाप के विरुद्ध अहिंसात्मक कार्य के लिए जीवन को [illegible] दे सके। गांधीजी ने यहाँ अपना वह अनुभव[1] सुनाया जो १९वीं सदी में [illegible] दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के सात दिन बाद ही उन्हें हुआ था। इस घटना से गांधीजी की सफलताओं के दो मूल तत्त्व प्रकट हैं। प्रथम तो भय पर उनकी विजय। [illegible] के किसी राष्ट्र के निवासी जो प्रायः परस्पर [illegible] भाव से रहते हैं [illegible] कल्पना भी नहीं कर सकते जिस भय से औसत हिन्दुस्तानी किसी गोरे को देखता है—[illegible] था। [illegible] को एक गोरा किसी [illegible] प्राकृतिक शक्तियों पर दैवी प्रभुत्व रखनेवाला प्राणी [illegible] था। [illegible] गुलामी पैदा कर देता था, [illegible] और [illegible] होता था। यह बिल्कुल [illegible] है कि गांधीजी [illegible]

[1] यह घटना रेलगाड़ी से निकाल दिये जाने [illegible] बाद में एक [illegible] होयलैण्ड [illegible] की है। यह भी [illegible] के [illegible] में पृष्ठ ७६ पर [illegible] से [illegible] दी गई है।

६

अंग्रेजो के लिए यह अच्छा है कि ऐसे प्रश्नो पर विचार करते हुए हम मान ले कि बहुत-से लोग हम अंग्रेजो की गिनती 'डाकू' जातियो मे करते है। यह बात, कि ब्रिटिश साम्राज्य मे नौ नई आबादियाँ मिलाने के बाद सन् १९१९ के पीछे लूट की अपनी ढेरी को बढाना हमने बन्द कर दिया है और तब से काफ़ी सब्र और शांति से बैठे है, दूसरे राष्ट्रो का सन्तोष नही करती। इतने से ही वे यह अनुभव नही करते कि अन्तर्राष्ट्रीय लूट के नये लोलुपो से हम किसी तरह कम 'डाकू' है। जो लोग ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर शासित जातियो की दुखपूर्ण स्थिति में है, वे खासतौर से उत्सुक है कि इस अन्तर्राष्ट्रीय डाकूपन से हमारी विवेक-बुद्धि ऊब उठे और जर्मनी, इटली तथा जापान के साथ बदाबदी से हमारा कोई लगाव न रहे।

गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि जिनकी अहिंसा मे श्रद्धा है और इस पर कुछ-कुछ आचरण करना सीखे है उन्हे यह मानना होगा कि आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय 'डाकूपन' के इन अत्यन्त अप्रिय और भीषण रूप का मुकाबिला भी अहिंसा से किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा—"बल का प्रयोग चाहे कितना ही न्यायसंगत क्यो न दीखे, अन्त में हमें उसी दलदल मे ला पटकेगा जिसमें कि हिटलर और मुसोलिनी की ताकत ला पटकती है। केवल भेद होगा तो मात्रा का। जिन्हे अहिंसा पर श्रद्धा है, उन्हे इसका प्रयोग संकट के क्षण में करना चाहिए। चाहे हम इस समय जड़ दीवार से अपना सर टकराते-फिरते अनुभव करे, लेकिन डाकुओ के दिल भी एक दिन पसीजेंगे—यह आशा हमें नहीं छोडनी चाहिए।"

कुछ देर बाद बातचीत में किसी ऐसे उत्पादक अनुभव पर विचार होने लगा जो पाप के विरुद्ध अहिंसामय कार्य के लिए जीवन को निश्चित सफलता दे सके। गांधीजी ने यहाँ अपना वह कटु अनुभव[1] सुनाया जो १९वीं सदी के अन्तिम दशाब्द में दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के सात दिन बाद ही उन्हे हुआ था। इस घटना से गांधीजी की सफलताओ के दो मूल तत्त्व प्रकट हैं : प्रथम तो भय पर उनकी विजय। पश्चिम के किसी राष्ट्र के निवासी जो प्राय परस्पर समान भाव से रहते हैं उस भय की कल्पना भी नहीं कर सकते जिस भय से औसत हिन्दुस्तानी किसी गोरे को देखता है— अथवा देखता था [illegible] आशा प्राकृतिक [illegible] देवी प्रकोप [illegible] था उनका आतंक प्राय गुलामी पैदा कर देता था उनके [illegible] और [illegible] उनकी आज्ञा मानना होता था। यह 'बिलकुल ठीक कहा गया है [illegible] जो सबसे बड़ी भेंट दी है वह है गोरों के सामने भयहीन [illegible]।

[1] यह घटना रेलगाडी से निकाल दिये जाने तथा बाद में एक गाडीवान के हाथो होनेवाले हमले की है। यह भी हाफ्मेयर के लेख में पृष्ठ ७६ पर विस्तार से उद्धृत की गई है।

ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा न खो बैठे और धन पर निर्भर न रहने लगें। धन पर निर्भर रहना एकदम छोड देना होगा।

"दक्षिण अफ्रीका मे जब मैंने सत्याग्रह-यात्रा शुरू की तो मेरी जेब में एक पैसा भी नही था और मैं वैसे ही बिना गहरा विचार किये आगे बढा। मेरे साथ तीन हजार आदमियो का काफिला था। मैंने सोचा, "कुछ फिक्र नही, अगर भगवान् की मर्जी हुई तो वही पार लगायेगा।" हिन्दुस्तान से धन की वर्षा होने लगी। मुझे रोक लगानी पडी, क्योंकि ज्यो ही धन आया, आफत भी शुरू होगई। जहाँ पहले लोग रोटी के टुकडे और थोडी-सी शक्कर से सन्तुष्ट थे, अब तरह-तरह की चीजे मागने लगे।

"और इस नये शिक्षा-सम्बधी परीक्षण को लीजिए। मैंने कहा कि यह प्रयोग किसी प्रकार की आर्थिक सहायता माँगे बिना ही चलाया जाय। नही तो मेरी मृत्यु के बाद सारी व्यवस्था तीन-तेरह होजायगी। **सच बात तो यह है कि जिस क्षण आर्थिक स्थिरता का निश्चय हो जाता है, उसी समय आध्यात्मिक दिवालियेपन का भी निश्चय हो जाता है।"**

यह अन्तिम वाक्य गाँधीजी के आदर्शवाद का सर्वोत्तम नमूना है। उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि मुनाफे की इच्छा से नियोजित कोष पर अधिकार जमाना और आर्थिक साधनो को हस्तगत करलेना किसी जीवित आंदोलन का आध्यात्मिक विनाश करना है। स्वेच्छा से और स्वार्थत्याग की भावना से बने स्वयंसेवक फिर उस आन्दोलन से लाभ उठानेवाले लोलुप बन जाते हैं और जो इससे मदद पाते और उधार बरतते हैं, वे दरिद्र हो जाते हैं। आन्दोलन और उसका कोष बार-बार अच्छी तरह और चतुराई के साथ एक ही आदमी से दुही जानेवाली गाय बन जाते हैं। बुराई और पतन तब अनिवार्य हो जाते हैं और सब प्रकार के दंभ और छल चलने लगते हैं।

लेखक का महामारी, दुर्भिक्ष और युद्ध के पश्चात् सहायता मे धन-वितरण का कुछ अनुभव है। उसके आधार पर उसे निश्चय है कि गांधीजी ठीक कहते हैं। [illegible] कोई भी आध्यात्मिक आन्दोलन, धन-संचय करने से जितना अधिक-से-अधिक बचेगा उतना ही उसका बल बढेगा। गांधीजी के इन विचारों की उत्पत्ति 'अपरिग्रह' के सिद्धान्त में विश्वास होने से हुई है। यह सिद्धान्त फ्रांसिस के अनुयायियों के "पवित्र दारिद्र्य—वैयक्तिक सम्पत्ति—का त्याग" के सिद्धान्त से मिलता-जुलता है। [illegible] "[illegible]"

[illegible]

और परीक्षण के रूप में बढ़ता है। बाद में वही निश्चित प्रभाव और बलवाला हो चलता है। लेकिन यह तत्त्व जहाँ किसी भी रूप में काम नहीं करता है, वहाँ दूसरों—उदाहरणार्थ अपने बच्चों और बाद में अपने साथियों—की भलाई के लिए प्रायः स्वेच्छा से स्वीकृत कष्टों और मृत्यु द्वारा व्यक्ति की आत्म-निग्रह की भावना साथ होती है। ज्यों-ज्यों वह मानव-इतिहास के पन्ने उलटता है यह तत्त्व जैसे-जैसे समय जाता है अधिकाधिक स्पष्ट तथा प्रकाशित होता जाता है। इतिहास और उन्नति की सारी कुंजी ईसा के आहुति-मार्ग में है।

इस प्रकार सत्याग्रह के जिज्ञासु को यह मानना पड़ता है कि गांधीजी ने अहिंसक रहते हुए दूसरों के लिए स्वेच्छा से कष्ट उठाने के आन्दोलन में अपने देशवासियों को डालकर एक बार विश्व-विदित सिद्धान्त को प्रकट कर दिया है, जो पश्चिम की स्वार्थमय, विलासमय, और लालचभरी भावना से धुंधला पड़ गया था। औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ-काल में लगभग डेढ़ शताब्दि तक ईसाई मजहब ने क्रॉस (कष्ट-सहन) का बहुतेरा उपदेश दिया परन्तु सर्वव्यापी स्वार्थपरता की भावना के आगे इसकी एक न चली और यह केवल व्यक्तियों की भक्ति का एक रूढ़ चिन्हमात्र रह गया है। हमारी संततियों के सामने एक भारी काम है, (और अगर यह पूरा न हो सका तो सभ्य मानवों में हमारी संतति सबसे पिछड़ जायगी) वह काम यह कि वे ऐसे 'क्रॉस' की खोज करें जो केवल रूढ़मात्र न हो बल्कि अन्याय, युद्ध और हिंसा रोकने में जीते-जागते अमर सिद्धान्त के प्रतीक-स्वरूप में हो। हमें फिर से यह सीखना है कि ईसामसीह के 'क्रॉस को लेकर मेरे पीछे चलो' शब्दों का असली मतलब क्या था? हमें फिर से यह सीखना है कि जिस प्रकार उसने किया उसी प्रकार हम भी स्वेच्छा से हानि, कष्ट और मृत्यु तक का आलिंगन कर सकें। यह सब हमें सुधार की भावना से—मनुष्य-जाति को पाप और अन्याय से बचाने के लिए—सर्वथा अहिंसक रहकर पीड़क और अन्यायी के प्रति तनिक भी द्वेष-भावना न रखते हुए उनके साथ जैसा-का-तैसा ही व्यवहार करने की जरा भी कोशिश न करते हुए करना है, और फिर यह सब [illegible] सीखना [illegible] सब सद्[illegible] नहीं करना है

लेकिन हजरत ईसा के जीवन में यह प्रतीत होता है कि [illegible] का सच्चे रूप में बोध ही हजरत के क्रॉस [illegible] कारण [illegible] के [illegible] इसी [illegible] की झलक है। हमें एक [illegible] अपनी कार्यविधि ही [illegible] और [illegible] केवल कुछ लोगों के [illegible] और [illegible] की सफल विजय का यही ईश्वरीय [illegible] है [illegible] हास और व्यक्ति के जीवन [illegible] है [illegible] इच्छा है। हजरत ईसा ने हम [illegible]

अपना स्वाभिमान बचा लेता और एक उदाहरण छोड जाता। और वह उदाहरण यदि सक्रामक बन जाता तो सारी यहूदी कौम की रक्षा ही नही करता, बल्कि मनुष्य-जाति के लिए भारी विरासत भी बन जाता।

"आप पूछेंगे कि चीन के बारे मे मेरी क्या राय है? चीनियो की किसी दूसरे राष्ट्र पर आँखें नही है। राज्य बढाने की उनकी इच्छा नहीं है। शायद यह सच है, कि चीन हमला करने के लिए ही तैयार नही है। और शायद जो उनकी यह शान्ति-वृत्ति सी दीखती है वह वस्तुत उनकी जडता हो। हर सूरत मे चीन की यह अहिंसा व्यवहार मे नही आई है। जापान का बहादुरी से मुकाबिला करना ही इस बात का काफी प्रमाण है कि चीन कभी इरादतन अहिंसक नहीं रहा। चीन आत्मरक्षा के लिए लड रहा है, वह ज्वाद अहिंसा के पक्ष मे नहीं है। इसीलिए जब उनकी व्यावहारिक अहिंसकता की परीक्षा का अवसर आया, तो चीन इसमे असफल हुआ। यह चीन की कोई टीका नही है। मै तो चीनियो की विजय चाहता हूँ। प्रचलित माप से तो उनका बर्ताव बिल्कुल सही हो, पर जब परम अहिंसा की कसौटी से की जाय, तो कहना पडेगा कि ४० करोड जनसख्या वाले चीन-जैसे सुसभ्य राष्ट्र को, यह शोभा नही देता कि वे जापानियो के अत्याचार का प्रतिकार जापानियो के तरीके से ही करे। यदि चीनियो मे मेरे विचारानुकूल अहिंसा होती, तो जापान के पास विध्वस के जो नवीनतम यत्र है, चीन को उनका प्रयोग करना ही नही पडता। चीनी जापान से कहते—"अपनी सारी मशीनरी ले आओ हम अपनी आधी जनसख्या तुम्हे भेंट करते है, लेकिन बाकी २० करोड तुम्हारे आगे घुटने नहीं टेकेंगे।' चीनी अगर यह करते तो जापान चीन का गुलाम बन जाता।'

महात्मा गांधी का [illegible] अहिंसा के सिद्धान्त का [illegible] और अधिक असंदिग्ध दर्शन क्या हो [illegible] है? [illegible] — चाहे [illegible] उस प्रकार का भी क्यों न हो जैसा आज चीन [illegible] करने की युद्ध की पद्धति मे [illegible] उनमें मनुष्यो का [illegible]

[illegible]

अब सवाद इसी विषय के एक दूसरे अंग पर चला गया। गांधीजी ने कहा—"यह शंका की गई है कि यहूदियों के लिए तो अहिंसा ठीक हो सकती है, क्योंकि वहां व्यक्ति और उनके पीड़क में शारीरिक सम्पर्क सम्भव है। लेकिन चीन में तो जापान दूरभेदी बन्दूकों और वायुयानों से पहुँचता है। आसमान से मृत्यु की बौछार करने-वाले तो कभी यह जान ही नहीं पाते कि किनको और कितनों को उन्होंने मार गिराया है। ऐसे आकाश-युद्धों में जहां शारीरिक सम्पर्क नहीं होता, अहिंसा कैसे लड़ सकती है?

"इसका उत्तर यह है कि जीवन-मृत्यु का सौदा करनेवाले बमों को ऊपर से छोड़नेवाला हाथ तो मानवीय ही है और उस हाथ को चलानेवाला पीछे मानवीय हृदय भी तो है। आतंकवाद की नीति का आधार यह कल्पना ही है कि पर्याप्त मात्रा में इसका उपयोग करने से उत्पीड़क की इच्छानुसार विरोधी को झुका देने का अभीष्ट सिद्ध होता है। लेकिन मान लीजिए कि लोग निश्चय कर लेते हैं कि वे उत्पीड़क की इच्छा कभी पूरी न करेंगे, और न इसका बदला उत्पीड़क के तरीक़े से ही देंगे, तब पीड़क देखेगा कि आतंक से काम लेना लाभदायक नहीं है। उत्पीड़क को पर्याप्त भोजन दे दिया जाय तो समय आयगा कि उसके पास अत्यधिक भोजन से भी अधिक इकट्ठा हो जायगा।

"मैंने सत्याग्रह का पाठ अपनी पत्नी से सीखा। मैंने उसे अपनी इच्छा पर चलाना चाहा। एक ओर तो उसने मेरी इच्छा का दृढ़ प्रतिवाद किया और दूसरी ओर मैंने अपनी मूर्खतावश उसे जो कष्ट पहुँचाये उसने उन्हें शान्ति से सहन किया। इससे मैं अपने से ही लजाने लगा और 'मैं उसपर शासन करने के लिए ही जन्मा हूँ।'—यह सोचने का मेरा पागलपन जाता रहा, तथा अन्त में वह अहिंसा में मेरी शिक्षिका बन गई। जिस सत्याग्रह की नीति का वह सरल भाव ही से अपने में अभ्यास कर रही थी, उसका विस्तार मात्र ही मैंने दक्षिण अफ्रीका में किया था।"

सत्याग्रह का यह दूसरा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह एक ऐसा आन्दोलन और विधायक नियम है जिसमें स्त्रियां पुरुषों के साथ समान भाग ले सकती हैं। इतना ही नहीं, इस आन्दोलन में स्त्रियां ही सत्याग्रह करने में विशेषरूप से योग्य हैं। अनगिनती सदियों से स्त्रियों का [illegible] धीरज से कष्ट सहन करना और साथ ही हिंसा और अत्याचार के विरुद्ध [illegible] अहिंसा से डटे रहना रहा है। अब उसका यह भार [illegible] है [illegible] को समाज से बचाने का मूल साधन बनाए।

आइए यहां हम सत्याग्रह की चार आधारभूत बातों का स्मरण करें—

(१) [illegible] है।

(२) अन्याय को मिटाना चाहिए।

स्वेच्छा से और खुशी-खुशी हमारे लिए भी कष्ट उठाया, क्योंकि उन्हें हमसे प्रेम था। हमें यही आमन्त्रण है कि हम खुशी-खुशी कष्ट-सहन की इसी भावना से मनुष्य-जाति की रक्षा के लिए आगे बढ़ें। यदि हम मनुष्यों में कुछ भी समझ है तो हमें यह महसूस होगा कि स्त्रियां तो इन दिनों में हमसे बहुत आगे बढ़ चुकी हैं, और इसलिए वे यहां हमारा नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन कर सकती हैं। उनके नेतृत्व के बिना हम निश्चय ही असफल होंगे।

गांधीजी के एक मुलाकाती ने तब उनके सामने अधिनायकत्व (डिक्टेटरशिप) की समस्या पेश की। कहा, "यहां तो किसी नैतिक अपील का तनिक भी असर नहीं होता। यदि अधिनायकों से आगबिन जन उनका अहिंसा से मुकाबिला करें, तो क्या यह उनका उनके अधिनायकों के हाथ में खेलना नहीं कहलायगा? क्योंकि अधिनायकत्व तो लक्षण से ही अनैतिक है। तो क्या इनके मामले में भी नैतिक परिवर्तन का सिद्धान्त लागू होने की आशा है?"

गांधीजी का इस सम्बन्ध का उत्तर भी अत्यन्त हृदयग्राही था। उन्होंने कहा—"आप पहले ही यह मान लेते हैं कि अधिनायकों का उद्धार नहीं हो सकता। परन्तु अहिंसा की श्रद्धा का आधार ही यह धारणा है कि यथार्थत मनुष्य-प्रकृति एक है, इसलिए वे अवश्य प्रेम का प्रतिदान प्रेम से ही देंगे। यह स्मरण रखना चाहिए कि इन अधिनायकों ने जब कभी हिंसा का प्रयोग किया है, उसका जवाब तलवार हिंसा से ही दिया गया है। अबतक उन्हें यह अवसर नहीं मिला कि कभी संगठित अहिंसा से किसीने उनका मुकाबिला किया हो। कभी साधारणत किया भी हो तो पर्याप्त परिमाण में ऐसा कभी नहीं हुआ। इसलिए यह केवल बहुत सम्भावित ही नहीं है मैं तो इसे अनिवार्य समझता हूं कि वे अहिंसामय प्रतिरोध को हिंसा के अपने भरसक प्रयोग से भी अधिक ओर [illegible] अनुभव करें। 'पर अहिंसा-नीति अपनी सफलता के लिए अधिनायक की [illegible] कि सत्याग्रही तो उस परमात्मा की अपूर्व [illegible] है [illegible] दीन पड़नेवाली स्थितियों मे उसे [illegible]।

[illegible] गांधीजी [illegible]

कारण नहीं बल्कि अहिंसा अथवा यथोचित अहिंसा के अभाव से होगा।

"(३) तीसरे, यह हो कि जर्मनी विजित प्रदेश में अपनी अतिरिक्त जनसंख्या को ले जाकर बसा दे। इसे भी हिंसात्मक मुकाबिला करके नहीं रोका जा सकता, क्योंकि हमने यह बात मान ली है कि हिंसात्मक प्रतिरोध हमारे प्रश्न से बाहर है।

"इसलिए अहिंसात्मक मुकाबिला ही सब प्रकार की परिस्थितियों में प्रतिकार का सबसे अच्छा तरीका है।

"मैं यह भी नहीं मानता कि हिटलर तथा मुसोलिनी लोकमत की इतनी उपेक्षा कर सकते हैं। आज बेशक, लोकमत की उपेक्षा से वे अपना सतोष मानते हैं, कारण कि तथाकथित बड़े-बड़े राष्ट्रों में से कोई भी साफ हाथों नहीं आता और इन बड़े-बड़े राष्ट्रों ने इनके साथ गुजरे जमाने में जो अन्याय किया है वह उन्हें खटक रहा है। थोड़े ही दिन की बात है कि एक सुयोग्य अंग्रेज मित्र ने मेरे सामने स्वीकार किया था कि नाज़ी-जर्मनी इंग्लैण्ड के पाप का फल है और वार्साई की संधि ने ही हिटलर पैदा किया है।

यहाँ लेखक के सामने वह चित्र अंकित हो जाता है जबकि वार्साई की संधि के बाद भूखों मरने के दिनों में अमेरिका की बालकों को भोजन देने की व्यवस्था पर पूरा-पूरा अमल शुरू होने से पहले वह विएना के बच्चों के अस्पतालों में गया था। यहाँ हमारे घेरे[1] और उससे उत्पन्न हुई भीषण बीमारियों के शिकार अनगिनती बच्चे थे, उनके शरीर मुड़े-तुड़े और खंडित थे। इस घोरतम अन्तर्राष्ट्रीय अपराध में मरनेवाले जर्मन और आस्ट्रियन स्त्री-बच्चों की संख्या दस लाख कूती गई है। जब बिस्मार्क ने सन् १८७१ में पेरिस पर कब्जा किया था तो उसने लम्बी-से-लम्बी गाड़ी से वहाँ भोजन भेजने की व्यवस्था की थी। अस्थायी शान्ति के बाद भी हमने अपने हारे शत्रु को उससे अपनी मनचाही संधि की शर्तों पर हाँ भरवाने के लिए जर्मनी और आस्ट्रिया को आठ महीने तक [illegible]

[illegible]

१ मित्रराष्ट्रों ने युद्ध के बाद शत्रु-देशों पर घेरा डालकर खाद्य-सामग्री आदि का वहां जाना बंद कर दिया था।

रहता है कि हम इस परमपिता परमात्मा का हाथ थाम ले—और हम ईसाई तो सक्षेप में यह कह सकते है कि वह परमात्मा और हमारे प्रभु ईसामसीह का पिता है। यदि हम इस प्रकार उसका हाथ पकड़ ले (और थोडी ही देर में हमे ऐसा लगेगा कि यथार्थ में उसने ही हमारा हाथ पकडा है) तो हमें वह 'क्रॉस' पथ पर लेजायगा—यर्थात् दूसरो को पीडा और अन्याय से छुड़ाने की खातिर सदिच्छा, अथवा दूसरे शब्दो में ईश्वरेच्छा, के विरुद्ध होनेवाले उत्पीडन और अन्याय के निकृष्टतम परिणाम को अहिंसक रहकर, स्वेच्छा से सहन करने का मार्ग दिखायगा।

हमारे मार्ग का उद्‌गम परमेश्वर है। हमारे सब वाद-सवादो और हमारी सब योजनाओ के पीछे परमात्मा की सत्ता है। यदि हम उसे कुछ गिनें ही नहीं, तो निस्सन्देह हम असफल रहेगे। और यदि वह एक जीवित परमेश्वर है तो, जैसा कि गाधीजी वताते है, मौन में ही उसकी खोज करनी चाहिए। कारण कि अत्यन्त ललित भाषा में उससे कुछ कहना कुछ महत्व नही रखता, बल्कि महत्व की बात यह है कि परमेश्वर की इच्छा हम जाने और उससे हमारा मार्ग-दर्शन हो। ऐसा पथ-प्रदर्शन और ईश्वरेच्छा के साथ अपनी इच्छा मिलाने से उत्पन्न बल हमें तभी प्राप्त हो सकता है जबकि मौन होकर हम उसकी शरण जायँ और उसकी वाणी को सुनें। तब भगवान् की उपासना द्वारा उसके सकल्प को समझने से, जैसा कि गाधीजी कहते है, हमारे हृदय पर वह ज्वलत श्रद्धा अकित होगी जिसकी सहायता से हम सारी विघ्न-बाधाओ को पार कर सकेंगे।

किन्तु हमारा आरम्भ परमेश्वर मे होना चाहिए। उसको आत्मसमर्पण करके चलना होगा कि हमारी राजनीति और हमारे कार्य हमारे अपने न रहकर उसके हो जायँ।

अधिनायकों के मुकाबिले में क्या करना होगा, इसपर और अधिक विचार करते हुए गाधीजी के एक मुलाकाती ने पूछा कि उस हालत में क्या किया जाय जबकि अन्यायी प्रत्यक्ष रीति से बल-प्रयोग तो न करे, पर अपनी अभीष्ट वस्तु पर कब्जा जमाने के लिए उसकी धमकी देकर आतकित करे?

गाधीजी ने उत्तर दिया—

"मान लीजिए कि शत्रु लोग आकर चेक प्रजा की खानो, कारखानो और दूसरे प्रकृति के साधनो पर कब्जा करले, तो इनसे परिणाम सम्भव है—

"(१) चेक प्रजा को सविनय अवज्ञा करने के अपराध पर मार डाला जाय। अगर ऐसा हुआ तो वह चेक राष्ट्र की महान् विजय और जर्मनी के पतन का आरम्भ समझा जायगा।

"(२) अपार पशुबल के सामने चेक प्रजा का नैतिक पतन हो जाय। ऐसा प्राय सभी युद्धो में होता है। पर अगर ऐसी भीरुता प्रजा में आजाय तो वह हिंसा के

कारण नहीं बल्कि अहिंसा अथवा यथोचित अहिंसा के अभाव से होगा।

"(३) तीसरे यह हो कि जर्मनी विजित प्रदेश में अपनी अतिरिक्त जनसंख्या को लेजाकर बसा दे। इसे भी हिंसात्मक मुकाबिला करके नहीं रोका जा सकता, क्योंकि हमने यह बात मान ली है कि हिंसात्मक प्रतिरोध हमारे प्रश्न से बाहर है।

"इसलिए अहिंसात्मक मुकाबिला ही सब प्रकार की परिस्थितियों में प्रतिकार का सबसे अच्छा तरीका है।

"मैं यह भी नहीं मानता कि हिटलर तथा मुसोलिनी लोकमत की इतनी उपेक्षा कर सकते हैं। आज बेशक, लोकमत की उपेक्षा से वे अपना संतोष मानते हैं, कारण कि तथाकथित बड़े-बड़े राष्ट्रों में से कोई भी साफ़ हाथों नहीं आता और इन बड़े-बड़े राष्ट्रों ने इनके साथ गुजरे जमाने में जो अन्याय किया है, वह उन्हें खटक रहा है। थोड़े ही दिन की बात है कि एक सुयोग्य अंग्रेज मित्र ने मेरे सामने स्वीकार किया था कि नाज़ी-जर्मनी इंग्लैण्ड के पाप का फल है और वार्साई की संधि ने ही हिटलर पैदा किया है।"

यहाँ लेखक के सामने वह चित्र अंकित हो जाता है जबकि वार्साई की संधि के बाद भूखों मरने के दिनों में अमेरिका की बालकों को भोजन देने की व्यवस्था पर पूरा-पूरा अमल शुरू होने से पहले वह वियना के बच्चों के अस्पतालों में गया था। वहां हमारे घेरे[1] और उससे उत्पन्न हुई भीषण बीमारियों के शिकार अनगिनती बच्चे थे, उनके शरीर मुड़े-तुड़े और खंडित थे। इस घोरतम अन्तर्राष्ट्रीय अपराध से मरनेवाले जर्मन और आस्ट्रियन स्त्री-बच्चों की संख्या दस लाख कूती गई है। जब बिस्मार्क ने सन् १८७१ में पेरिस पर कब्जा किया था तो उसने जल्दी-से-जल्दी गाड़ी में वहाँ भोजन भेजने की व्यवस्था की थी। अस्थायी शान्ति के बाद भी हमने अपने हारे शत्रु को उससे अपनी मनचाही संधि की शर्तों पर 'हां' भरवाने के लिए जर्मनी और आस्ट्रिया को आठ महीने तक भूखों मारा। वह संधि-शान्ति हमें मिल गई। मूलत वह सही शान्ति थी पर इस शान्ति के [illegible] — घेरा — जितना [illegible]

[illegible]

[1] मित्रराष्ट्रों ने युद्ध के बाद शत्रु-देशों पर घेरा डालकर खाद्य-सामग्री आदि का वहां जाना बंद कर दिया था

मिला। 'घेरे' के दिनो मे और वार्साई की संधि के द्वारा हमने जो वर्ताव जर्मनी और आस्ट्रिया से किया, उसी व्यवहार का परिणाम हिटलर है। इतने बडे-बडे अन्तर्राष्ट्रीय अपराध करके भी यह दुराशा रखना कि भावी भीषण प्रतिक्रिया के बीज नहीं बोये गये, वन नही सकता। यदि इतिहास कुछ भी सिखाता है, तो यही।

परन्तु हम पीडा और अपमान के उन दिनो पर दृष्टि डाले। नाज़ियो में यह मशहूर है कि यहूदी इसके ज़िम्मेदार है। इस विलक्षण गाथा के अनुसार उस समय, जबकि जर्मन सेनाये आगे युद्धक्षेत्र में विना हिम्मत हारे खूब लड रही थी, यहूदियो ने देश में विद्रोह की आग जलाकर उनपर आघात किया। इसलिए ये जर्मन यहूदियों को सबसे पहले दडनीय शत्रु मानते है। अत जर्मनी के यहूदियो के त्रास का कारण हम विजेता राष्ट्रो के 'घेरे' और उनकी मनमानी संधि-शाति से हुए अन्तर्राष्ट्रीय पाप की अप्रिय प्रतिक्रिया है। यहूदियो के प्रति नाज़ियो की नीति की निन्दा करने का हमें अधिकार नही है, क्योकि इस नीति के कारण तो हम ही है। हमें तो सबसे पहले अपना ही दोष मानना चाहिए और फिर इन त्रस्त यहूदियो की जितनी भी सहायता कर सके, करनी चाहिए।

× × ×

एक मुलाकाती ने प्रश्न किया, "मैं बहैसियत एक ईसाई के अन्तर्राष्ट्रीय शांति के काम मे किस तरह योग दे सकता हूँ? किस प्रकार अहिंसा अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को नष्ट करके शांति-स्थापना में प्रभावकारी हो सकती है?"

वह दृश्य कितना मनोहर रहा होगा! दो हजार वर्ष तक मेहनत करने के बाद भी ईसा के आहुति-धर्म की पद्धति से युद्ध की समस्या हल करने में असमर्थ रहकर, शान्ति के राजकुमार के ये चुने हुए राजदूत, हिन्दू होने का गर्व रखनेवाले गांधीजी के चरणो में, उनसे अपनी ईसाइयत की मूलभूत मान्यताओ को व्यावहारिक बनाने के उचित मार्ग की शिक्षा लेने के लिए संसार के कोने-कोने से आकर वहा एकत्र थे!

गांधीजी ने उत्तर दिया—

"एक ईसाई के नाते आप अपना सहयोग अहिंसात्मक मुकाबिला करके दे सकते है, फिर भले ही ऐसा मुकाबिला करते हुए आपको अपना सर्वस्व होम देना पडे। जबतक बडे-बडे राष्ट्र अपने यहाँ निःशस्त्रीकरण करने का साहसपूर्वक निर्णय नहीं करेंगे, तबतक शान्ति स्थापित होने की नहीं। मुझे ऐसा लगता है कि हाल के अनुभव के बाद यह चीज़ बडे-बडे राष्ट्रों को स्पष्ट हो जानी चाहिए।

"मेरे हृदय में तो आधी सदी के निरन्तर अनुभव और प्रयोग के बाद इतना निःशंक विश्वास है और ऐसा विश्वास आज पहले से भी अधिक ज्वलंत होगया है कि केवल अहिंसा में ही मानवजाति का उद्धार निहित है। बाइबिल की शिक्षा का सार भी, जैसाकि मैं उसे समझता हूँ, मुख्यत. यही है।"

सारी बात का सार यही है। गांधीजी जब 'अहिंसा' या 'सत्याग्रह' कहते हैं तो उससे उनका अभिप्राय इसी आत्मयज्ञ अथवा आहुति-मार्ग का होता है। तभी तो वर्मिंघम की हमारी बस्ती में आने पर उन्होंने प्रार्थना के लिए जो गीत चुना, वह था 'When I surver the woodrous Cross' अर्थात् "जब मैं अद्भुत क्रॉस को देखता हूँ।" मानो विश्व-सत्य का सार वह इसमें देखते हों। ये साक्ष्य स्पष्ट हैं कि वह मानते हैं कि मनुष्यजाति का उद्धार 'क्रॉस और प्रभु ईसा के "अपना क्रॉस लेकर मेरे पीछे चलो" शब्दों का अक्षरशः पालन करने से हो सकता है।

हमारे धर्म का क्या उद्देश्य है, यह हम कब सीखेंगे? बहुत करके यह आशा की जा सकती है कि इस महान हिन्दू का अध्ययन और श्रवण से भी बढ़कर उसकी अपनी मान्यताओं का जीवन में पालन, ईसाइयत की जाग्रति के दिन नजदीक लायगा। यूरोप के सबसे अधिक घनी बस्ती के ईसाई देश में चर्च पर आक्रमण शुरू हो ही गये हैं, तथा राष्ट्र और धर्म के एक नये विस्तृत झगड़े में ईसाई धर्म के खिलाफ और भयानक आक्रमण होंगे, ऐसी अफवाहें फैल रही हैं। क्या जर्मन ईसाई आज समय का लाभ उठायेंगे और ईसाइयत को पुनरुज्जीवित करने और शायद सभ्यता को बचाने के लिए क्रॉस की भावना से कष्टों का सामना करेंगे? कैदखानों को महल मानकर उनमें प्रवेश करेंगे और ईसामसीह के लिए कष्ट उठाने का गौरव मिला देखकर खुश होंगे? और क्या हम अपनी समस्याओं का खासकर युद्ध और दारिद्र्य का मुकाबिला करने में भी इस मान्यता पर अमल करेंगे? क्रॉस केवल सक्रिय पीडन के समय में धारण करने की ही चीज नहीं है। नंगे, भूखे, रोगी और पीड़ित जो 'प्रभु के अपने' हैं, के कष्टों और आवश्यकताओं से आत्मसम्पर्क जोड़ने का सिद्धान्त ही 'क्रॉस' है।

गांधीजी ने इसके बाद उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त के अपने सारे अनुभव का जिक्र किया और बताया कि वहाँकी जंगली लड़ाकू जातियों में अहिंसा की भावना कैसे बढ़ती जा रही है वहाँ — वहाँ मैंने जो कुछ देखा उसकी आशा मुझे नहीं थी। वे लोग सच्चे दिल से और पूरी [illegible] अहिंसा की साधना कर रहे हैं। उन्हें स्वयं अहिंसा से प्रकाश मिलने की [illegible] वहाँ [illegible] एक भी कुटुम्ब ऐसा न था जिसने [illegible] न दें। हालाँकि वे सब [illegible] अक्सर दूसरे [illegible] अजनबी को देखते ही [illegible] और उन्हें अपनी नौकरियों से हाथ [illegible] साहब के अहिंसात्मक [illegible] कहते हैं [illegible] खेत-खलिहान में [illegible] तो वे दूसरे गृह-उद्योग भी [illegible]

इन पिछले शब्दो से प्रकट होता है कि गांधीजी कठोर मेहनत और खास खेत-खलिहान की मेहनत को बहुत महत्व देते है जब वह सन् १९३१ में इंग्लैंड आये तो उन्होने इसी बात पर जोर दिया था कि छोटी-छोटी बस्तियाँ होनी चाहिए इससे बेरोजगारी का सवाल भी हल होगा। और ईसाई सभ्यता की फिर से नींव पडेगी। भारत को भी उनका यही सदेश है। इसके साथ वह कहते है कि प्रतिदिन किसी किस्म के गृह-उद्योग में, खासकर चर्खा कातने में पर्याप्त समय लगाना चाहिए।

यहाँ यह स्मरण कर लेना लाभदायक होगा कि पाचवी शताब्दि में जब पुरानी उच्च सभ्यता नष्ट होगई तब इसका उन लोगो ने शनै-शनै कष्ट सहन कर पुनर्निर्माण किया जो छोटे-छोटे गुट्टो में, कभी की उपजाऊ पर उस समय की वीरान पड़ी भूमियों में जा बसे थे। यहाँ उन्होंने ईसा के नाम पर छोटी-छोटी बस्तियाँ और मठ बना लिये। प्रारम्भ के ये पादरी, जिन्होने फिर से वैज्ञानिक कृषि गुरू की, फिर शिक्षा, धर्म और कला फैलाई, मुख्यत. खुरपा-कुदारी से काम करनेवाले ही थे। खुरपो से ही इन वीर-नेताओ ने मध्ययुगीय महती सभ्यता का निर्माण किया। यह सभ्यता हमारी सभ्यता की अपेक्षा कई प्रकार से अधिक रचनात्मक और बहुत अधिक यथार्थता में ईसाई थी। उनका यह खुरपा उनके निजी स्वार्थ की पूर्ति का साधन नही था, वे उसको अपने समाज, अपने प्रभु और बर्बर लोगो के आक्रमणो से घायल अपने साथियो की रक्षा के लिए धारण करते थे।

वह तो सम्भव है ही कि इस युग में भी सभ्यता, जो अपनी नैतिकता और औद्योगिक मुकाबिले के कारण इस हालत मे है, फिर नये विश्व-युद्ध में चकनाचूर हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो ऐसे लोगो की एक बार आवश्यकता पडेगी जो साहस के साथ प्रभु यीशु के लिए अपने हाथो की मेहनत से नवनिर्माण आरम्भ करे। निजी लाभ के लिए नहीं, बल्कि जाति के अर्थ, युद्ध मे सताये लोगो और उनके प्रभु के निमित्त फावड़ा चलायें और धरती खोदें। लेकिन यदि ऐसा होनेवाला है तो इसकी **तैयारी अभी से करनी पडेगी**। एक कारण यह है कि इग्लैण्ड और वेल्स में जहां-तहां बेरोजगारो को रोजगार दिलानेवाली संस्थाये स्थापित होगई है। इसी कारण यह भी आवश्यक है कि कुछ भाग्यशाली वर्ग के लोग ऐसी संस्थाओ में पर्याप्त संख्या में सम्मिलित हो और उनके काम मे हाथ बटाये।

इसके बाद ईसाई नेताओ और गांधीजी का संवाद फिर धर्म पर चल पड़ा। गांधीजी से पूछा गया कि उनकी उपासना की विधि क्या है? उन्होंने उत्तर दिया, "सुबह ४ बजकर २० मिनट पर और सायकाल ७ बजे हम सब सम्मिलित प्रार्थना करते है। यह क्रम कई बरसो से जारी है। गीता और अन्य सर्वमान्य धार्मिक पुस्तको के श्लोको का और साथ में सतो की वाणियो का, कभी संगीत के साथ, कभी उसके बिना ही, पाठ होता है। वैयक्तिक प्रार्थना का शब्दो में वर्णन नहीं हो सकता। यह

तो सतत और अनजाने भी जारी रहती है। कोई ऐसा क्षण नहीं जाता जबकि मैं अपने ऊपर एक ऐसे परम 'साक्षी' की सत्ता अनुभव न कर सकता होऊँ जो सब कुछ देखता है और जिसके साथ मैं लवलीन होने का यत्न तक करता होऊँ। मैं अपने ईसाई मित्रों की भांति प्रार्थना नहीं करता।' (शायद गांधीजी का संकेत यहाँ पन्थ-प्रचलित प्रार्थना की ओर है) "इसलिए नहीं कि इसमें कहीं गलती है, पर इसलिए कि मुझे शब्द सूझते ही नहीं। मैं समझता हूँ यह अदाल्त की बात है।...भगवान बिना बोले हमारी विपदा जानते हैं। उन्हें मेरी प्रार्थना की आवश्यकता नहीं है।...हाँ, मुझ अपूर्ण मनुष्य को उनके संरक्षण की वैसे ही आवश्यकता है, जैसे कि पुत्र को पिता के संरक्षण की...भगवान से मैंने कभी धोखा नहीं पाया। जब कभी क्षितिज पर गहरे से गहरा अंधेरा नजर आया, जेलों में मेरी अग्नि-परीक्षाओं में, जबकि मेरे दिन अच्छे नहीं गुजर रहे थे, मैंने सदा भगवान् को अपने समीप अनुभव किया।

"मुझे याद नहीं कि मेरे जीवन में एक भी ऐसा क्षण बीता हो जबकि मुझे ऐसा लगा हो कि भगवान् ने मुझे छोड़ दिया है।"

गांधीजी से मुलाकात करनेवाले इन ईसाई नेताओं की पूर्वकालिक प्रवृत्ति जाननेवाले कुछ हम मित्रों को उक्त संवाद बड़ा रुचिकर प्रतीत हुआ। इनमें से एक प्रसिद्ध नेता एक बार केम्ब्रिज पधारे। उस समय लेखक वहाँ पढ़ता था। इन्होंने इसी पीढ़ी में संसार के ईसाई होजाने के सम्बन्ध में एक वाग्मितापूर्ण ओजस्वी भाषण दिया। इस महत्त्वपूर्ण भाषण में विश्वास और व्यवस्थित निश्चय की ध्वनि थी। हम प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों (विशेषतः हममें से प्रिसबिटेरियन) के तो पास सत्य का सन्देश था। मानो उलझन इतनी ही थी कि पूर्व को सत्य के अभाव में ध्वंस से बचाने के लिए हम अपने सन्देश के साथ पहुँचें।

फिर महायुद्ध आया। अब अवस्था कितनी बदल गई! हमने देखा कि एक वह पुरुष जो हिन्दू होने का गर्व करता है हमारी अपेक्षा ईसामसीह के सत्य और प्रेम के सत्य के अधिक समीप है। हमारा [illegible] भी और बुद्धिमत्ता का ही कार्य था [illegible] है कि [illegible] के चरणों में बैठकर [illegible] का [illegible] सीखने का प्रयत्न करें [illegible] हुए हैं [illegible] ही है। [illegible]

: २१ :

एक भारतीय राजनीतिज्ञ की श्रद्धांजलि

सर मिरज़ा एम. इस्माइल, के. सी. आई. ई.

[दीवान, मैसूर राज्य]

महात्मा गांधी की ७१ वीं जन्म-तिथि के अवसर पर उन्हें भेंट किये जानेवाले, उनके जीवन और कार्यों पर लिखे गये, लेखों व संस्मरणों के ग्रंथ में कुछ लिख देने का अनुरोध सर एस. राधाकृष्णन् ने मुझसे किया है। सर राधाकृष्णन् के इस अनुरोध का पालन करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता होरही है।

महात्मा गांधी का ७० वर्ष पूरे कर लेना उनके अनगिनती मित्रों व प्रशंसकों के लिए, जिनमें शामिल होने का मुझे भी गर्व है, खुशी के इजहार से कहीं ज्यादा महत्त्व रखता है। उनकी हरेक जयन्ती समस्त राष्ट्र को आनन्दित कर देनेवाली एक घटना की तरह देखी जाती है। और उनकी ७१वीं जयन्ती भी, इसमें मुझे कोई शक नहीं कि, देशभर में ज़रूर अपूर्व उत्साह का संचार करेगी।

मेरे अपने लिए इस अवसर पर उन परिस्थितियों का वर्णन करना खास दिलचस्पी की चीज़ है, जिनमें मुझे इस महापुरुष के जो शिक्षक और नेता दोनों ही है, निकट-सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

१९२७ में या इसके लगभग, जब महात्मा गांधी का स्वास्थ्य गिर रहा था, वह बंगलौर के आरोग्यवर्धक जल और नन्दी पहाडी की तरोताजा कर देनेवाली वायु का सेवन करने के लिए इधर आये। इस जलवायु-परिवर्तन की उन्हें बहुत ज़रूरत भी थी। इन्हीं दिनों मुझे उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। वह कुछ ही हफ्ते यहां ठहरे थे, लेकिन इसी अरसे में वह मैसूर-निवासियों के दिलों में कई सुखद स्मृतियां छोड गये। उन दिनों महात्माजी से जितनी बार मैं मिल सकता था। मिला। उन्हें देखकर उनके प्रति मेरे हृदय में सम्मान, प्रेम और स्नेह के भाव पैदा हुए। यही भाव उस मित्रता के आधारभूत हैं जो लगातार बढ़ती ही जाती है और जिसे मैं अपने लिए बहुत मूल्यवान समझता हूं।

भारतीय गोलमेज़ परिषद् के, और खासकर परिषद् की दूसरी बैठक के दिनों में लन्दन में मैंने जो बहुत आनन्दप्रद समय बिताया था उसे याद करके मुझे विशेष प्रसन्नता होती है। इस दूसरी बैठक में कांग्रेस ने भी भाग लिया था। महात्मा गांधी इसके एक मात्र प्रतिनिधि थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह भारत से आये हुए प्रतिनिधियों में

सबसे अधिक प्रतिष्ठित और विशेष व्यक्ति थे। बैठक के दौरान में उन्होंने जो योग्यतापूर्ण भाषण दिये, उनसे हमें सचमुच बहुत स्फूर्ति मिली। इस परिषद् की दूसरी बैठक मेरे अपने लिए इस कारण और भी स्मरणीय हो गई कि महात्मा गांधी ने मेरी उस योजना का समर्थन (यद्यपि कुछ शर्तों के साथ) किया, जो मैंने फैडरल स्ट्रक्चर कमेटी में फैडरल कौंसिल (रईसी कौंसिल) के बनाने के बारे में रक्खी थी। मेरी योजना यह थी कि फैडरेशन में शामिल होनेवाले सब प्रान्तों या रियासतों के प्रतिनिधियों की एक फैडरल कौंसिल भी बनाई जाय। महात्माजी दूसरी रईसी कौंसिल के बनाने के सदा से विरोधी थे, लेकिन वह अपने रुख को इस शर्त पर बदलने और मेरी योजना का समर्थन करने को तैयार हो गये कि फैडरल कौंसिल का रूप एक सलाहकार संस्था का हो। दरअसल, जैसा कि मैं मैसूर-असेम्बली के एक भाषण में पहले भी स्वीकार कर चुका हूँ, "मैंने महात्मा गांधी को दूसरी गोलमेज परिषद् में अपने एक जोरदार समर्थक के रूप में पाया, जबकि उन्होंने व्हाइट पेपर के सबसे अधिक आलोचनीय विधान पर की गई उस आलोचना का समर्थन किया, जो मैंने रईसी कौंसिल के विधान के बारे में की थी।" इसके बाद का घटनाक्रम इतिहास का विषय है। लेकिन मैं इस घटना की इसलिए याद दिलाता हूँ कि यह इस बात का बहुत अच्छा उदाहरण है कि महात्मा गांधी भारत का एक अच्छा विधान बनाने के प्रत्येक प्रयत्न में सहायता देने के लिए बहुत उत्सुक हैं।

मुझे अपने निजी संस्मरणों को छोड़कर भारतमाता के इस महान् पुत्र के जीवन तथा कार्य के महत्त्व की भी चर्चा करनी चाहिए। उनके जीवन तथा कार्य का महत्त्व केवल भारत के लिए ही नहीं, वरन् समस्त संसार के लिए भी है। यह अक्सर कहा जाता है कि किसी व्यक्ति के जीवन-काल में उसकी महानता की भविष्यवाणी करना खतरनाक है क्योंकि आनेवाली सन्तति आज के किसी व्यक्ति पर अपना निर्णय अपनी इच्छानुसार ही देगी। लेकिन महात्माजी के [illegible] महानता की भविष्यवाणी करते हुए हमें कोई संकोच नहीं [illegible] उनकी महानता की भविष्यवाणी का इतिहास कभी खण्डन [illegible] इसकी [illegible] बहुत कम है [illegible] एक स्वर से यह मानते हैं [illegible] उनके [illegible] वह निस्सन्देह आज के भारतीयों में सबसे महान [illegible] कुछ साल पहले मैंने एक भाषण [illegible] भारत की जनता के सबसे सच्चे प्रतिनिधि [illegible] के साथ भारत की [illegible] के हृदयों को अपने [illegible] शक्ति के कारण जीत लिया है [illegible] खण्डन करते हैं। सचमुच संसार के [illegible]

यह भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक [illegible] हैं। उन्होंने [illegible] स्थिति का उपयोग एक आधुनिक [illegible] के लिए किया है। [illegible] गांधी का अपने देशवासियों पर इतना गहरा [illegible] प्रभाव है, जो [illegible] ब्रिटिश साम्राज्य के [illegible] शक्तिशाली महान् [illegible]

राजनीति बहुत [illegible] है। इसमें प्रायः [illegible] के लिए [illegible] न्याय और धर्म के पथ से [illegible] पड़ता है। यह कुछ [illegible] है, लेकिन इसमें सचाई जरूर है। कहा जाता है कि राजनीति में असफल वही व्यक्ति होता है, जो न्याय-अन्याय की दुविधाओं की बहुत परवाह नहीं करता। [illegible] गांधी की बात निराली है। वह अत्यन्त न्यायपरायण, सत्य तथा ऊँचे आदर्शों पर दृढ़ रहनेवाले हैं और फिर भी महान् व्यवहारिक राजनीतिज्ञ हैं। यह भारत की एक अद्भुत पहेली है। दुर्लभ शारीरिक उन्नति, निर्दोष ब्रह्मचर्य जीवन, स्फटिक की तरह साफ दीखनेवाली व्यवहार की शुद्धता व गम्भीरता और दृढ़ धार्मिक मनोवृत्ति—इन सब गुणों के अद्भुत समन्वय गांधीजी को देखकर हमें महान् आध्यात्मिक नेताओं और सन्तों की याद आ जाती है। दूसरी ओर भारतीयों में एक नयी भावना, आत्म-सम्मान और अपनी संस्कृति के लिए अभिमान के भाव पैदा करने और पुनर्जीवित करने [illegible] स्फूर्तिदायक नेता होने के कारण वह एक महान् राजनीतिज्ञ से भी कहीं अधिक हैं। [illegible] महान् और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हैं। सचमुच जैसा कि रिचर्ड फ्रिअट ने 'स्पेक्टेटर' में लिखा है—"एक भारतीय राष्ट्र का अत्यन्त अधीरता के साथ उदय हो रहा है। अभी यह प्रयोगकाल में है, लेकिन उसकी बाह्य रूपरेखा को हम देख सकते हैं। गांधीजी इसके निर्माता हैं।"

महात्मा गांधी सन्त, राजनीतिज्ञ और नेता के एक अद्भुत समन्वय हैं। अनेकों के लिए वह कठिन पहेली हैं और उनके भारतीय अनुयायी भले ही उन्हें समझ न सकें, उनका नेतृत्व तो अवश्य मानते हैं। महात्मा गांधी संसार के ऐसे महान् पुरुषों में से एक हैं, जिनकी प्रशंसा सब करते हैं, लेकिन समझ बहुत कम सकते हैं। उन्होंने राजनीति में धर्म और नैतिकता की प्रतिष्ठा की है और राजनैतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राजनैतिक क्षेत्र में भौतिक शक्तियों के साथ युद्ध करने के लिए अद्भुत नैतिक हथियारों का आविष्कार किया है। जहां एक ओर उन्होंने राजनीति की प्रतिष्ठा करके उसे आध्यात्मिक बना डाला है, वहां दूसरी ओर धर्म में भी राजनीति का पुट देकर धर्म को अनेक ऐसे पहलुओं में लौकिक बना दिया है, जिन्हें पुराणप्रिय हिन्दू एकमात्र धार्मिक रूप देते थे। हरिजनों का उत्थान भी ऐसे अनेक प्रश्नों में से एक है, जिनपर उन्होंने रूढ़िप्रिय हिन्दुओं के विरुद्ध विवेकशील भारतीयों के विद्रोह का नेतृत्व किया है। लेकिन उनके साथ न्याय करने के लिए यह भी मुझे कहना चाहिए कि इस देश से 'अस्पृश्यता' का अभिशाप नष्ट करने की उनकी कोशिश को परोपकार तथा दया

शिकार हो जाते। जब मैं पहले उनसे बातें करने भारत आया था, तबकि मैं सच्चे राजनीतिक नेतृत्व की अपनी शक्ति सम्पन्न नहीं हो और गांधीजी में हम एक ऐसा नेता देखते है, जिसकी देश में असाधारण स्थिति है और जो न केवल सर्वोच्च शान्ति का प्रतीक तथा दृढ़ देशभक्त है, बल्कि अत्यन्त दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भी है। मैं अनुभव करता हूँ कि देश में परस्पर संघर्ष रखनेवाले विभिन्न दलों को एक-साथ मिलाने और उन सबको स्वराज्य के मार्ग पर ले जाने की योग्यता उनसे अधिक किसी दूसरे नेता में नहीं है। मित्र के नाते ग्रेट ब्रिटेन और भारत में परस्पर अच्छे-से-अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का मार्ग है। मुझे यह विश्वास है कि वह भारत के एक शक्तिशाली मित्र और ग्रेट ब्रिटेन के सच्चे साथी है। यदि आज इन नाजुक हालत में वे राजनीति से अलग हो जाये, तो इस बात के लक्षण दीख रहे है कि वह सम्भवतः भारत के राजनैतिक क्षेत्र पर आतुरी और कल्पना-लोक में उड़नेवाले लोग कब्जा कर लेंगे। उन्हें स्वयं कोई स्पष्ट मार्ग तो सूझता नहीं। निरर्थक चिल्लाहट व नारों का प्रयोग करते हुए वे देश को गलत रास्ते पर भटका देंगे।"

ऊपर लिखे ये शब्द जब मैंने कहे थे, उस समय से आजतक बहुत-सी घटनायें घट चुकी है। सभी प्रान्तो में व्यवस्थापिका सभाओं के प्रति जिम्मेदार मंत्रियों की सरकारें कायम हो चुकी है। भारतीय संघ की समस्या आज विचार के लिए हमारे सामने प्रमुखरूप से आ गई है। गांधीजी के अपने शब्दों में वह "कांग्रेस में नहीं रहे, मगर वह कांग्रेस के आज भी है।" लेकिन अबतक एक भी ऐसी बात नहीं हुई कि मुझे अपने उक्त वक्तव्य को वापस लेने या उसमे कुछ तब्दीली करने की जरूरत महसूस हो। देश में महात्मा गांधी के सिवा, जो आज भी देश में सबसे प्रभावशाली है—मैं कहूँगा उतने ही प्रभावशाली जितना पहले कोई नहीं हुआ—एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसपर हम नेतृत्व के लिए पूरी तरह निर्भर हो सके। राजनीति मे सयम, बुद्धि और व्यावहारिकता, इन सबका समन्वय करनेवाली एक खास शक्ति महात्मा गांधी में है। आज जबतक हम आगे देख सकते है, उस समय तक भारत का गांधीजी के बिना गुजारा नहीं हो सकता।

यदि महात्मा गांधी भारत मे हमारे लिए इतने अधिक उपयोगी और मूल्यवान् है, तो यह भी कुछ कम सही नहीं है कि उनके जीवन और कार्य बाहरी दुनिया के लिए भी, जो आज युद्धों व युद्ध की धमकियों के कारण इतनी अधिक व्याकुल हो उठी है, कम महत्त्व के नहीं है। उनके राजनीति-शास्त्र का मुख्य आधार शान्ति है, और राजनैतिक व्यवहार की फिलासफी का आधार प्रेम, सत्य और अहिंसा की चरम सीमा है। उनकी ये दोनो चीजें—राजनैतिक टैकनिक और राजनैतिक व्यवहार की फिलासफी—उन राष्ट्रों के लिए काफी विचार-सामग्री दे सकती है, जिनके आपसी सम्बन्ध आजकल कूटनीति, घृणा और युद्ध द्वारा नियन्त्रित होते है।

अन्त में मैं महात्मा गांधी को उनकी ७१ वीं जयन्ती पर हार्दिक बधाई देता हूँ और मंगलमय भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वह स्वस्थ और प्रसन्न रहते हुए बरसों विशेषत, भारत की तथा सामान्यत: तमाम दुनिया की सेवा करने में समर्थ हों।

: २२ :

अनासक्ति और नैतिक बल की प्रभुता

सी. ई. एम. जोड, एम. ए., डी. लिट्.

[बर्कबेक कालेज, लंदन यूनिवर्सिटी]

मानवजाति की सबसे बड़ी विशेषता क्या है? कुछ लोग कहेंगे नैतिक गुण; कुछ कहेंगे ईश्वरभक्ति; कुछ साहस और आत्म-बलिदान को मानवप्राणी की विशेषता बतायेंगे। अरस्तू ने बुद्धि को मनुष्य की विशेषता बताया है। उसका कहना था कि इसी बुद्धि विशेषता के कारण हम पशुओं से पृथक् हैं। मेरा खयाल है कि अरस्तू के उत्तर में सचाई का एक ही अंश है, पूर्ण नहीं। तर्कबुद्धि तटस्थ और पदार्थपरक होती है।

अरुचिकर स्वरूप से बचने के लिए, भले लोग जो यथार्थ पर आवरण चढ़ा देते हैं, उन्हें भेदकर बुद्धि शुद्ध नग्न यथार्थ को देख लेती, यह उसका गर्व है। एक शब्द में, बुद्धिवादी निडर होता है। वह वस्तुओं के यथार्थ रूप के ज्ञान से डरता नहीं है। वह हर पदार्थ को यथार्थ रूप में देखने का प्रयत्न करता है। उसे जबर्दस्ती अपने अनुकूल देखने की कोशिश नहीं करता। अपनी इच्छा को सर्वोपरि निर्णायक नहीं मानता और न अपनी आशाओं को ही वह झूठा रूप बनाता है।

इसलिए बुद्धिमान मनुष्य अनासक्त रहता है अर्थात् उसकी बुद्धि जिस वस्तु का आलोचन करती है उसमें आसक्त नहीं होती।

लेकिन क्या विद्वान और बुद्धिमान मनुष्य स्वयं अपने में भी तटस्थ होता है? मेरा खयाल है कि [illegible] हैं जिनकी बौद्धिक योग्यता बहुत ऊँचे दर्जे की है [illegible] के लिए [illegible] प्रसिद्ध [illegible] के लिए प्रसिद्ध [illegible] जाति की [illegible]

आशाओ व इच्छाओ में उस तटस्थ अनासक्त वृत्ति का प्रवेश करना है, जिसको कि तार्किक अपने वुद्धिग्राह्य प्रतिपाद्य विषय पर प्रयुक्त किया करता है। अपने प्रति अनासक्ति रखकर कुछ सत्यो के प्रति तीव्र भक्ति-भाव रख सकना और कुछ सिद्धान्तों के विषय में अनासक्त आग्रह रख पाना—यही मेरे मन से उस गुण को जाग्रत करना है, जो मानव की विशेषता है। वह है नैतिक शक्ति।

अपने आपसे भी अनासक्ति का यह गुण ही मेरे ख़याल में गाधीजी की शक्ति और प्रभाव का मूल-स्रोत है। उनकी अनासक्ति का एक मोटा-सा चिन्ह है अपने शरीर पर उनका अपना नियन्त्रण। अनासक्त मनुष्य का शरीर उसके काबू में रहता है, क्योकि वह इसे अपनी आत्मा से पृथक् अनुभव करता है और आत्मा के काम के लिए वतौर एक औज़ार के इसका इस्तेमाल कर सकता है। इसलिए गाधीजी के लिए यह कोई असाधारण और अस्वाभाविक वात नहीं है कि वह विना एक क्षण की सूचना के एकदम इच्छानुकूल समय तक गहरी नींद मे सो जाते है या भोजन में बिना कोई परिवर्तन किये जान-बूझकर अपना वज़न घटा या बढा लेते है।

अनासक्ति के उपर्युक्त गुण का दूसरा चिन्ह यह है कि वे साधनो को यथासम्भव अधिक-से-अधिक व्यावहारिक वनाते हुए उद्देश्य पर कट्टर निश्चय के साथ उनका सम्वन्ध कायम रखते है। अनासक्त मनुष्य मोही और हठी नही होता। वह कभी अपने मार्ग के मोह में इतना नही डूब जाता कि उसे छोड ही न सके, या उसकी जगह कोई दूसरा रास्ता पकड न सके। जवतक उसके सामने ध्येय स्पष्ट रहता है, वह हरेक ऐसे रास्ते से उसतक पहुँचने की कोशिश करेगा, जो घटनाओ या परिस्थितियों से वन गया हो। यही कारण है कि गाधीजी राजनीतिज्ञ और सन्त दोनो एक साथ है। इसे देखकर वहुत-से लोग परेशान हो जाते हैं। राजनीतिज्ञता और सन्तपन के अलावा सधि-चर्चा मे निपुणता, बच्चो की सी सरलता, जो फिर पीछे अत्यन्त गहन राजनीति-पटुता के रूप में दीखती है, एकदम समझौते के लिए उद्यत हो जाना आदि उनकी स्वभावगत विशेषतायें है। वह अपने ध्येय के सम्वन्ध में तो दृढ-निश्चयी है, लेकिन उस उद्देश्य तक पहुँचने के किसी मार्ग से उन्हे मोह नही है। इसी कारण हम देखते है कि राजनैतिक हथियार के तौर पर सविनय भग के प्रेरक गाधीजी व देखते है कि इससे सफलता की सम्भावना नही है तो उसे वद करने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाते। इसी तरह सन्त गाधीजी आत्मशुद्धि के लिए उपवास करते है, अपने उपवास को सौदे का सवाल वनाकर इस्तेमाल करने और जव उपवास का राजनैतिक उद्देश्य पूरा हो जाता है, फिर अन्न-ग्रहण करने के लिए सदा तैयार रहते है। नये शासन-विधान के कट्टर विरोधी गाधीजी आज उस विधान को, जिसकी उन्होंने इतनी सख्त निन्दा की थी, अमल में लाने के लिए सिर्फ एक शर्त पर सहयोग देने को तैयार है, वह यह कि रियासतो के प्रतिनिधि भी प्रजा द्वारा निर्वाचित हो, न कि

राजाओं द्वारा नामज़द, जैसा कि विधान में लिखा है। और अन्त में हम देखते हैं कि जेनरल अंग्रेज़ों के प्रतिपक्षी गांधीजी आज भारत में अंग्रेज़ों के सर्वोत्तम मित्र—ऐसे मित्र जिनका प्रभाव न केवल अविनयभंग को फिर शुरू नहीं होने देता, बल्कि आतंकवाद के मज़हूर आन्दोलन पर भी नियन्त्रण करता है—माने जाते हैं। क्या अंग्रेज़ बहुत अधिक देर हो जाने से पहले ही योग्यतम रियायतें जो वह आज मांगते हैं, वे देंगे? क्या अंग्रेज़ अपनी इच्छा और शोभा के साथ रियायतें खुद दे सकेंगे? या कि फिर उन रियायतों को, जिनसे आज भारत सन्तुष्ट हो सकता है देने से इन्कार करके देश का सख्त विरोधी होकर आयर्लैण्ड बन जाना पसन्द करेंगे?

हम फिर अन्तःशक्ति के तत्त्व पर आवें। अन्तःशक्ति का एक बहुत प्रभावशाली अंग है, जिसे हम आसानी से पहचान सकते हैं, पर जिसकी व्याख्या करना बहुत कठिन है। यह शक्ति नैतिक बल है। और सब जीवधारी प्राणियों में मनुष्य ही उसका अधिकारी होता है।

भौतिक बल की न तो कोई मर्यादायें हैं, न इसमें कोई नये सवाल ही उठते हैं। यदि एक आदमी शारीरिक बल में आपसे ज्यादा ताकतवर है और आप उसकी इच्छा को ठुकराते हैं, तो वह प्रत्यक्षतः अपनी प्रबल शारीरिक शक्ति के द्वारा बाधित करके या अप्रत्यक्षतः दण्ड का भय दिखाकर आपसे निबट ही लेगा। प्रत्यक्ष पशुबल के प्रयोग का फल यह होता है कि आप उठाकर पटक दिये जाते हैं और परोक्ष बल का फल यह है कि उस बल के परोक्ष दबाव के भय से आदमी इस जीवन से मुंह मोड़कर ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है ताकि अगले जन्म में इस सजा की मुसीबत से बच सके। शरीरबल को इस भांति ऐसी शक्ति कहा जा सकता है जो अपनी मर्ज़ी के मुताबिक दूसरे को इस डर से काम कराने को लाचार करती है कि न करोगे तो दुख भुगतना होगा।

लेकिन नैतिक बल में ऐसे किसी दण्ड का भय नहीं है। यदि मैं नैतिक बल का मुकाबिला भी करता हूँ तो उससे मुझे कोई नुकसान नहीं होता। तब मैं नैतिक बल वाले की बात क्यों मानता हूँ? यह बताना कठिन है। मैं उसके प्रभाव और शक्ति को स्वीकार कर लेता हूँ। [illegible] वह नहीं [illegible] और जानता हूँ कि [illegible] यहाँ देखता हूँ कि [illegible] दबाव नहीं [illegible] एक [illegible] प्रभाव पैदा करता है [illegible] होता, बल्कि दूसरा व्यक्ति [illegible] लेता है और इस तरह नैतिक बलवाले का प्रभाव [illegible] है।

यह नैतिक बल ही था, जिससे गांधीजी ने हजारों भारतीयों को जेलों में कैद हो जाने के लिए प्रेरित किया। यह नैतिक बल ही था कि गांधीजी ने हजारों को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि उनपर चाहे कितना ही भीषण लाठी-प्रहार हो, वे आत्मरक्षा में एक अंगुली तक न उठावें।

नैतिक बल से प्रेरित सविनयभंग आज की पश्चिमी दुनिया के लिए बहुत महत्व की वस्तु है। आज तो राष्ट्र की सारी बचत ही नर-संहार के साधनों को जुटाने में क्या खर्च नहीं हो रही है? क्या ये सब नर-संहार के साधन प्रजा की इच्छानुसार प्रयुक्त होते है? जब एक सरकार किसी दूसरे राज्य की प्रजा का संहार करना वांछनीय समझती है तब क्या वहाके लोग जीवित रहने की आशा कर सकते हैं? क्या युद्ध में पड़े हुए राष्ट्र के पास विरोधी राष्ट्र की प्रजा की अधिकाधिक संख्या में हत्या करने के सिवा अपने प्रयोजन की श्रेष्ठता सिद्ध करने का और कोई मार्ग नहीं है? ये कुछ सवाल हैं, जिनका जवाब पश्चिमी संसार को जरूर देना चाहिए। और जबतक अतीत काल में इन प्रश्नों के दिये गये उत्तर के सिवा कोई दूसरा उत्तर नहीं दिया जायगा, तबतक पश्चिम की सभ्यता विनष्ट होने से नहीं बच सकती।

गांधीजी को इस बात का बहुत अधिक श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने इन सवालों का दूसरा उत्तर बताया है और उसपर आचरण करने का साहस भी दिखाया है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि ईसामसीह और बुद्ध प्रयोगत. नहीं रास्ते पर थे। लड़ाई-झगड़े के लिए दो का होना जरूरी है और यदि आप दृढता के साथ दूसरा बनने से इन्कार करदें, तो आपसे लडेगा कौन? तलवार के बल पर मुकाबिला करने से इन्कार कर दीजिए, उस समय न केवल आप अपने उद्देश्य को हिंसात्मक उपायों की अपेक्षा अधिक असानी व प्रभावशाली तरीक़े से पा सकेंगे, बल्कि आप हिंसा की निरर्थकता दिखला कर उसको पराजित भी कर देंगे। यह सिद्धान्त तो बहुत पुराना, जबसे कि मनुष्य सोचने लगा है तब का, तरीक़ा है। पर गांधीजी ने मानवी समस्याओं के निदान और समाधान के प्रयोग में जो उसे नया आविष्कार दिया है, इसके लिए सचमुच हमें उनका परम कृतज्ञ होना चाहिए। अपनी उच्चतम कल्पना को सत्य प्रदर्शित करने के मार्ग में जितने खतरे आ सकते थे, उन सबको उठाने के लिए गांधीजी ने हमेशा आग्रह दिखाया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह जिस उपाय का प्रतिपादन कर रहे है, उसका समय अभी नही आया और इसलिए इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि उनके विचार एकदम परेशान कर देनेवाले और आजकल के प्रचलित विचारो से एकदम विपरीत दीखते है। इसमें कोई शक नहीं कि गांधीजी के विचार आज के स्थापित स्वार्थों को ललकारते है, लोगों के दिलो में एक उथल-पुथल-सी मचा देते है, उनके नीति-चरित्र-सम्बन्धी विचारों को बदल देते है, तथा आज के शक्तिशाली स्थापित व्यक्तियों की सुरक्षा की जड़ें ढीली करते हैं। इसलिए अन्य सब मौलिक प्रतिभाशालियो की भांति इन्हें भी

दुर्दांत, विधर्मी और पाखण्डी आदि गालियाँ दी जाती हैं। कला में किसी नये मार्ग पर चलने को हद-से-हद सनक या मूर्खता कहा जाता है। लेकिन राजनीति या चरित्र में नये मार्ग पर चलने को 'प्रचारकों की शरारत' कहकर बदनाम किया जाता है कि जिसको बरदाश्त कर लिया गया तो वह समाज की वर्तमान नींव को ही हिला डालेगी। और प्रचलित समाज-नीति में जो भी प्रगति या नव सुधार हो—और प्रगति का अर्थ ही है कि भिन्न मत या दिशा में जा सकना—उसे विचार और नीति-क्षेत्र के स्थापित स्वार्थों का मुकाबिला सहना ही पड़ेगा। क्योंकि वर्तमान विचारों को हटाकर ही उन्नति की जा सकती है। इसलिए जहाँ कला में नया मार्ग निकालनेवाले प्रतिभाशाली भूखों मरते हैं, वहाँ आचार-जगत में ये नवपथी क़ानून के नाम पर जेल में डाले जाते हैं। इस दृष्टिकोण से यदि इतिहास के बड़े-बड़े क़ानूनी मुकदमों की परीक्षा की जाय, तो बहुत मज़ेदार बातें मालूम होंगी। सुकरात, जिओरडानो ब्रूनो और सर्विटस, सभी पर मुक़दमा चलाया गया और वे उस समय के अधिकारियों से भिन्न मत रखने के कारण दोषी ठहराये गये, कि जिन मतों के लिए आज संसार उनका आदर करता है। प्रतिभाशाली व्यक्ति का एक सर्वोत्तम लक्षण शैली के शब्दों में यह है कि वह वर्तमान में ही भविष्य का दर्शन कर लेता है और उसके विचार गुज़रे हुए ज़माने के फूल और फल के बीज-रूप होते हैं, जीव-विज्ञान की परिभाषा में कहें, तो एक प्रतिभाशाली मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र पर विकास-धारा की एक 'लहर' (sport) जिसका उद्देश्य जीवन के भीतर के अव्यक्त को व्यक्त चेतनरूप देना होता है। इसलिए वह प्रतिभाशाली जीवन के लिए एक नई आवश्यकता का प्रतिनिधित्व करता है और विचार और नीति-सम्बन्धी वर्तमान धरातल को नष्ट कर उसकी जगह दूसरा नया ऊँचा धरातल तैयार कर देता है। इसके बाद सारे समाज के विचारों का धरातल भी शीघ्र प्रतिभाशाली के नये सदेश तक उठ चलता है। इतिहास से यह स्पष्ट है कि एक समय जिस विचार को नया एवं समय के प्रतिकूल कहकर नापसन्द किया गया कुछ समय बाद वही जनता का प्रिय और प्रचलित विचार बन गया।

इसी अर्थ में गांधीजी एक नैतिक-क्षेत्र के प्रतिभाशाली हैं। उन्होंने झगड़ों के निबटारे के लिए एक नया मार्ग बताया है। यह मार्ग युद्ध-प्रणाली के उपाय की जगह ले लेगा। इसे समझ ही रहे [illegible] है कि युद्ध [illegible] की [illegible] में अधिकाधिक दक्ष और शक्तिशाली बनते जा रहे हैं तब यदि मनुष्य-समाज को [illegible] करनी है तो हमें देखना होगा कि वह [illegible] ही है। गांधीजी का ही [illegible] ऐसा मार्ग है जिस पर दूसरे सब मार्गों को छोड़कर चलना पड़ेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज गांधीजी का उपाय सफल नहीं हुआ। इसमें कोई शक नहीं कि जनता की उम्मीद उन्होंने रक्खी और दिखाई है वह सब पूरी नहीं हो सके हैं। लेकिन यदि मनुष्य जितना

कर सकते हैं, उससे अधिक की आशा न रक्खें और न दें, तो यह संसार और दरिद्र होता, क्योंकि प्राप्त सुधार अप्राप्त आदर्श का अंश ही तो है। गांधीजी श्रद्धावान् हैं इसलिए लोगों को उनमें श्रद्धा है। और उनका प्रभुत्व, कोई सत्ता पास न होते हुए भी दुनिया में किसी भी जीवित पुरुष से अधिक है।

: २३ :

महात्मा गांधी और आत्मबल

रूफस एम जोन्स, डी लिट्

[हैवरफ़ोर्ड कालेज, हैवरफ़ोर्ड, पेन्सिलवेनिया]

जिस किसीको महात्मा गांधी और उनके साबरमती-आश्रम में भ्रातृ-भाव से रहनेवाले साथियो को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह जरूर उनकी ७१वीं जयंती के उपलक्ष में निकलनेवाले अभिनन्दन-ग्रंथ में लेख लिखने के अवसर का स्वागत करेगा। मुझे भी उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैं इस ग्रन्थ में लेख लिखने के अवसर का प्रसन्नता के साथ स्वागत करता हूँ। मेरे जीवन की विचार-दिशा और जीवन-क्रम पर उनका गहरा प्रभाव है। मैं सार्वजनिक रूप से इस अद्भुत पुरुष के प्रति अपने ऋणी होने की घोषणा करता हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं भी उनके जीवनकाल में रहता हूँ।

मैंने सबसे पहले १९०५ में असीसी के सन्त फ्रांसिस का जीवन पढ़ा था और तभी से मैं उनके जीवन को एक ऊँचा आदर्श मानता हूँ। जिन लोगों को मैं जानता हूँ, गांधीजी उनमें फ्रांसिस से ही सबसे अधिक मिलते हुए मालूम पड़ते हैं। १९२६ में जब मैं गांधीजी से मिला, मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि गांधीजी असीसी के उस "दीन-हीन आदमी" के बारे में बहुत कम जानते हैं। मैं उनके पास बैठ गया और 'दी लिटिल फ्लावर्स आव सेंट फ्रांसिस' से उन्हें कई कहानियां सुनाईं। सबसे पहले मैंने उन्हें 'परमानन्द' वाली सबसे सुन्दर कहानी सुनाई। फिर मैंने उन्हें वह कहानी भी सुनाई जिसमें बताया है कि किस तरह बन्धु गाइल्स और फ्रांस के राजा सन लुई गले मिले एक-दूसरे को चुंबन किया, अनन्तर काफी देर दोनो चुप, प्रणाम की अवस्था में धरती पर झुके बैठे रहे और फिर बिना एक शब्द बोले दोनो अलग हुए। कुछ भी कहना दोनों को अनावश्यक प्रतीत हुआ। जैसा कि बन्धु गाइल्स ने पीछे लिखा— "हम एक दूसरे के हृदयों को सीधे जैसे पढ़ सके, मुंह से बोलकर वैसा नहीं कर सकते थे।" बिना शब्दों के हृदयों को समझने का जो अनुभव गाइल्स को हुआ था, वैसा ही अनुभव मुझे भी तब हुआ, जब मैं आधुनिक काल के सन्त के साथ जमीन पर बैठा

हुआ था। यह ठीक है कि इस संत के पास वैसी शाही पोशाक नहीं थी, जैसी कि सौवाँ लूई प्रायः पहनता था।

मुझे यह भी मालूम हुआ कि गांधीजी जॉन वुलमैन के बारे में भी, जिनसे वह बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं, बहुत कम जानते हैं। जॉन वुलमैन १८वीं सदी के क्वेकरों में अत्यन्त असाधारण और महान् सन्त हो गये हैं। बाइबिल की वह जीती-जागती प्रतिमा थे। वुलमैन ने एक दिन सुना कि सुसक्हिाना के रैड इण्डियन पश्चिम की बस्तियों में बसनेवालों से लड़ रहे हैं और उन्हें मार रहे हैं। उनके हृदय में इन इण्डियनों को देखने के लिए 'विशुद्ध प्रेम की धारा' बहने लगी। उनकी इच्छा हुई कि "वह उनके जीवन और मनोभावों को समझने की कोशिश करें और यदि संभव हो तो उनके साथ रहे।" वह लिखते हैं कि "मैं उनसे, संभव है, कुछ शिक्षा ले सकूँ या उन्हें सत्य की शिक्षा देकर उनकी थोड़ी-बहुत सहायता कर सकूँ।"

उन्होंने देखा कि रैड इण्डियन लड़ाई की पोशाक पहने हुए हैं और मार्च कर रहे हैं। वह उनकी एक सभा में गये, जहां वे गम्भीर और शान्त बैठे थे। तब वुलमैन ने शान्त और मीठी वाणी में उन्हें अपने आने का प्रयोजन बताया। इसके बाद उन्होंने फिर ईश्वर की स्तुति-वन्दना की। जब सभा खत्म होगई, तब एक रैड इण्डियन अपनी बोली में बोल पड़ा कि, "जहाँ से ये शब्द आते हैं उसे अनुभव करना मुझे अच्छा लगता है।" उसकी भाषा पराई थी, पर वह मन को मन से समझ रहा था। गांधीजी की कार्य-पद्धति भी ठीक इसी तरह की है। उनकी उपस्थिति ही लोगों के हृदय को उनकी वाणी या लेखों की अपेक्षा अधिक स्पर्श करती है, क्योंकि "लोग उनके हृदय की गहराई को, जिससे वह बोलते हैं अनुभव करते हैं।"

हम प्रायः उनके जीवन सिद्धान्त—सत्याग्रह—की अहिंसा के रूप में चर्चा करते हैं। लेकिन यह तो उनकी निषेधात्मक व्याख्या है जबकि उनके जीवन-सिद्धान्त की व्याख्या [illegible]

व्यक्ति के विषय में है जो उस 'आत्म शक्ति' को मुक्त करता है, जो उसके सीमित क्षुद्र व्यक्तित्व की नही, बल्कि गहन गम्भीर जीवन स्रोत का अग है। व्यक्ति की आत्मा अपने गूढान्तर में चित् और शक्ति के अगाध सागर के प्रति मानो खुल जाती है। वहाँ तो प्रेम और सत्य और ज्ञान का अबाध प्रवाह है। योगयुक्त होने पर वह प्रवाह व्यक्ति के माध्यम से फूट निकलता है। उपनिषदो में पुरुष के असीम रूपो का कथन आता है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा की सत्ता बतलाई है।

जो व्यक्ति यह जान लेता है कि इन सूक्ष्म और गहरी जीवन-शक्तियो को किस तरह जाग्रत किया जाय, वह न केवल शान्ति और निर्मलता का अधिकारी होता है, बल्कि साथ-ही-साथ वीरतापूर्ण प्रेम, साहस और उत्पादनशील क्रिया-शक्ति का भी केन्द्र बन जाता है। गाधीजी आत्मबल का जो अर्थ समझते है, वह भी कुछ इसी तरह का है। उनका जीवन आत्मबल का अनुपम प्रदर्शन है। यह वीरतापूर्ण शान्ति या निष्क्रियता ही नहीं है, उससे बहुत अधिक है।

एक दफा मैंने उनसे पूछा कि कठिन ससार की सब कठिनाइयो और निराशाओं के बावजूद भी क्या आप 'आत्म-बल' में विश्वास करते है? उन्होंने कहा—"हाँ, प्रेम और सत्य की विजय करनेवाली शक्ति में मैं सदा अपने अन्तरतम से विश्वास करता हूँ। ससार में ऐसी कोई वस्तु नही है, जो इस शक्ति पर से मेरा विश्वास विचलित कर दे।" जब ये शब्द उनके मुँह से निकल रहे थे, उनकी अँगुलियाँ अपनी निकली हुई हड्डियो और पसलियो पर घूम रही थीं। दरअसल वह अपने छोटे-से पतले और कमजोर शरीर की शक्तियो की बात नही सोच रहे थे। वह तो प्रेम और सत्य के अनगिनती स्रोतो के भण्डार सूक्ष्म आत्मशरीर की शक्तियो का चिन्तन कर रहे थे।

वीरतापूर्ण प्रेम का यह सन्देश और हिंसा से बहुत ऊँचा यह जीवनक्रम कुछ ऐसे लोगो में भी था, जिन्हे गाधीजी नही जानते, लेकिन वे भी क्षमा और नम्रता के इसी पथ के पथिक थे। मैं इनका सक्षिप्त परिचय देकर वीरतापूर्ण और इस जीवन-क्रम के कुछ और उदाहरण देना चाहता हूँ। सबसे पहले मैं १७ वीं सदी के क्वेकर जेम्स नेलर का नाम लूंगा। इनपर नास्तिकता का अपराध लगाकर इन्हे क्रूरतापूर्वक दण्ड दिया गया था। लोहे की एक गरम लाल सलाख से उनकी जीभ छेदी गई थी। उन्हे दण्ड देने के निमित्त बने सख्त लकडी के साचे में दो घटे तक रक्खा गया। छकडे के पीछे बाँधकर, पीठ पर जल्लाद के हाथो चाबुक की मार सहते उन्हे लदन की गलियो मे घसीटा गया था। उसके माथे पर दाग से दाग दिया गया था। यह भी हुक्म उन्हे हुआ था कि वह ब्रिस्टल मे घोडे की पीठ पर उलटा मुँह करके सवार हो, सरेबाजार उन्हें चाबुक लगाये जायें और फिर ब्राइडवैल के जेल के एक तहखाने में बंद कर दिया जाय, जहाँ उन्हे क़लम-दवात कुछ भी न दी जायें। अत में बहुत समय बाद पार्लमेंट ने एक क़ानून बनाकर उन्हे छोडा।

इस मनुष्य ने मनुष्य की असानुषिकता का शिकार होकर अपने साथ अन्याय करनेवाले संसार को यह शिक्षा दी, "मुझ मे एक ऐसी आत्मा है, जो कोई बुराई न करके, किसी अन्याय का बदला न लेकर आनंदित होती है। वह तो सबकुछ सहन करने में ही प्रसन्न होती है। उसे यह आशा है कि अन्त में सब भला ही होगा। वह क्रोध सब झगडो, निर्दयताओं और अपनी प्रकृति से विरुद्ध सब दुर्गुणो पर विजय पालेगी। यह आत्मा संसार के सब प्रलोभनो को पार कर दूर की चीज देखती है। इसमें स्वय कोई बुराई नही है, इसलिए यह और भी किसीकी बुराई नही सोच सकती। यदि कोई इसके साथ धोखा-धडी करे, तो यह सहन कर लेती है, क्योंकि परमात्मा की दया और क्षमा इसका आधार और मूलस्रोत है। इसका चरम विकास नम्रता है, इसका जीवन स्थायी और अकृत्रिम प्रेम है। यह अपना राज्य लड-झगडकर लेने की अपेक्षा अनुनय-विनय से बढाती है और उसकी रक्षा भी हृदय की विनम्रता से करती है। इसे केवल परमात्मा के सान्निध्य में ही आनन्द आता है। यह निर्विकार और निर्लेप है। दुःख में इसका बीजारोपण होता है और जन्मने पर यह किसीसे दया की अपेक्षा नही रखती। कष्ट या सांसारिक विपत्ति में यह कभी विचलित नही होती। यह विपत्ता में ही आनन्द मनाती, और सांसारिक सुखसंभोग में अपनी मृत्यु मानती है। मैने इसे उपेक्षित एकाकी अवस्था में पाया। झोपडो और उजाड स्थानो पर रहनेवाले ऐसे दरिद्र लोगो से मेरी मित्रता है जो मृत्यु पाकर ही पुनर्जन्म और अनन्त पवित्र जीवन पाते है।'[1] आत्मबल का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

विलियम लॉ १८वी सदी के प्रमुख रहस्यवादी अंग्रेज थे। उन्होंने नेलर जितने कष्ट तो नही सहे, लेकिन फिर भी उन्हे काफी कष्टो की चक्की में पिसना पड़ा। उन्होंने भी बहुत सुन्दर और सतत स्मरणीय शब्दो में आत्मबल का यही संदेश दिया है। उनकी एक व्याख्या निम्नलिखित है

"प्रेम अपने पुरस्कार की अपेक्षा नहीं रखता और न सम्मान या इज्जत की इच्छा करता है। उसकी तो केवल एक ही इच्छा रहती है कि वह उत्पन्न होकर अपने इच्छुक प्रत्येक प्राणी का हितसम्पादन करे। इसलिए वह क्रोध घृणा बुराई आदि प्रत्येक विरोधी दुर्गुण से उसी उद्देश्य से मिलता है जिससे कि प्रकाश अन्धकार से मिलता है। दोनो का उद्देश्य उनपर [illegible] की वृष्टि करके उनपर काबू पाना है। यदि आप किसी व्यक्ति के क्रोध या दुर्भावना से बचना चाहते है या किन्हीं लोगो का प्रेम प्राप्त करना चाहते है तो [illegible] कभी [illegible] नहीं होगा [illegible] आपके अन्दर सर्वभूतहित के सिवा [illegible] है [illegible] नहीं तो आपका जिस किसी स्थिति में भी गुजारा [illegible] सहायक

१ 'लिटिल बुक ऑव सलेक्शन्स फ्रॉम दी चिल्ड्रन ऑव दी लाइट'—लेखक रुफस एम जोन्स, पृष्ठ ४८–४९

सिद्ध होगी। चाहे शत्रु या चोर हो, मित्र या [illegible] हो या कोई और [illegible] हो, सभी प्रेम की भावना का और भी विशेष [illegible] तथा उसके उदात्त आशीर्वादों को पाने में सहायक सिद्ध होते हैं। सारा दुःख व अप्रसन्नता, जिस किसी का भी विचार करें, वह सब प्रेम की भावना के अन्तर्गत आ जाते हैं और आना भी चाहिए, क्योंकि पूर्ण और आनन्दमय परमात्मा प्रेम और [illegible] की अनिर्वचनीय इच्छा के सिवा और कुछ नहीं। इसलिए यदि [illegible] की इच्छा के सिवा किसी और इच्छा से कोई काम करता है, तो वह कभी प्रसन्न और सुखी नहीं हो सकता। यही प्रेम की भावना का आधार, प्रकृति और पूर्णता है।"[1]

: २४ :

गांधी का महत्व

शांति-प्रतिज्ञ एक ईसाई की मनोनुभूति

स्टीफेन हॉबहाउस, एम. ए.

[ब्रॉक्सबोर्न, हर्ट्स, इंग्लैण्ड]

हमारा धर्म अथवा दर्शन कितना भी बहिर्लक्षी प्रतीत हो, किन्तु हममें से जिस किसीमे भी विचार और आकाक्षा की क्षमता है, उसे एक अपनी ही दुनिया का निर्माण उन वस्तुओ में से करना पडा है जो कि उसके चारो ओर की गूढ और अज्ञात परिस्थिति द्वारा उसे उपलब्ध हुई है। हमारे इस चैतन्य-ब्रह्माण्ड में कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं—शक्ति, गुण, आदर्श अथवा व्यक्ति कहकर उन्हे पुकारते है—जो एक अद्भुत और प्रभावकारी आकर्षण द्वारा हमारे स्वभाव, हमारे हृदय और हमारी बुद्धि के केन्द्रीय तन्तुओ में हलचल कर देती है। और तब अपनी स्वस्थतर घडियो में एक निरन्तर चाहना हममें जग आती है, कि उन्हे हम जाने, उन्हे प्रेम करे, उनसे अधिकाधिक रूप मे तादात्म्य करले। और हम बराबर इस कोशिश मे होते है कि जो कुछ भी तुच्छ, अनावश्यक, असुन्दर और अपवित्र दीखता है, उससे मुक्ति पा ले।

वे लोग, जिनका अन्त करण भिन्न है, इस केन्द्रीय आकर्षण को बहुत कुछ मानव-कला की कृतियो मे या वैज्ञानिक प्रक्रिया की सूक्ष्म सगतियो मे पायँगे। मै उन अनेको मे से एक हूँ, जिन्हे उनका दर्शन व्यक्तित्व की अनिर्वचनीय विस्मयकारिता और सौन्दर्य मे होता है, कि जिनकी कल्पना उनकी जीवनगत सपूर्णता मे उन श्रेष्ठ और सुन्दरतम नर-नारियो द्वारा होती है जो कि देह-रूप मे अथवा पुस्तको मे हमारी दृष्टि की राह

१ "सलेक्टिव मिस्टिकल राइटिंग्स ऑव विलियम लॉ"—स्टीफेन हॉबहाउस द्वारा सम्पादित, पृष्ठ १४०–१४१

यह घोषणा करने के अपराध में वह घर से निकाल दिये गये थे। यूरोपीय इतिहास, निश्चय ही अन्य ऐसे अनेक विनयी, प्रेमी और निर्भीक नर-नारियों की कथाओं से भरा है जिन्होंने कि उसी, यानी अहिंसा के, सन्देश को अपने जीवन में निभाया है और देश की सामाजिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में अधिकांश को अहिंसा के विपरीत जाते देखा है। लेकिन वास्तव में बहुत ही कम उस बल, साहस और प्रेरणा का संचय कर पाये जिससे मौजूदा व्यवस्था के निर्वाण और समाज के पुनर्निर्माण के लिए वे अपने देश-वासियों को विश्व-प्रेम का उपदेश प्रभु-सन्देश के रूप में खोलकर सुना सकते। अबतक परलोक-वाद के अतिरंजन की परम्परा होने के कारण, ऐसे आत्म-ज्ञानी व्यक्ति लगभग हमेशा यह समझकर खामोश हो जाते रहे कि दुनिया और दुनिया की व्यवस्था का विनाश तो विधिद्वारा ही निश्चित है, और इसलिए वे दोनों सुधार के बस की बातें नहीं हैं।

आखिर अब, जब कि यूरोप, जिसका कुछ भाग फिर भी ईसाई होने का दावा कर रहा है, अन्य तमाम 'सभ्य' जातियों के साथ एकसाथ एक आत्मघातक युद्ध की ओर भी जी-जान से बढ़ रहा है, साम्प्रदायिक और धार्मिक झगड़ों से पूरी तरह छिन्न-विच्छिन्न भारत में एक छोटे-से पतले-दुबले हिन्दू का उदय हुआ है। वह पहले वकील भी रह चुका है। अब वह हजारों स्त्री-पुरुषों को सत्य और न्याय के नाम पर एक बिलकुल नये किस्म की लड़ाई के लिए भर्ती होने को प्रेरित कर सकता है। यह एक ऐसी लड़ाई है, जिसके सैनिक विनाशकारी यन्त्रों के गन्दे स्पर्श से एकदम अलग बचे रहने की कोशिश करते हैं। यह एक लड़ाई है जिसके लड़ने के लिए हैं निर्दोष अस्त्र आत्म-शक्ति और अहिंसा, निर्दय शत्रुओं के भी साथ दिखाई गई सद्वृत्ति, और ईश्वर के समक्ष निष्ठापूर्ण विनय। हाँ, मैं कहूँगा, यह लड़ाई है, जो खुशी-खुशी ईसा का काँटों का ताज और उसकी सूली का दर्द अपनाकर इस दृढ़ आस्था से लड़ी जाती है कि यह वह सूली और काँटों का ताज है जिससे पीड़ित और पीड़ा देनेवाला दोनों चलकर ईश्वर तक पहुँच सकेंगे। भारतीय पाठक मुझे क्षमा करेंगे कि मैं स्वभाववश ईसाइयत की भाषा पर उतर आता हूँ। लेकिन मैं हिन्दू-धर्म को हृदय से प्रणाम करता हूँ कि जिसने अहिंसा के सैनिक को जन्म दिया है।

जहाँ आज इस दुनिया में चारों ओर भय और अन्धकार छाया हुआ है वह एक स्वप्न है इतना सुन्दर कि विश्वास नहीं होता कि वह सच हो सकता है। पर यदि विश्वसनीय साक्षियों की बातों पर विश्वास करें और विश्वास कर सकते हैं तो आश्वासन की सूचना है कि एक जीवन और स्फूर्ति देनेवाले जन-आन्दोलन के प्रथम प्रयोग आरम्भ हो गये हैं। अबतक उसमें असफलतायें और भूल-चूक (नेता और उनके अनुयायियों द्वारा) हुई हैं वह बहुत कम हैं। पिछले कुछ महीनों में महात्मा (आम-तौर से इसी पद से भारत में उन्हें विभूषित किया जाता है और वह स्वयं इसे [illegible]

को शाश्वत ईसा के दूतो या पैगम्बरो के रूप मे देखता हूँ। भले ही उनमें से कुछ ईसा को प्रभु और परमात्मा स्वीकार नही कर पाये या करने को उद्यत नहीं हुए।

इन महान् युग-पथ-प्रदर्शको में एक सबसे बडे, प्रतीत होता है, मोहनदास करमचन्द गांधी हैं, और वह अहिंसा-सत्याग्रह का पैगाम लेकर जगत में जनमे हैं। निश्चय ही, अपने इस युग के तो वह सबसे बडे व्यक्ति है। प्राचीन मतो और नीति की मान्यताओ के ह्रास ने, मशीन द्वारा हुए अत्याचार ने और उद्भ्रान्त व्यवसायवादियों और सेनावादियो द्वारा हुए वैज्ञानिक ज्ञान के दुरुपयोग ने अनेक नई और सुन्दर सचाइयो की हाल में होनेवाली उपलब्धि के बावजूद भी, एक ऐसा सकट ला खडा किया है कि जैसा दुनिया मे दूसरा नही मिलता। यहाँ तक कि ऐसा आभास होने लगा है कि सभ्यता, अधिक स्पष्ट शब्दो में ही कहो तो व्यवस्थापूर्वक भलमनसाहत के साथ रहनेवाला शिक्षित समाज, जैसाकि कुछ भाग्यशाली व्यक्तियो ने उसे समझा है, अब शायद पहले कभी की भी अपेक्षा अधिक पूरे तौर से उस विश्व-व्यापी अराजकता और विनाशकारी युद्ध में नष्ट-भ्रष्ट हो जाये, जिसे कि स्वार्थ-साधन में नग्न मानव की स्वेच्छाचारी वासनाओ ने जन्म दिया है।

मैने इस लेख मे यह समझाने की कोशिश की है कि गाधी के महान् और अत्यन्त सम्बद्ध अहिंसा और सत्याग्रह के आदर्श ही केवल वह उपाय जान पडते हैं जिससे हमारी छिन्न-विच्छिन्न और रुग्ण अवस्था को मुक्ति तथा स्वस्थ और सच्चा जीवन प्राप्त हो सकता है। और ऐसा करते समय, साथ-ही-साथ मुझे यूरोपीय विचार-शृंखला के गत इतिहास में आये इन आदर्शों के उल्लेखो पर भी नजर डालते जाना है, क्योकि अधिकांशत. आँखो से ओझल और प्राय ईसाई सस्कृति के नेताओ द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित रहकर भी वे अभी कायम है। (भारत और चीन मे अहिंसा का जो इतिहास रहा, उसके बारे मे लिखने का मै अधिकारी नही हूँ।)

उस यूरोप के मध्य मे जो आज ध्वस और विनाश के लिए तलवारो से भी कहीं अधिक भयकर असख्य साधन जुटाने मे तेजी के साथ सलग्न है, जर्मन प्रदेश सिलीसिया है और वहाँ गौरलिज नामक एक प्राचीन नगर है, जो अब आधुनिक साज-सज्जा से सज्जित है। यहाँ एक प्रमुख सडक पर जहाँ कि मोटरो की घूँ-घूँ से वायु गूँजा करती है, एक महान् किन्तु अल्पख्याति ईसाई जेकब बोहमे के सम्मान में एक प्रस्तर मूर्ति कोई पन्द्रह वर्ष हुए स्थापित की गई थी। इस मूर्ति के निचले भाग में स्वय उस ईसाई सत्पुरुष के आस्था और चेतावनीभरे शब्द खुदे हुए है—"प्रेम और विनय ही हमारी तलवार है", "जिसके द्वारा ईसा के काँटो के ताज की छाया में हम लड सकते है।" इन शब्दो से उस उद्धरण की पूर्ति हो जाती है जिसे कि उस वृद्ध छायावादी संत ने वहाँ अकित किया है। और बोहमे वह सत थे जिन्होने ईश्वर-सत्ता के प्रति अपनी आस्था के अर्थ अनेक विपदायें सही। इस आस्था ही के द्वारा मानव का उद्धार हो सकता है,

यह घोषणा करने के अपराध में वह घर से निकाल दिये गये थे। यूरोपीय इतिहास, निश्चय ही अन्य ऐसे अनेक विनयी, प्रेमी और निर्भीक नर-नारियों की कथाओं से भरा है जिन्होंने कि ईसा, यानी अहिंसा के, सन्देश को अपने जीवन में निभाया है और देश की सामाजिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में अधिकांश को अहिंसा के विपरीत जाते देखा है। लेकिन वास्तव में बहुत ही कम उस बल, साहस और प्रेरणा का संचय कर पाये जिससे मौजूदा व्यवस्था के निर्वाण और समाज के पुनर्निर्माण के लिए वे अपने देश-वासियों को विश्व-प्रेम का उपदेश प्रभु-सन्देश के रूप में खोलकर सुना सकते। अबतक परलोक-वाद के अतिरंजन की परम्परा होने के कारण, ऐसे आत्म-ज्ञानी व्यक्ति लगभग हमेशा यह समझकर खामोश हो जाते रहे कि दुनिया और दुनिया की व्यवस्था का विनाश तो विधिद्वारा ही निश्चित है, और इसलिए वे दोनों सुधार के बस की बातें नहीं हैं।

आखिर अब, जब कि यूरोप, जिसका कुछ भाग फिर भी ईसाई होने का दावा कर रहा है, अन्य समस्त 'सभ्य' जातियों के साथ एकसाथ एक आत्मघातक युद्ध की ओर भी जी-जान से बढ़ रहा है, साम्प्रदायिक और धार्मिक झगड़ों से बुरी तरह छिन्न-विच्छिन्न भारत में एक छोटे-से पतले-दुबले हिन्दू का उदय हुआ है। वह पहले वकील भी रह चुका है। अब वह हजारों स्त्री-पुरुषों को सत्य और न्याय के नाम पर एक बिल्कुल नये किस्म की लड़ाई के लिए भर्ती होने को प्रेरित कर सकता है। यह एक ऐसी लड़ाई है, जिसके सैनिक विनाशकारी यंत्रों के गन्दे स्पर्श से एकदम अलग बचे रहने की कोशिश करते हैं। यह एक लड़ाई है जिसके लड़ने के लिए हैं निर्दोष अस्त्र आत्म-शक्ति और अहिंसा, निर्दय शत्रुओं के भी साथ दिखाई गई सद्वृत्ति, और ईश्वर के समक्ष निष्ठापूर्ण विनय। हाँ मैं कहूँगा, यह लड़ाई है, जो खुशी-खुशी ईसा का काँटों का ताज और उसकी सूली का दर्द अपनाकर इस दृढ़ आस्था से लड़ी जाती है कि यह वह सूली और काँटों का ताज है जिससे पीड़ित और पीड़ा देनेवाला दोनों छूट कर ईश्वर तक पहुँच सकेंगे [illegible] ईसाइयों की भाँति [illegible] हूँ [illegible] 'हिन्दू-धर्म' के हृदय में [illegible] हूँ कि जिसके अहिंसा के [illegible] है

[illegible] आज इस दुनिया में [illegible] छाया हुआ है वह एक [illegible] है [illegible] सुन्दर [illegible] वह सब [illegible] विश्वसनीय [illegible] की सूचना है [illegible] प्रयोग [illegible] है अबतक उसके [illegible] और [illegible] उसके अनुयायियों द्वारा) हुई है यह [illegible] है। [illegible] कुछ महीनों [illegible] तौर से इसी पद से भारत में उन्हें विभूषित किया जाता है और यह [illegible]

करने मे इन्कार करते है) ने स्वय एक बार फिर पिछली असफलता और निराशा की अनुभूति को नि सकोच स्वीकार किया है, लेकिन फिर भी भविष्य में अपना अडिग विश्वास प्रगट किया है। "ईश्वर ने मुझे", वह लिखते है, "इस कार्य के लिए चुना है कि मैं भारत को उसकी अपनी अनेक विकृतियो से निवृत्ति पाने के लिए अहिंसा का अस्त्र भेंट करूँ।...अहिंसा में मेरी निष्ठा अब भी उतनी ही दृढ है जितनी कभी थी। मुझे पक्का विश्वास है कि इससे न सिर्फ हमारे अपने देश ही की सब समस्याएँ हल होगी, बल्कि इससे, यदि उपयोग ठीक हुआ, तो वह रक्तपात भी रुक जायगा जो कि भारत के बाहर हो रहा है और पाश्चात्य जगत को उलट देना ही चाहता है।"

जरा खयाल तो कीजिए एक उस लोकव्यापी और देश-भक्ति से ओतप्रोत आन्दोलन का उन लोगो में, जो कि आक्रान्ता विदेशी लोगो के शासनाधीन है और जहाँ मालूम होता है सहस्रो ने आनन्द-मग्न और विश्वस्त भाव से नीचे लिखे वचनों को अपने कर्म का आधार-सूत्र स्वीकार किया है। ये वचन उनके उस महान् नेता की लेखनी अथवा मुख से निकले लिये गये है।[1]

"अहिंसा का अर्थ अधिक-से-अधिक प्रेम है। अहिंसा ही परमधर्म है, केवल उसीके बलपर मानव-जाति की रक्षा हो सकती है।"

"वह जो अहिंसा में विश्वास रखता है, जीवन-रूप परमात्मा में विश्वास करता है।"

"अहिंसा शब्दो द्वारा नही सिखाई जा सकती। हृदय से प्रार्थना करने पर ही वह प्रभु की कृपा से अन्त.करण में जगती है।"

"अहिंसा, जो सबसे वीर है और बलिष्ठ है, उनका शस्त्र है। ईश्वर के सच्चे जन में तलवार चलाने की शक्ति होती है, लेकिन वह चलायेगा नही, क्योकि वह जानता है कि हरेक आदमी ईश्वर का प्रतिरूप है।"

"यदि रक्त बहाया जाय, तो वह हमारा रक्त हो। बिना मारे चुपचाप मरने का साहस जुटाना है।"

"प्रेम दूसरो को नही जलाता, वह स्वय जलता है, खुशी-खुशी कष्ट सहते मृत्यु तक का आलिंगन करता है। किसी एक अंग्रेज की भी देह को वह मन, वचन, या कर्म से, जान-बूझकर क्षति नही पहुँचायेगा।"

"भारत को अपने विजेताओ पर प्रेम से विजय पानी होगी। हमारे लिए देश-भक्ति और मानव-प्रेम एक ही चीज है। भारत की सेवा के प्रयोजन से मैं इंग्लैंड या जर्मनी को नुकसान न पहुँचाऊँगा।"

१. कुछेक स्थानों में मैंने गांधीजी के अलग-अलग वचनों को, जैसे कि वे गांधीजी द्वारा स्वयं अथवा भिन्न लेखकों द्वारा प्राप्त हुए थे, संक्षिप्त कर दिया है या जोड़ दिया है।

"अहिंसा और सत्य अभिन्न हैं। एक का ध्यान करो कि दूसरा पहले ही आ जाता है।"

"सत्य से परे और कोई ईश्वर नहीं है। सत्य ही सर्वप्रथम खोजने की वस्तु है।"

"स्वयं ईश्वर द्वारा संचालित हमारे पवित्र युद्ध में कोई ऐसे भेद नहीं हैं जिन्हें गुप्त रखने की चेष्टा की जाय, चालाकी की कोई गुंजायश नहीं है, असत्य को कोई स्थान नहीं है। सब कुछ शत्रु के सामने खुल्लमखुल्ला किया जाता है।"

"सत्याग्रह के लिए आवश्यकता है कि शुद्धि के लिए प्रार्थना करके ऐन्द्रिक और स्वार्थगत समस्त वासनाओं पर क़ाबू पाया जाय।"

"एक-एक पग पर सत्याग्रही अपने विरोधी की आवश्यकताओं का खयाल करने के लिए बाध्य है। वह उनके साथ सदा विनम्र और शिष्ट रहेगा, यद्यपि सत्य के विरुद्ध जानेवाली उनकी बात या हुक्म को वह नहीं मानेगा।"

"सत्याग्रही न्याय के रास्ते से नहीं डिगेगा। पर वह सदैव शान्ति के लिए उत्सुक रहता है। दूसरों में उसकी अत्यन्त निष्ठा है, अनन्त धैर्य है और अमित आशा है।'

"मानव-प्रकृति तत्वतः एक है और इसलिए अन्यायकारी (अन्त में) प्रेम के प्रभाव से अछूता रह नहीं सकता।'

"धरती पर कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो शान्ति-प्रिय, कृत-संकल्प और ईश्वर-भीरु जनों के आगे ठहर सके। संसार के समस्त शस्त्र-भंडारों के मुक़ाबिले भी अहिंसा अधिक शक्तिशाली है।'

"जो ईश्वर से डरता है, उसे मृत्यु से कोई भय नहीं।'

'रण-क्षेत्रवाली वीरता तो हमारे लिए संभव नहीं। लेकिन निर्भीकता बिल्कुल जरूरी है। शरीर के चोट खाने का डर, रोग या मृत्यु का डर, धन-सम्पदा, परिवार अथवा ख्याति से वंचित होने का डर सब डर छोड़ देना होगा। कोई वस्तु दुनिया में हमारी नहीं है।

अहिंसा के लिए सच्ची नम्रता चाहिए, क्योंकि अहं पर नहीं केवल ईश्वर पर निर्भर रहने का नाम अहिंसा है।'

असल में जिस हद तक हम दुनिया की सम्पदा का अनुचित हिस्सा दबोचकर आराम से बैठे हुए हैं या अपने स्वार्थ-वश उनका शोषण करने या उनपर शासन चलाने में सन्तोष का अनुभव करते हैं, वहाँ तक भले ही हमें ऊपर के जैन सिद्धान्तों को अपने नित्य जीवन में लाने में डर लगता हो, लेकिन सद्भावना-भरे उन सब स्त्री-पुरुषों को जो मानव और ईश्वर में और आत्मानन्द के ज्ञान की वास्तविकता में निष्ठा रखकर जीवन बिताने की चेष्टा करते हैं अवश्य ही एक ऐसे आन्दोलन में आह्लाद मिलना

कहे जानेवाले पश्चिम के राष्ट्र हैं। सभ्यता, संस्कृति या धर्म के विषय में यही देश अगुआ हैं। पर ये दुनिया की जो बहुत सी जमीन, माल और साधन अपनाये बैठे हैं, उसमें और मुल्कों के साथ बराबरी का बँटवारा करने को वे तैयार नहीं हैं। उधर खुलकर जोर की आवाज़ के साथ यही देश ऐलान करते हैं कि उनके पास जो कुछ भी धन-जन-साधन उप-लब्ध हैं, उन सबको लडाई में झोंक देने को वे तैयार हैं। आधुनिक लडाई का रूप कल्पना में न लाया जाय तो ही अच्छा है। उसके ध्वंस की तुलना नहीं हो सकती। और वह युद्ध होगा किसलिए ? इसलिए कि आसपास के जो भूखे देश लूट में अपना भी हिस्सा माँगते हैं उन्हें दूर ठिकाने ही रक्खा जाय। धन-दौलत और अधिकार के पीछे बेतहाशा आपाधापी और होडा-होड लगी है। तिसपर उस वृत्ति में आ मिली है बुद्धि की चतु-रता। आदमी का दिमाग बेहद बढ गया है। प्रकृति की शक्ति और मनुष्यों के संगठन को काबू में करके अब वह बहुत कुछ कर सकता है। नतीजा यह हुआ है कि भारी शक्ति बटोरकर लोग उन आसुरी वृत्तियों को पोस रहे हैं। ऐसे क्या होगा ? होगा यही कि सारी दुनिया में डिक्टेटरशाहियों या कि अन्य तन्त्र-शाहियों के गुट्ट लोक-तृष्णा और शक्ति-सचय की प्यास में आपस में घमासान मचायेंगे और प्रजातन्त्र नामवाले देश भी उन अन्य तन्त्र-शाहियों की ताकत का मुकाबिला ताक़त से करेंगे। इस तरह मुसीबत और बढेगी ही। त्रास बढेगा, दैन्य बढेगा। लोभ और आतंक का दौरदौरा होगा। क्योंकि आज की-सी लडाई की भीषणता के बीच या तो यह है कि प्रजातन्त्र राष्ट्र दुश्मनों की ज्यादा मजबूत हिंसा-शक्ति के आगे हार कर नष्ट हों या फिर अपने ही अन्दर सैनिक वर्ग और वृत्ति-प्रधानता बढते जाने के कारण, आवश्यकता के बोझ से स्वयं अपने में ही डिक्टेटरशाही उपजाकर उसके हाथों पडकर नष्ट हों।

उसके बाद फिर तो विश्वव्यापी पैमाने पर पुराने रोम-शाही के खुले दौर का समय होगा ही। दया और धर्म की पूछ तब नहीं होगी। पर जैसा कि सशस्त्र विरोध के मिटने के बाद, रोम-राज्य भी धीरे-धीरे उदार और निष्पक्ष होने लगा था, वैसे ही दुनिया की यह एकच्छत्रता स्वेच्छाचारी और जडवादी रहते हुए किसी कदर कम सख्ती की ओर एवं एक निरकुश की बुजुर्गशाही की ओर झुकेगी।

पर फिर भी हजारों लाखों स्त्री-पुरुष होंगे जो निरकुशता के हाथों बिकेंगे नहीं, न उसके मूक साधन बनेंगे। उनका इन्कार दृढ रहकर बढना और फैलता ही जायगा। कष्टों से पवित्र, शनै शनै ऐसे बहुत संख्या में समुदाय होते जायेंगे। ईसाई उसमें होंगे, बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान या अन्य धार्मिक वर्ग होंगे। ये समूह आपस में पास खिचेंगे और इकट्ठे बनते जायेंगे। वे सहिष्णु होंगे और रह-रहकर उनपर अत्याचार टूटेगा। (ईसाई होने के नाते यह विश्वास मुझे है कि अन्त में जाकर ईसा के सच्चे विसर्जन-धर्म के ही किसी स्वरूप की विश्वव्यापी विजय होगी, चाहे फिर उसमें सदियाँ ही क्यों न लग जायें।) ये सब समुदाय सरकारी अत्याचार या जनता के अनाचार के

संसार के अंगभूत बड़े-बड़े साम्राज्यों के अन्दर ऐसे सत्याग्रहियों का बहुमत होना चलेगा। वे सत्याग्रह की शक्ति में इतना पर्याप्त विश्वास रक्खेंगे कि कहें कि शासन-सत्ता का मूलाधार वही सिद्धान्त हो सकता है। उनके बाद तो छुट-पुट सनकी या झक्की-से ही लोगों के दल शेष रह जायेंगे। उनके हाथों अधिकार भी कुछ न होगा। पर वे भी फिर स्वय ही ऐन्द्रिक विलास या तृष्णागत कर्म के चक्कर से ऊब चलेंगे। क्योंकि सब ओर उन्हें ऐसे लोगों का समाज मिलेगा जो बिना धैर्य खोये, न किसी प्रकार का आवेग लाये, सब सह लेंगे और किसी तरह का बदला लेने से इन्कार कर देंगे। वह समय होगा कि देवदूत ईसा के ये वचन पूरे होंगे कि "धन्य हैं वे जो नम्र (शान्त, अथवा अहिंसक) हैं, क्योंकि वे धरती पर राज करेंगे।" राज्य!—नरलोक, सुरलोक, दोनों का राज्य!

बस, यहाँ आकर कल्पना हार बैठती है। आप कह सकते हैं कि यह तो आदर्श की बात हुई। पास से चित्र देखने से निराशा होती है, दूर रखकर देखने से ही आशा होती है। पर बुरी-से-बुरी सम्भावना और भली-से-भली आशा का सामना करने की आदत रखना उपयोगी होता है। हो सकता है कि विधाता की ओर से कोई अभूतपूर्व संकट आपहुँचे जिसमें मानव-जाति ही का ध्वंस होजाय, कौन जानता है! पर यदि ऐसा नहीं है, और इस धरती पर यदि एक दिन शान्ति और न्याय का साम्राज्य स्थापित होना ही है, तब तो निश्चय ही रास्ते में कुछ विघ्न-बाधाओं के मिलने की हमें आशा रखनी ही चाहिए। ईश्वर का काम अचूक है, पर वह जल्दी का नहीं होता। और मनुष्य के भीतर का विकार भी नष्ट होने में शीघ्रता नहीं करता दीखता। पर यदि, और जब, इस धरती पर राम-राज आयेगा तथा आदमी और आदमी के (गांधीजी तो कहेंगे कि आदमी और पशु के भी) बीच द्वेष और कलह की, कम-से-कम बाहरी, सम्भावना तो मिट ही जायेगी, उस समय यह आशंका कृपाकर कोई न करे कि जिन्दगी यह वीरान और सुनसान जंगल की तरह हो जायगी, दिलचस्पी की बात कोई न रहेगी और सब ऊबने जैसा होजायगा। नहीं, हम विश्वास रख सकते हैं कि चैतन्य की असीम सृजन-शक्ति चुप नहीं बैठा करती और उसकी गति और प्रवृत्ति के लिए सदा असीम अवकाश रहे ही चला जायगा। ईश्वर की रचना में तो अतल भेद और अनन्त रहस्य भरा पड़ा है। आदमी की चेष्टा उसके अनुसन्धान में बढ़ती ही जा सकती है। और यही होगा। पर तब प्रेरणा प्रीति की होगी और कर्म यज्ञार्थ होगा। वही प्रेरणा और वैसा ही कर्म है, चाहे वह स्वल्प और अविकसित रूप में ही क्यों न हो, जो हिन्दुस्तान की जनता को इस समय उभार दे रहा है।

आनेवाले साल संकट और अन्धकार से भरे हो सकते हैं। पर वे ही प्रकाश और आनन्द से भी भरे होंगे। इन पंक्तियों का लेखक कृतज्ञता के साथ यहाँ स्मरण करना चाहता है कि कैसे चालीस बरस पहले लियो टॉल्स्टॉय के स्फूर्तिमय वचनों को पढ़कर

उसने युद्ध-प्रतिकार और स्वेच्छा से वरण किये हुए दैन्य-दारिद्रय के आदर्श मे हिच-किचाहट के साथ कुछ प्रयोग शुरू किये थे। फलस्वरूप काफी दिन जेल की कोठरी का भी उसे अनुभव हुआ। भला होता यदि उसके प्रयत्न बाद मे भी उस दिशा मे जारी रहे होते। आज तो वह इच्छा-ही-इच्छा है। तो भी उस भारतीय महापुरुष के प्रति, जिसे उस रूसी महर्षि का आज का स्थानापन्न कहना चाहिए, श्रद्धाजलि भेट करने के अवसर के लिए यह लेखक परमकृतज्ञ है।

हाल ही मे स्वर्गवासी हुए कवि यीट्स ने कहा है कि "मेरी कवि-वाणी चिर-नवीन है।" यीट्स का कहना सच ही था। पर यह और भी सच है कि श्रमजर्जर, आयु-जीर्ण, मोहनदास गाधी के ओठो से प्रस्फुटित हुआ आत्म-शक्ति का सन्देश सदा अजर-अमर है। वह नित-नवीन है—पैंतालीस वर्ष पहले जब वह अध्यात्म-पुरुष पहले-पहले सत्य के साहसपूर्ण प्रयोग कर रहा था, उस समय से भी आज वह नवीन है। क्योकि क्या आयु के वर्षो के साथ-साथ वह पुरुष भी क्रम-क्रम से अजर-यौवन और दिव्य-नम्र उस सत् शक्ति के स्रोत ईश्वर से अभिन्न ही नही होता जा रहा है? उस चिदानन्द चैतन्य के साथ उत्तरोत्तर एकाकारता क्या उसे नही प्राप्त हो रही है, जहाँ मृत्यु द्वारा जीवन का वरण किया जाता है? हो सकता है कि ईसाई होने के कारण या समाज-दर्शन की ओर से वस्तु-विचार करने की आदत की वजह से हम पश्चिमी ईसाई उनकी दृष्टि की स्पष्टता पर मर्यादाये भी देख पाते हो! पर यह तो असदिग्ध है कि गाधी हमारे युग के महात्मा है। वह मुक्त मानवता के अवतार है, नवजाग्रत समाज के और विश्व के भविष्य के वह अग्रदूत है। और भावी विश्व का वह रूप अब और इस समय भी हमारे बीच जन्म-काल मे है। बस, यदि हम ही अपना कर्त्तव्य निभाना जान लेते!

अस्तु, हम जो ईसामसीह की छाया के नीचे खडे है, भक्ति-भाव से उस पुरुष-श्रेष्ठ को प्रणाम करते है। उसके सत्याग्रह-सघ के सच्चे सदस्यो को भी हमारा प्रणाम हो! उन्हीकी भाति हम भी ईश्वर की अमरपुरी के, अपनी स्वप्नपुरी के, नम्र नागरिक है।

: २५ :

ब्रिटिश कामनवेल्थ को गांधीजी की देन

ए० बेरीडेल कीथ, एम ए, डी लिट्, एल-एल डी, ई एफ बी ए

[एडिनबरा यूनिवर्सिटी]

हममे से कुछ के लिए महात्मा गाधी के जीवन की विशेषता [illegible] है कि उन्होंने ऐसे ससार मे जो अपने व्यावहारिक कार्यों मे आदर्श पर अमल करने का [illegible] है,

अन्त कर दिया। वह अड़चन यह थी कि नीची श्रेणी के समझे जाने वाले लोगो का हित इस बात मे नही है कि उनका भाग्य उन लोगो के हाथो मे सौपा जाय जिनके लिए ऐतरेय ब्राह्मण मे कुछ लोगो को शेष मनुष्य-समाज का सेवक होने और आवश्यकता पडने पर घरो से बाहर कर दिये जाने और मार डाले जानेतक का विधान किया गया है। महात्माजी ने अछूतो का जो पक्ष लिया और उससे हिन्दू-धर्म के सबसे अच्छे सिद्धान्तो को बढावा देने मे जो सफलता मिली, ये सब बाते उनके चरित्र की विशेषताये है और कालान्तर मे उनके चरित्र का सबसे प्रमुख अग रहेगी। ऐतिहासिक विकास के महत्वपूर्ण क्षणो का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी को इन बातो से शुद्ध सन्तोष मिलेगा।

सरकार के साथ अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त का इतिहास तो बडा विवाद-ग्रस्त है। साधारण मनुष्य की प्रकृति से जो आशा की जासकती है, इस सिद्धान्त पर अमल के लिए उससे कुछ अधिक योग्यता की आवश्यकता है, क्योकि मनुष्य तो स्वभाव से ही लडाका है, और जिन लोगो ने अहिंसा के सिद्धान्त के प्रचार का बीडा उठाया, वे खुद अपनी आदि भावनाओ को शिकार होगये। फिर भी इतिहास बतलाता है, और इससे कोई इन्कार नही कर सकता कि न जाने किस अगम्य मनोवैज्ञानिक कारण से ब्रिटिश सरकार जिन मागो की निरे युक्ति-बल द्वारा पेश किये जाने पर उपेक्षा करती रही, उन्हीको उसने तब झट स्वीकार कर लिया जब उन्हे मनवाने के लिए उसके शासन मे अड़चन खड़ी करदी गई। अत यदि महात्माजी ने ऐसी नीति अपनाई जिसमें हिंसात्मक कार्यो का खतरा था और जिनको अमल मे लाने पर वास्तव में ऐसा हुआ भी, तो भी यह मानना पडेगा कि वह उन ध्येयो को केवल इसी प्रकार प्राप्त कर सकते थे जिन्हे वह भारत के लिए प्राणप्रद समझते थे। भारत के प्रान्तो में प्रान्तीय स्वराज्य पर जो अमल हो रहा है, वह ब्रिटिश कामनवेल्थ के इतिहास की अत्यन्त विशिष्ट घटनाओ में से एक है। और यद्यपि जीवित और दिवगत महापुरुषो मे से और कइयो को भी इसका श्रेय है, पर महात्माजी के समान किसी दूसरे को नही। यह वस्तुत उनका एक स्थायी स्मारक है। सस्कृत-साहित्य की यह अद्वितीय विशेषता है कि वह ऐसे अर्थपूर्ण श्लोको से भरा पडा है, जिन्हे इस देव-भाषा को पढानेवाला प्रत्येक विद्यार्थी बचपन में ही याद कर लेता है। मालूम होता है कि ऐसा ही एक श्लोक बालक गाधी के मन पर अकित होगया था, क्योकि यह श्लोक उस आदर्श को प्रकट करता है जिसे पूरा करने के लिए उन्होने अपना सारा जीवन निछावर कर दिया। वह श्लोक यह है —

अय निज परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

(यह हमारा है और वह पराया ऐसा सवाल तो छोटे दिल के लोग किया करते है, उदार-चरित व्यक्ति तो सारी दुनिया को ही अपना कुटुम्ब मानते है ।)

: २६ :

विश्व-इतिहास में गांधीजी का स्थान

काउण्ट हरमन काइज़रलिंग

[डार्मस्टाट, जर्मनी]

हम ऐसे बड़े ज़बर्दस्त और चक्करदार संघर्षों के युग में रह रहे हैं जो मानव-इतिहास में शायद ही पहले कभी हुए हों। काल और अन्तरिक्ष पर विजय पा लेने से अब एक-दूसरे से अलग होने का विचार ही भ्रमपूर्ण जान पड़ता है। गत महायुद्ध से पूर्व संसार के सभी देशों में सचमुच अल्पसंख्यकों का, चाहे उन्होंने किसी सिद्धान्त का दावा क्यों न किया हो, राज्य था। परन्तु आज इसके विपरीत जनता जागी है, अथवा यों कहें कि सभी जगह बहुसंख्यकों के हाथ राजनैतिक और सामाजिक शक्ति आई है, जिससे वह ज़बर्दस्त शक्ति बन गई है, बल्कि बहुसंख्यकत्व आज के युग का एक खास गुण बन गया है। जिस प्रकार विद्युत-शक्ति विद्युत की दो विरोधी धाराओं (पॉज़ीटिव और निगेटिव) की आवश्यक सहचारिता द्वारा व्यक्त होती है (क्योंकि एक ध्रुव अपने विरोधी ध्रुव को प्रेरित ही नहीं, बल्कि पैदा भी करता है) उसी प्रकार जीवन भी उन परस्परविरोधी और संघर्षशील शक्तियों का सतत-अस्थिर सन्तुलन है, जिनमें से बहुत-सी ध्रुवत्व गुणवाली हैं। इसलिए ऊपर जिन परिवर्तनों की रूपरेखा बताई गई है, उन्होंने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जहाँ मनो-वैज्ञानिक और आध्यात्मिक धरातल पर अश्रुतपूर्व शक्तियोंवाली धाराएँ एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करती हैं। जितनी अधिक-से-अधिक शक्तिशाली विद्युद्धाराओं की हम कल्पना कर सकते हों उनसे इन धाराओं की तुलना की जा सकती है। संसार के खास-खास आन्दोलनों के साथ जो निश्चित विचार जोड़े गये हैं, उनका तो कुछ महत्त्व ही नहीं है और वे हमेशा भ्रम में डालनेवाले होते हैं। इसकी वजह पहली तो यह है कि उनमें से हरेक को बनानेवाले उपादान इतने अधिक होते हैं कि वे सब उस नाम के अन्तर्गत नहीं आते। दूसरे जैसाकि समस्त इतिहास बतलाता है, एक आन्दोलन के 'नाम और रूप' के पीछे जो वास्तविक शक्ति रहती है और उसके नाम व रूप में, कालान्तर में, समानता बहुत कम रह जाती है। बहुधा देखा गया है कि एक आन्दोलन एक खास उद्देश्य को लेकर चला। वह कालान्तर में जैसे जीवन प्रगति करता गया, किसी दूसरे रूप में ही बदल गया। इसलिए आज जितने संसारव्यापी आन्दोलन चल रहे हैं और उनके लिए जो नाम रक्खे गये हैं, मैं उनको ठीक नहीं मानता। संसार का कोई राष्ट्र जो प्रजातंत्र या समाजवाद या स्वतंत्रता या अनीश्वरता के नाम

पर लड़ाई छेड़ता है, उस समय जो कुछ वह कहता है उसका वही मतलब नहीं होता जिसका कि वह दावा करता है। वास्तव में तो सब-के-सब अंधेरे में उस उद्देश्य के लिए जो उन्हें अभी तक मालूम नहीं है, भटकते फिर रहे हैं। उस उद्देश्य की आख़िरी रूपरेखा उसी समय मालूम होगी जब कि वे न केवल गर्भावस्था (जिसमें कि हरेक इस समय है) से बाहर ही आ जायें, बल्कि उसके बाद काफी बढ़ भी जायें। आज मनुष्य जिन उद्देश्यों और ध्येयों के लिए लड़ रहे हैं, उनमें से कोई भी अन्तिम विजय प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि संसार इस समय संघर्ष के विशाल क्षेत्रों में, भयंकर शक्ति के केन्द्रों में, बँटा हुआ है। संघर्ष के विस्फोट के अनंतर जो कुछ बचे उसका एकानुरूप समन्वय ही अधिक स्थिर सन्तुलन पैदा कर सकता है। परन्तु यह समन्वय बड़ी दूर की बात है और उस तक पहुँचना बड़ा कठिन है।

इसके साथ ही एक कठिनाई और भी है, जिस पर विचार करना है, और वह यह कि यह बात आसानी से नहीं कही जा सकती कि इस समय जो बड़ी-बड़ी शक्तियाँ काम कर रही हैं, उनमें से कौनसी देर तक टिकी रहेगी और कौनसी शक्ति, जिसका इस समय अस्तित्व भी नहीं है, संसारव्यापी शक्ति बन उठेगी। लेकिन अगर हम यहाँ पर दो सिद्धान्तों को समझ लें, जिनकी महत्ता को अभीतक शायद ही समझा गया है तो वे हमें एक अधिक सच्ची भविष्यवाणी करने में सहायक हो सकेंगे। इनमें से पहला सिद्धान्त तो प्राचीन चीन की देन है। इसके अनुसार प्रत्येक ऐतिहासिक घटना स्थूल व प्रत्यक्ष रूप में घटित होने के पच्चीस वर्ष पूर्व ही घटित होजाती है। कल्पना यह है कि आज के बच्चे, न कि आज के वयस्क पुरुष, पच्चीस साल में दुनिया पर राज्य करेंगे, अत. उस भविष्य के रूप का अनुमान बच्चों के जीवन और भावना का ठीक अन्दाज़ लगाकर कर सकते हैं। दूसरा सिद्धान्त है ध्रुव नियम का सिद्धान्त (लॉ ऑव पोलेरिटी)।[1] इसके अनुसार प्रत्येक क्रियाशील शक्ति (यदि हम इसे ज्योतिष की भाषा में कहें तो) ध्रुवत्व गुणवाली विरोधी शक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़ती है। इसी प्रकार एक दृढ़ सिद्धान्त, अपनी दृढ़ता व शक्ति के कारण, एक विरोधी सिद्धान्त पैदा करना और उसे बल देता है।

एक आन्दोलन एक ही दिशा में जितने ज़ोरों से चलेगा उतनी ही तेजी से उसका विरोधी दिशा में आन्दोलन होने की सम्भावना है। मेरे विचार में केवल इसी दृष्टि से कुछ सम्भावना के साथ महात्मा गांधी की ऐतिहासिक महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस विशिष्ट दृष्टि से उनकी महत्ता वास्तव में बहुत बड़ी मालूम होगी

१ यह सिद्धान्त यह है कि एक भौतिक पदार्थ में दो विरोधी गुण होते हैं। जैसे कि चुम्बक लोहे में एक ओर लोहा खींचने का गुण और दूसरा लोहे को पीछे धकेलने का गुण। अगर एक प्रकार के गुणवाले दो ध्रुव एक-दूसरे के पास लाये जायगे तो वे एक-दूसरे को पीछे धकेलेंगे। —सम्पादक

है। पहले कोई भी युग हिंसा से इतना ओतप्रोत नहीं था जितना कि आज का हमारा युग है। क्योंकि आज सभी गोरी जातियोंवाले देशों के बहुसंख्यक जन किसी-न-किसी प्रकार हिंसा के पक्ष में है। इसी प्रकार काली जातियोंवाले देशों के बहुसंख्यक भी इसके पक्ष में है। इस सबको देखते हुए यह निश्चित ही है कि बल-प्रयोग से क्रान्ति करनेवाला यह आन्दोलन उस समय तक समाप्त नहीं होगा जबतक कि वह इस सम्बन्ध में इन सभी अवसरों व सम्भावित उपायों का प्रयोग न करले। पृथ्वी के किसी-न-किसी भाग में अनेकों शताब्दियों तक लम्बी-लम्बी लडाइयाँ होगी, संघर्ष ही संघर्ष होंगे। और क्योंकि ऐसा हो रहा है और होगा, इसीलिए अहिंसा के जाहिरा निषेधात्मक विचार द्वारा प्रेरित किया हुआ आन्दोलन प्राण-सदृश एवं ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त कर सकता है, जो कि उसे इससे भिन्न परिस्थितियों में न तो मिलती और न अभी तक कभी मिली ही है। ऐसा इसलिए भी होगा, क्योंकि अहिंसा के आदर्श और उसके विरोधी आदर्श में जो ध्रुव-संघर्ष है, वह एक ओर ध्रुवत्व (Polarity) अथवा ध्रुव-संघर्ष का द्योतक है। वह है साध्य बनाम साध्य की अपेक्षा साधन की प्रमुखता। और मेरे विचार से यही दूसरा ध्रुवत्व महात्माजी को एक प्रतीक के रूप में अमर बनाता है, फिर चाहे वस्तुस्थिति के धरातल पर उनके द्वारा आरम्भ किये गये आन्दोलन की सफलता कैसी ही क्यों न हो।

जेसुइट लोगों का सिद्धान्त है कि 'लक्ष्य पवित्र हो तो साधन सब उचित है।' (धर्माभिमानी पाश्चात्यों ने सचमुच ही 'रेड इण्डियनों' के साथ व्यवहार करने में इसी सिद्धान्त पर अमल किया था।) परन्तु जबतक यह सिद्धान्त चलता रहेगा उस समय तक संसार की स्थिति में वास्तविक एवं स्थायी रूप से सुधार होना दूर की बात है। विनाशकारी साधनों का प्रयोग बदले में प्रति-विनाशकारी साधनों को पैदा करेगा और इस तरह सिलसिले का अन्त न होगा। बुद्ध ने कहा ही है, "अगर द्वेष का जवाब द्वेष से ही दिया जाता रहेगा, तो द्वेष का अन्त फिर कहाँ है?"

संसार में आज बल-प्रयोग और आक्रमण द्वारा अपना प्रसार करने का ढंग चल रहा है। आज सभी शक्तिशाली जातियों ने उसी ढंग को अपना रक्खा है। और भी जैसे समय बीतता जायेगा, अधिकाधिक जातियाँ उस ढंग में पड़ेंगी। महात्मा गांधी ही इसके विपरीत-ध्रुव (Counter-pole) अथवा विरोधी धारा के जीवित प्रतीक हैं। जिस प्रकार शान्तिवादी चीन को आत्म-रक्षा के लिए आक्रामक बनना पड़ा है उसी प्रकार भारत में भी, जहाँकि और जातियों के साथ बहुत-सी लड़ाका और वीर जातियाँ भी रहती है, बहुत करके ऐसी ही घटनायें घटने की सम्भावना है। परन्तु महात्माजी तो पूर्वोक्त विरोधी-ध्रुव (अर्थात् अहिंसा) के सबसे स्पष्ट, महान्, विशुद्ध-हृदय अव्यभिचारी प्रतीक रहेंगे। वास्तव में उस दिशा में अभीतक वह अकेले ही एक विशाल जन-आन्दोलन के प्रतिनिधि है। अहिंसा वास्तव में हिन्दुओं के सबसे प्राचीन

आदर्शों से मिलती-जुलती है, प्राणभूत इसलिए कि भारत के हृदय में इनकी गहरी जड़ जमी हुई है। व्यक्तिगत रूप से मेरी यह पक्की धारणा है कि महात्माजी एक दूसरे कारण से भी एक बड़े ऐतिहासिक महापुरुष होंगे। वह दो विभिन्न युगों के सन्धि-द्वार पर खड़े हैं। एक ओर तो वह भारतीय ऋषियों के पुराने आदर्श के प्रतीक हैं और दूसरी ओर वह बिल्कुल आधुनिक जननायकों की श्रेणी में भी गणनीय हैं। इस सीमा तक तो उनका ऐतिहासिक महत्व जॉन बेपटिस्ट के समान ही है। एकांगी ऋषि का तो मेरी कल्पना में भावी मानव-समाज में, 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[1] की संज्ञा देता हूँ, वैसा कोई विशेष भाग अब न हो सकेगा जैसा भूत काल में था। भविष्य का लक्षण होगा, धर्म का और तेज का समन्वय। शौर्य का नम्रता के साथ वरण होगा।

मानव-समाज के भविष्य के उस पुरुष में पूर्णता होगी आध्यात्मिक और भौतिक शक्तियों का उसमें समन्वित संतुलन होगा। और यदि कोई जीवित है जिसका भाग उस भविष्यत् के पूर्ण पुरुष के निर्माण और आह्वान में सबसे अधिक गिना जायगा तो वह महाव्यक्ति है, युग-सन्धि का अधिवासी गांधी।

: २७ :

जन्मोत्सव पर बधाई

जार्ज लैन्सबरी

[मेम्बर पार्लमेण्ट, लन्दन]

संसार के प्रत्येक भाग के उन करोड़ों मनुष्यों का साथ देने में मुझे प्रसन्नता होती है, जो अक्टूबर १९३९ में महात्मा गांधी के जन्मदिन के वार्षिकोत्सव में [illegible] की कामना कर रहे हैं।

उन्होंने एक बड़े [illegible]

१ लेखक की प्रमुख पुस्तक [illegible] का दूसरा अध्याय देखिए।

: २८ :

गांधीजी की श्रद्धा और उनका प्रभाव

प्रोफेसर जान मैकमरे, एम. ए.

[यूनिवर्सिटी कॉलेज, लन्दन]

पिछली सदी में एक अंग्रेज कवि ने यह यह लिखना उचित समझा कि—
"पूर्व पूर्व है, पश्चिम पश्चिम, इन दोनो का मिलन कहाँ ?"

जिस समय ये पक्तियाँ लिखी गई थी उस समय ये ऐसा मत प्रकट करती थी, जिसपर गम्भीरतापूर्वक चर्चा भी की जा सकती थी। आज तो यह मत निश्चितरूप से इतना अर्थ और तर्क-हीन है कि यह पद एक खासा मजाक बन गया है। मानवजाति के द्रुत गति से एक इकट्ठे होते जाने में बहुत-कुछ वजह तो यातायात के साधनो का विकास है। इसके कारण इतनी सुगमता होगई है कि एक देश के पुरुष को सब देशों के लोग आसानी से जान लेते है और वह सहज ही अतर्राष्ट्रीय ख्याति का बन जाता है। स्वभावत प्रश्न और विस्मय होता है कि इन आधुनिक ख्यातियो में कितनी समय की कसौटी पर ठहरेंगी और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त महापुरुषो मे से कितने भावी पीढी के मन और हृदय पर ऐतिहासिक महापुरुषो के रूप में अकित रहेंगे ? शायद ही किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में यह बात निश्चित तौर पर कही जा सके। पर एक व्यक्ति ऐसा है जिसके बारे मे इस सम्बन्ध में जरा-सी भी शका करनी असम्भव है। वह व्यक्ति महात्मा गाधी है।

मनुष्य की महानता की दिशायें और दशायें अनेक है। पर बडप्पन का स्थायित्व गहराई में है। इतिहास के महापुरुष वे व्यक्ति है जिनका ससार के लिए महत्त्व मानवीय व्यक्तित्व की गहराई मे उत्पन्न होता है। ऐसे आदमी की एक खासियत यह मालूम होती है कि लोग उसका भिन्न-भिन्न और आपस मे एक-दूसरे से मेल न खानेवाला अर्थ लगाते है। सन्त सुकरात की महत्ता इस बात से प्रकट होती है कि उसके मरने के एक सदी बाद यूनान मे बहुत-से दार्शनिक आम्नाय पैदा हो गये, जिनमें आपस में एक-दूसरे से होड रहती थी और प्रत्येक सुकरात की सच्ची शिक्षाओ का यथावत् प्रचार करने का दावा करता था। ये महापुरुष, ध्यान की बात है, न तो पुस्तकों के लेखक होते है और न, शब्द के साधारण अर्थ में, बडे कामकाजी और कर्मठ ही होते हैं। पर इन दोनो क्षेत्रो मे दूसरो के द्वारा इनका व्यक्तीकरण हुआ करता है। दूसरो से उनके व्यक्ति का जो ससर्ग होता है वह स्वय एक विधायक शक्ति होती है। उनके इस

: २६ :

योग-युक्त जीवन की आवश्यकता

डान साल्वेडोर डी मेड्रियागा, एम. ए.

[लन्दन]

मानव-जाति किसी दिन हमारे युग को ऐसे युग के रूप में देखेगी, जिसमें मानव कलाओं में सबसे कठिन कला अर्थात् शासनकला (और मनुष्य द्वारा प्रतिपादित यह अन्तिम कला होगी) बर्बरता से ऊँची उठनी शुरू हुई। हमारी आँखों के सामने और हमारे पीछे राज्य-शासन की कला बर्बरता से परिपूर्ण है। अगर मुझे विरोधाभास की भाषा का प्रयोग करने दिया जाय तो मैं कहूँगा कि अभी तो लोगों में राज्य-शासन की कला का विचार ही नहीं बना है। शासनकला का उद्देश्य तो यह है कि समाज और व्यक्ति के जीवन की धाराओं में सन्तुलन और समत्व हो। शासन-कला का जो विचार इस समय लोगों के मन में है वह एक अपूर्ण व अपरिपक्व विचार है।

आदि-जातियों की परम्परायें एवं प्रथायें, उनके मुखियाओं के अत्याचारी कार्य, एशिया के पुराने सामन्तों का गौरव, रोम के सम्राटों की नीललोहित (अर्थात् कालिमा लिये हुए) प्रतिभा और रक्तमय आतंक, रोम के पोपों का वर देनेवाला और साथ ही छीन लेने वाला हाथ, मध्ययुग के वीरतापूर्ण और जघन्य युद्ध, साम्राज्य-निर्माताओं और विजेताओं के साहसपूर्ण और जघन्य साहसिक कार्य, आदेश से अनुमति और अनुमति से विवेक तक कानून का क्रमागत विकास, उद्योग-धन्धों के गृह-युद्ध और उनके हड़ताल और तालाबन्दी के उग्र और तैयार साधन जिनसे समाज के एक कोने में एक छोटेसे संघर्ष को हल करने में सारा समाज क्रियाहीन होजाता है, राष्ट्र-संघ का उत्थान एवं प्रथम (पर अन्तिम नहीं) पतन, मार्क्सवाद का उत्थान एवं प्रथम (पर अन्तिम नहीं) पतन, यंत्ररूप अत्याचार के प्रतीक फासिज्म एवं नाजीवाद का उद्भव— भविष्य की दृष्टि से देखने पर ये सब संघर्ष तथा अन्य अनेक, जिन्हें दिमाग पकड़ नहीं सका है, मनुष्य-समाज की उसी चिर-समस्या को सुलझाने के लिए प्रस्तुत किये गये अस्थायी और जल्दी मिटजानेवाले स्वरूप हैं, जो काल (समय) और स्थान (विभिन्न देशों) की परिस्थितियों और निकट आवश्यकताओं के अनुसार बनाये गये हैं। वह समस्या है मानव-समाज व मनुष्य की जीवन-धाराओं में सन्तुलन पैदा करने की समस्या।

मनुष्य अपनी त्वचा को अपने शरीर की सीमा समझ अपने को स्वगासित ही

नहीं, बल्कि स्वतन्त्र प्राणी भी समझता है। पूर्वी देशों के निवासियों की अपेक्षा हम यूरोपियन इस भ्रम में ज्यादा पड़े हुए हैं। परन्तु सभी व्यक्ति कम या अधिक मात्रा में एवं किसी-न-किसी रूप में अपने को स्वतन्त्र घटक समझते हैं। परन्तु थोड़ा भी विचार बताने के लिए पर्याप्त है कि केवल शरीर-शास्त्र की दृष्टि से भी मनुष्य घूमने-फिरने या गमन करनेवाली प्रवृत्तियोंवाला वृक्ष[1] है, जिसने अपनी जड़ें और मिट्टी समेटकर अपने पेट में रखली है ताकि वह चल फिर सके।

जिस प्रकार मूंगे की द्वीप-माला से अथवा मधु-मक्षिका की मक्खी के झुंड से पृथक् कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार शरीर-शास्त्रीय दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य किसी दृष्टिकोण से व्यक्ति की मनुष्य से (अधिक स्पष्ट शब्दों में मनुष्य की मानव-समाज से) अलग कल्पना ही नहीं की जा सकती। वास्तव में मनुष्य समाज या समूह का एक घटक (unit) है।

परन्तु मुख्य प्रश्न (समस्या) तो यह है कि इस समाज या समूह के दुहेरे उद्देश्य या ध्येय हैं। (एक तो अपने ध्येय की प्राप्ति और साधना, दूसरा समाज के ध्येय व लक्ष्य की प्राप्ति और साधना) मधुमक्खियों में तो मधुमक्खियों का व्यक्तिगत ध्येय तथा उसे कार्य में प्रवृत्त करनेवाली प्रेरक भावना मधुमक्खी के झुंड के ध्येय से पृथक् नहीं है, परन्तु हमारा विश्वास है (फिर चाहे वह ठीक हो या ग़लत, यह अलग और महत्त्वहीन बात है) कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत चरम ध्येय होता है। इसी कारण मनुष्य का जीवन सचमुच एक विराट समस्या बन जाता है। यदि हमें केवल समाज या समूह के हितों का ही विचार करना पड़े तो उसका हल यद्यपि कठिन अवश्य होगा, परन्तु वह समस्या, यों कहें कि, एकमुखी ही होगी। किन्तु जब समूह के हितों और ध्येयों के साथ हमें व्यक्ति के हितों और ध्येयों का भी ध्यान रखना पड़ता है तब तो हमारी कठिनाई दोआकार बन जाती है।

संक्षेप में सामूहिक जीवन की समस्या की दो धारायें हैं—

व्यक्ति की धारा जिसको वर्षों में बतायें तो वह ७० वर्ष की होगी।

समाज या समूह की धारा जिसे शताब्दियों द्वारा ही मापा जा सकता है।

इसके साथ ही चरमध्येय के ध्रुव भी दो हैं—

पहला तो व्यक्ति का जो अपने को ही अपना अन्तिम ध्येय समझता है और है भी।

दूसरा समूह या समाज का जो अपने में अपना अंतिम ध्येय मानता है।

इस व्यवस्था की उलझनें यहीं समाप्त नहीं हो जातीं क्योंकि इनके अतिरिक्त कुछ समूह और भी हैं जिनके सदस्य हम हैं इनमें से एक (यानी राष्ट्र) तो आज

[1] कुछ पश्चिमी दार्शनिकों का मत है कि मनुष्य वास्तव में वृक्ष है। भेद केवल इतना है कि वृक्ष एक जगह स्थिर रहता है और चल-फिर नहीं सकता, परन्तु मनुष्य चल-फिर सकता है। —अनुवादक

नहीं, बल्कि स्वतन्त्र प्राणी भी समझता है। पूर्वी देशों के निवासियों की अपेक्षा हम यूरोपियन इस भ्रम में ज्यादा पड़े हुए हैं। परन्तु सभी व्यक्ति कम या अधिक मात्रा में एवं किसी-न-किसी रूप में अपने को स्वतन्त्र घटक समझते हैं। परन्तु थोड़ा भी विचार बताने के लिए पर्याप्त है कि केवल शरीर-शास्त्र की दृष्टि से भी मनुष्य घूमने-फिरने या गमन करनेवाली प्रवृत्तियोंवाला वृक्ष[1] है, जिसने अपनी जड़ें और मिट्टी समेटकर अपने पेट में रख ली है ताकि वह चल फिर सके।

जिस प्रकार मूंगे की द्वीप-माला से अथवा मधुमक्षिका की मक्खी के झुंड से पृथक् कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार शरीर-शास्त्रीय दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य किसी दृष्टिकोण से व्यक्ति की मनुष्य से (अधिक स्पष्ट शब्दों में मनुष्य की मानव-समाज से) अलग कल्पना ही नहीं की जा सकती। वास्तव में मनुष्य समाज या समूह का एक घटक (unit) है।

परन्तु मुख्य प्रश्न (समस्या) तो यह है कि इस समाज या समूह के दुहेरे उद्देश्य या ध्येय हैं। (एक तो अपने ध्येय की प्राप्ति और साधना, दूसरा समाज के ध्येय व लक्ष्य की प्राप्ति और साधना) मधुमक्खियों में तो मधुमक्खियों का व्यक्तिगत ध्येय तथा उसे कार्य में प्रवृत्त करनेवाली प्रेरक भावना मधुमक्खी के झुंड के ध्येय से पृथक् नहीं है, परन्तु हमारा विश्वास है (फिर चाहे वह ठीक हो या ग़लत, यह अलग और महत्त्वहीन बात है) कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत चरम ध्येय होता है। इसी कारण मनुष्य का जीवन सचमुच एक विराट समस्या बन जाता है। यदि हमें केवल समाज या समूह के हितों का ही विचार करना पड़े तो उसका हल यद्यपि कठिन अवश्य होगा, परन्तु वह समस्या, यों कहें कि, एकमुखी ही होगी। किन्तु जब समूह के हितों और ध्येयों के साथ हमें व्यक्ति के हितों और ध्येयों का भी ध्यान रखना पड़ता है तब तो हमारी कठिनाई वर्गाकार बढ़ जाती है।

संक्षेप में सामूहिक जीवन की समस्या की दो धारायें है—

व्यक्ति की धारा जिसको वर्षों में नापें तो वह ८० वर्ष की होगी।

समाज या समूह की धारा जिसे शताब्दियों द्वारा ही नापा जा सकता है।

इसके साथ ही चरमध्येय के ध्रुव भी दो है—

पहला तो व्यक्ति का जो अपनेको ही अपना अन्तिम ध्येय समझता है और है भी।

दूसरा समूह या समाज का जो अपने में अपना अन्तिम ध्येय मानता है।

इस व्यवस्था की उलझनें यहीं समाप्त नहीं हो जातीं, क्योंकि इनके अतिरिक्त कुछ समूह और भी हैं जिनके मनुष्य अंग हैं इनमें से एक (यानी राष्ट्र) जो आज

१ कुछ पश्चिमी दार्शनिकों का मत है कि मनुष्य वास्तव में वृक्ष है। भेद केवल इतना है कि वृक्ष एक जगह स्थिर रहता है और चल-फिर नहीं सकता, परन्तु मनुष्य चल-फिर सकता है। —अनुवादक

इतना जबर्दस्त होगया है कि वह मनुष्य को कुचले डाल रहा है। राष्ट्र मानव-समुदाय का वह एकत्र रूप है जिसमें मनुष्यो को अधिक-से-अधिक प्राण-शक्ति मिली है। उसकी जीवन-धारा शताब्दियो में मापी जा सकती है। मानव-समुदाय के जितने रूप है उनमें यह रूप (राष्ट्र) सबसे ज्यादा देर तक जीनेवाला (चिरायु) हो, सो नहीं है। चिरायु तो वस्तुत मानव-जाति—इस पृथ्वी पर बसनेवाले सभी मनुष्यो का समाज—ही है। और क्योकि यह (मानवजाति) सभी काल और सभी स्थानो में व्याप्त है, अत. यही मनुष्य-समाज का सबसे सुस्पष्ट रूप है। इस प्रकार जीवन-धाराओ और चरम-ध्येयो की हमारी सरणी इस प्रकार बनती है :—

धारायें	चरम-ध्येय
मनुष्य	मनुष्य
राष्ट्र-विशेष	राष्ट्र-विशेष
मानव-जाति	मानव-जाति

सारा इतिहास सन्तुलन के लिए इन दोनो का सघर्ष ही है। स्वतन्त्रता की पताका के नीचे जितने गृह-युद्ध और क्रान्तियाँ हुईं वे मनुष्य की धारा या गति और उसके चरम-ध्येय में सन्तुलन प्राप्त करने के लिए हुईं, तानाशाही (डिक्टेटरशिप) के झडे के नीचे जो प्रतिक्रियायें और अत्याचार हो रहे है, वे राष्ट्र की गति और चरम-ध्येय में सन्तुलन के लिए और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध भी विभिन्न देशो के गति-प्रवाहो और ध्येयो में सन्तुलन के लिए ही हुए है। पर इन सबके साथ एक और सघर्ष निरन्तर और अनवरत चल रहा है। वह श्रेष्ठतर शान्ति प्राप्त करने और आध्यात्मिक अथवा भौतिक एकता अथवा दोनो को प्राप्त करने के लिए चल रहा है। यह मानव-समाज के गति-प्रवाह और ध्येय में सन्तुलन के लिए है।

अब प्रश्न यह है कि किसी भी युग की अपेक्षा आज यह संघर्ष ही सबसे विकट क्यो होगया है ?

इसका उत्तर स्पष्टत इस वस्तुस्थिति में है कि यद्यपि हमारी सरणी की तीसरी वस्तु, यानी मानव-जाति इतिहास में पहले किसी भी समय की अपेक्षा आज के युग में तीव्र गति से प्रमुख व महत्वपूर्ण स्थान पा गई है, पर (इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए) वह आध्यात्मिक मार्ग की अपेक्षा भौतिक मार्ग पर ही ज्यादा वेग से अग्रसर हुई है।

मानव-जाति ने पहले एकता की ओर अपनी प्रगति के लिए आध्यात्मिक या धर्म का मार्ग ग्रहण किया, परन्तु उसका परिणाम भयकर और विनाशकारी हुआ। धर्म के अत्यन्त पवित्र मन्त्रो (सिद्धान्तो) के विपर्यास से प्रत्येक स्थान में धर्म के कारण सघर्ष, कलह, फूट और रक्तपात हुआ। तब मानव-जाति ने स्वतन्त्र विचार और विवेक-बुद्धि द्वारा प्रत्येक प्रश्न का निर्णय कर लेने की पद्धति से जिसे उन्नीसवीं

साम्यवादी हो या फासिस्ट, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता) और न कोई विश्ववाद ही अपने में इस समस्या को हल कर सकते हैं। मानव-जाति अपनी वर्तमान वर्ग अवस्था से उस समय तक मुक्त न होगी जबतक कि संसार के अधिकांश देशों में अधिकांश व्यक्ति इस बात को अनुभव न करले कि हमारे उदारतावाद, हमारे साम्य-फासिस्ट-सत्तावाद और विश्ववाद, सबको एक उस विराट् कल्पना में लीन होजाना है कि जिसका मूल समस्त मानव-जाति के सजीव ऐक्य में होगा।

अत. आज की हमारी समस्या का सार और समाधान करने में कम और होने में अधिक है। प्रवृत्ति की न होकर वह सत् की है। कुछ-का-कुछ करें, यह जरूरत नहीं है। स्वय हम कुछ-के-कुछ होजावे, जरूरी यह है। यदि हमें संसार को बदलना है—और यह बदलेगा अवश्य, अन्यथा यह और इसके साथ हम भी समाप्त हो जायेंगे—तो हमें इसी प्रकार से स्वय विकास आरम्भ करना होगा।

इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए दो बातें आवश्यक हैं। एक तो यह कि मनुष्य-समाज के प्रमुख पुरुषों के मन में इस विकास की धारा स्पष्ट हो और उन्हें इसका ज्ञान हो। दूसरे, इनकी भावना मनुष्य-जीवन के विस्तृत क्षेत्रों में व्यापक बने। पहली क्रिया प्रमुखत. धीमी पर कोरी बौद्धिक नहीं है। सम्पूर्ण सभ्य संसार में जिसमें एकतन्त्री (टोटेलिटेरियन) देश भी शामिल हैं, हम यह परिवर्तन देख रहे हैं। दूसरी क्रिया अधिक कठिन है, क्योंकि एक जीवित सन्देश जीवन द्वारा ही फैलाया जा सकता है। अतर्यामी ऐक्य के साथ योग जिसने साधा है, वही जीवन लोगों में अतर्गत ऐक्य की निष्ठा जगा सकता है। ऐसा पुरुष है गाधी। जीवन उनका योगयुक्त है। यही कारण कि शायद सबसे सम्पूर्ण भाव में वह आज के युग के लिए काल-पुरुष है। क्योंकि वह कर्म का अथवा विचार का उतना नहीं, जितना जीवन का साधक है।

: ३० :

अहिंसा की शक्ति

कुमारी ईथेल मैनिन

[लन्दन]

महात्मा गाधी को मैं यह छोटी-सी श्रद्धाञ्जलि बड़ी नम्रता से भेंट कर रही हूँ। मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ, पर मैं शान्तिवादिनी हूँ। और मुझे विश्वास है कि उनका अहिंसात्मक प्रतिरोध का सिद्धान्त ही संसार की शान्ति और युद्ध की समस्या का एकमात्र व्यावहारिक हल और सामाजिक सघर्ष के समाधान का एकमात्र युक्ति-युक्त उपाय है। १९३० में सविनय-भग आन्दोलन द्वारा उन्होंने

संसार के सामने अहिंसा की शक्ति प्रत्यक्ष कर दिखाई। यह उस संसार के सामने एक महान् उदाहरण था, जो तलवार की शक्ति के सिवाय और किसी शक्ति को मानता ही नहीं, और प्रत्यक्षतः यह बात स्वीकार करने में असमर्थ है कि हिंसा से हिंसा की समाप्ति नहीं, बल्कि वृद्धि होती है।

मैं यह बखूबी जानती हूँ कि अहिंसा का सिद्धान्त महात्माजी ने नया नहीं निकाला। वह तो एक धार्मिक मन्तव्य के रूप में भारत में सदियों से मौजूद था। लेकिन जैसा कि श्री ब्रेल्सफोर्ड ने कहा है, उन्होंने 'पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा और आचरण की लहर के विरोध में' उसकी पुनः स्थापना की और इस प्रकार अपने देशवासियों के नेता के रूप में उनकी नैतिक शक्ति अत्यन्त प्रभावशाली हो उठी। १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलनों में उन्होंने अपने लाखों-करोड़ों अनुयायियों को एक राजनैतिक विधि ही नहीं, बल्कि एक गहरी धार्मिक श्रद्धा भी दी, जैसी कि ईसामसीह ने पहले के उन ईसाइयों को दी थी, जो 'सत्य' की अपनी ईश्वर-प्राप्त व्याख्या की खातिर शहीद हो गये।

उन्होंने भारत की जनता को बन्दूकों और मशीनगनों की शक्ति नहीं दी जिनका प्रयोग उनके दमनकारी करते थे, बल्कि वह शक्ति दी जो जनता के व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर्निहित है, जो युद्धों से पीड़ित इस संसार को अभी प्राप्त करनी है और जिसका यदि पूर्णता के साथ उपयोग किया जाय तो वह युद्धों को असम्भव बना सकती है। राजनीतिज्ञ और युद्ध-प्रेमी लोग, अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए हिंसात्मक साधनों का प्रचार करते समय एक बात को भूल जाते हैं और वह यह कि मनुष्य का स्वतन्त्रता में से विश्वास उठ नहीं सकता। संक्षेप में, बन्दूक और मशीनगनें मनुष्य की या राष्ट्र की आत्मा को नष्ट नहीं कर सकतीं। किसी राष्ट्र को कुचल कर गुलाम बनाया जा सकता है परन्तु 'शक्ति के बूटों की ठोकरें स्वतन्त्रता की [illegible] को निर्मूल नहीं कर सकतीं। वे कुछ समय के लिए उसे आँखों से ओझल कर सकती हैं [illegible] छिपाकर रख सकती हैं पर वह अंधेरे में भी चुपचाप जलती रहती और पुनः शक्ति प्राप्त कर लेती है [illegible]

[illegible]

[illegible]

: २१ :

गांधीजी और बालक

डॉ० मेरिया मॉन्टीसरी, एम डी., डी. लिट्

[लन्दन]

महात्मा गाधी के निकट रहनेवाले उन्हें जिस रूप में देखते है, उससे बिल्कुल भिन्न रूप में हम यूरोपियन उन्हें देखते है। हम जब रात को एक तारा देखते है, तो वह हमें एक छोटी-सी चमकदार टिमटिमाती हुई-सी चीज़ मालूम देती है, लेकिन अगर किसी तरह हम उसके पास जा सकें तो वह छोटी या ठोस चीज़ मालूम न होगी, बल्कि भौतिक पदार्थ से हीन एकरग और ज्योति का एक पुज दिखाई देगा।

हम यूरोपियनो को भी गाधी एक मनुष्य-सा ही—एक बहुत छोटा मनुष्य जो सिर्फ एक लगोटी लगाये रहता है—लगता है। यूरोप के कोने-कोने में एक-एक बच्चा उसे जानता है। जब भी कोई आदमी उसका चित्र देख लेता है, वह फौरन अपनी भाषा म चिल्ला उठता है—"यह गाधी है।"

पर हम यूरोपियन, जो उससे बहुत दूर और उससे बिलकुल भिन्न एक सभ्यता में रहते है, उसके बारे में क्या खयाल करते है ? यूरोपियन उसे शान्ति का उपदेश देने वाले एक मनुष्य के रूप मे जानते है। परन्तु वह यूरोप के शान्तिवादियो से भिन्न है। हमारे यूरोपियन शान्तिवादी बहस करते और इधर-उधर हडबडाये हुए भागते फिरते है। उन्हे बहुत-सी सभाओ में भाग लेना होता है और पत्रो में लेख लिखने होते है। परन्तु गाधीजी कभी उतावले नही होजाते। कभी-कभी वह जेल में रहते हैं, जहांकि वह बहुत कम बोलते और बहुत कम खाते है। लेकिन फिर भी भारत के लाखो-करोडो आदमी उनके पीछे-पीछे चलते है, क्योकि वे उनके अन्त करण को पहचानते है।

उनकी आत्मा उस महान् शक्ति के समान है, जिसमें मनुष्यो का एकीकरण करने की शक्ति है, क्योकि वह तो उनकी आन्तरिक अनुभूतियो पर अपना असर डालती है और उन्हे एक दूसरे के निकट खीचती है। यह रहस्यमय और चमत्कारक शक्ति 'प्रेम' कहलाती है। प्रेम ही वह शक्ति है, जो मनुष्यमात्र को वास्तव में एक कर सकती है। बाहरी परिस्थितियो और भौतिक हितो से बाध्य होकर मनुष्य परस्पर सगठित होते है, पर उनमें प्रेम नही होता और बिना प्रेम के सगठन स्थिर नही रहता और खतरे की ओर जाता है। मनुष्यो को दोनो प्रकार से सगठित होना चाहिए—एक तो आध्यात्मिक शक्ति से जो एक दूसरे की आत्मा को अपनी ओर खीचे और दूसरे भौतिक सगठन द्वारा।

कुछ साल पहले जब गांधीजी यूरोप गये थे तब भारत लौटते समय कुछ दिनों के लिए रोम ठहरे थे। इसका मेरे हृदय पर बड़ा गहरा असर हुआ। मैंने देखा कि गांधीजी में से एक अगम्य शक्ति प्रस्फुटित होती थी। जब वह लन्दन में थे, मेरे स्कूल के बालकों ने उनके सम्मानार्थ उनका स्वागत किया। जब वह फर्श पर बैठे हुए तकली कात रहे थे, सब बच्चे उनके चारों ओर बड़ी शान्ति के साथ बैठे रहे। वयस्क पुरुष भी इस स्वागत के समय, जिसे हम कभी नहीं भूल सकते, चुपचाप और स्थिर बैठे हुए थे। हम सब एक साथ थे। यही हमारे लिए काफी था। नाचने, गाने या भाषण देने की जरूरत ही नहीं थी।

लेकिन मुझपर तो उस समय बहुत प्रभाव पड़ा जब मैंने कुछ कुलीन महिलाओं को सवेरे साढ़े चार बजे महात्माजी को प्रार्थना करते देखने और उनके साथ प्रार्थना करने के लिए जाते देखा। एक दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना यह हुई कि रोम-प्रवास के दिनों में वह एक गांव के एकान्त मकान में ठहरे हुए थे। एक दिन सवेरे एक युवती पैदल चलती हुई वहाँ आई। वह गांधीजी से एकान्त में बातचीत करना चाहती थी। वह थी इटली के सम्राट् की सबसे छोटी पुत्री राजकुमारी मेरिया!

हमें इस आध्यात्मिक आकर्षण के विषय में अवश्य विचार करना चाहिए। यही शक्ति है, जो मानवता की रक्षा कर सकती है। केवल भौतिक हितों से बंधे रहने के बजाय हमें परस्पर इस आकर्षण का अनुभव करना सीखना चाहिए। पर यह हम सीखें कैसे?

जिस तरह सारे संसार में प्रकाश की सर्वव्यापी किरणें मौजूद हैं, उसी तरह हमारे चारों ओर यह आत्मिक शक्तियाँ भी विद्यमान रहती हैं। लेकिन ये सर्वव्यापी किरणें खास-खास यन्त्रों द्वारा ही जिनके द्वारा कि हम उन्हें देख सकते हैं, केन्द्रित की जा सकती हैं। पर ये यन्त्र इतने दुर्लभ नहीं हैं जैसा कि हम ख्याल करते हैं। ये यन्त्र बच्चे हैं! जिस प्रकार हम [illegible] में [illegible] प्रकार के [illegible] छोटे-से चमकदार बिन्दु के रूप में ही [illegible]

[illegible]

[illegible]

महात्मा गाधी एक 'प्यूरिटन'[१] है, जिन्हे जैसाकि उन्होने हमसे कहा है, 'ओरिजिनल सिन'[२] (मूल पाप) के सिद्धान्त की सचाई में पूरा-पूरा विश्वास है। अन्य सब तपस्वियो के समान वह भी मनुष्य-जीवन को त्यागो की एक शृखला मानते है, ईश्वर का यश प्रकट करने के लिए धन्यवादपूर्वक सासारिक सुखो का उपभोग करने की वस्तु नही। उनके विचार मे स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी काम-वासना ही सारी बुराइयो की जड है। महात्मा गाधी के एतद्विषयक विचार तथा ब्रह्मचर्य पर लिखे गये उनके अध्यायों के विषय में यही कहा जा सकता है कि वे वर्तमान मनोविज्ञान और चिकित्सा-शास्त्र के सिद्धान्तो के इतने विरोधी है कि जिसकी आज के जमाने में कल्पना ही नही की जा सकती। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियो को वह बिलकुल शर्मनाक समझते है और इनका उनकी राय में एक ही उपचार है। वह है उनका दमन और अत्यधिक दमन। उनका कहना है कि "अपरिग्रह की तो कोई सीमा ही नही है।" और वह स्वय इस बात से बहुत दुखी है कि वह अभीतक दुग्ध-पान, जिसे वह ब्रह्मचर्यव्रत के पालन के लिए बहुत हानिकर वस्तु समझते है, नही छोड सके। उनके सिद्धातानुसार ताजे फल और सूखी मेवा ही "ब्रह्मचारी का आदर्श भोजन" है। परन्तु जितना अधिक-से-अधिक सहन किया जासके, उतना उपवास इन सबमे अच्छा है।

यह कोई आश्चर्य की बात न होती यदि जनता की पहुँच मे बहुत दूर के इन आदर्शो के कारण महात्माजी भी ईसाई सन्तो के समान असहिष्णु और कठोर बन जाते। लेकिन इस तरह की कोई बात नही हुई। सयम के सभी कठिन अभ्यासो के बावजूद, जिनसे उन्होने जीवन को अपने ही लिए एक कठिन वस्तु बना लिया है, उनके होते हुए भी चरित्र में वह मृदुता और प्रेम है जिसने उन्हे इतनी भारी शक्ति दी है। सत्य के पवित्र दर्शन करने की पिपासा के होते हुए भी उनका सबसे उत्तम गुण—मानवसमाज के प्रति उनका सच्चा प्रेम है। एक ओर उन्हे निर्दयता और अत्याचार से घृणा है तो दूसरी ओर बीमारी और गदगी से। तप की भावना मे ही उन्होने कभी किसी नाच-घर में पैर नही रक्खा। उनके जीवन के प्रारम्भिक दिनो की कहानी मे हम उन्हे तरह-तरह के नये तजुरबो और मौज की जिन्दगी से पीछे हटता हुआ पाते है।

इग्लैण्ड मे विद्यार्थीजीवन मे ही उनकी अपने सनातन धर्म मे श्रद्धा और भक्ति बढी और उन्होने वहीं पहलेपहल सर एडविन आनन्ड के अनुवाद द्वारा गीता का परिचय प्राप्त किया।

१ रानी एलिजबेथ के समय का एक ब्रिटिश सम्प्रदाय, जो राजनीति में भी जीवन की शुद्धता तथा धार्मिकता पर जोर देता था।

२ बाइबिल में आदम को मानव-जाति का आदिपितामह मानकर कहा गया है कि वह पापी था, और उसके पाप का अश पितृ-परम्परा से मनुष्य-मात्र में आ गया है। इस कारण मनुष्य-प्रकृति स्वभाव से ही पतित है। इसी को 'ओरिजिनल सिन' कहते है।

अब भी जब मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ एक बहुत महत्वपूर्ण घटना घटी है। महात्मा गांधी अब एक नये युग में प्रवेश कर रहे जान पड़ते हैं।

हाल ही में महात्मा गांधी ने लिखा है कि राजकोट के अनुभवों के परिणाम-स्वरूप उन्हें नया प्रकाश मिला है। वह नई रोशनी क्या है, इसका स्वरूप अब बताया गया है और वह बहुत महत्वपूर्ण है। महात्मा गांधी का पिछले वर्षों में हिन्दू-जनता पर बहुत प्रभाव रहा है और भारत के वर्तमान इतिहास के निर्माण में उनका जो भाग है, उसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता। कुछ वर्षों के व्यवधान से उन्होंने दो सविनय आज्ञाभंग आन्दोलनों को जन्म दिया, जिन्होंने देश में उथल-पुथल मचा दी और अधिकारियों के लिए भारी चिन्ता पैदा कर दी। इसके अलावा इन आन्दोलनों ने देश पर अपने प्रभाव की वह धारायें छोड़ी जो उनके समाप्त हो जाने के बाद भी आजतक काम कर रही हैं। अब महात्मा गांधी के सिद्धान्त और उनकी शिक्षाओं में—इस बड़ी अवस्था में जबकि उनका कांग्रेस और जनता के मन पर एकच्छत्र अधिकार प्रत्यक्ष गोचर हुआ है—मौलिक परिवर्तन होना वस्तुतः एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका प्रभाव भारत पर ही नहीं संसार में अन्यत्र भी पड़ेगा, क्योंकि महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त व्यक्ति हैं और उनके अनुयायी सारे संसार में हैं।

दूसरे लोगों के साथ मैंने भी अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त के आध्यात्मिक दावे की आलोचना की है, क्योंकि वह शारीरिक और मानसिक हिंसा के बीच एक आध्यात्मिक भेद मानता है। यह अहिंसात्मक असहयोग निरस्त्र मनुष्यों की लड़ाई का ही एक तरीका है। बहिष्कार व हड़ताल से, जो इस असहयोग के अंग भी हैं, इनकी तुलना की जा सकती है। इसके उपाय की सफलता या असफलता दो बातों पर निर्भर है। एक तो अपने और विरोधी के संगठन का बल दूसरे संघर्ष के मुख्य उद्देश्य की महत्ता। लेकिन यह निश्चित है कि यह उपाय सशस्त्र-विद्रोह या युद्ध से अधिक आध्यात्मिक हथियार नहीं है। ईसाइयों के लिए तो यह बात साफ ही है कि उनके अनुसार पाप तो मन के विचार और हृदय की भावनाओं ही में है। कार्य तो उनकी व्यञ्जना-मात्र है। अहिंसात्मक आन्दोलन का बल न घटने देने के लिए स्वयं महात्मा गांधी ने हिंसामय विचार धारा का उल्लेख किया, अंग्रेजों की निन्दा की और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रचार किया। उनके अनुयायियों ने जाति-द्वेष की भावना पैदा करने के लिए सबकुछ किया और कहा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में "अहिंसात्मक" आन्दोलन के समय पत्रों और भाषणों में जितनी अधिक उत्तेजक तथा हिंसामय भाषा का प्रयोग किया गया उतनी सम्भवतः संसार के किसी और देश में नहीं पाई जाती। स्वभावतः इसके परिणामस्वरूप हिंसात्मक घटनायें भी हुई। वस्तुतः उन दिनों का यही काम था। युद्ध ने जो रूप धारण किया उसकी अंग्रेजों ने कभी शिकायत नहीं की

क्योकि आखिर तो वह युद्ध का ही एक रूप था। पर उन्होने भारतीयो का यह दावा नही माना कि इस प्रकार के असहयोग का धरातल ऊँचा और नैतिक था, अथवा कि वह ईसाइयत या उससे भी किसी ऊँची चीज का फलितरूप था। सच्चे और खरे शब्दो मे कहे तो, लकाशायर के माल का बहिष्कार करने का उद्देश्य भारत में कुछ मनुष्यो को काम, रोजी और रोटी देना और इग्लैण्ड में दूसरो का काम, रोजी और रोटी छीनना था। भूखा मारने और जान से मारने में कोई बडा नैतिक भेद नही है। कोई सच्चा अँग्रेज इस बात का दावा नही करेगा कि पीडित जर्मन नागरिको तथा सिपाहियो पर युद्ध बन्द कराने का दबाव डालने के लिए की गई जर्मन की सामुद्रिक नाकेबन्दी और रणक्षेत्र में की गई लडाई में कुछ भी नैतिक भेद है। और उन्होने यदि कुछ भेद माना भी तो वह नाकेबन्दी को ज्यादा बुरा बतायेगे।

जिस समय वह हिंसा भडक उठी, जो कि स्पष्टत. इस असहयोग आन्दोलन की ही उपज थी तो महात्माजी के पास उसका एक ही इलाज था। वह था उनका निजी उपवास। उनका विश्वास था कि आठ दिन के उपवास से चौरी-चौरा-काण्ड के पापो का थोडा-बहुत प्रायश्चित अवश्य हो जायगा। बाद में उन्होने अपने उपवासो के उद्देश्यो का दायरा बडा कर दिया। १९२४ में उन्होने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए इक्कीस दिन का उपवास किया। दूसरे असहयोग आन्दोलन में जब उन्हे जेल भेज दिया गया, तब उन्होने उपवास द्वारा ही अपनी रिहाई कराई। साम्प्रदायिक निर्णय में सशोधन कराने के लिए भी उन्होने उपवास किया। परन्तु मालूम होता है कि उनके पिछले उपवासो मे, जिनमें राजकोट का उपवास भी शामिल है, प्रायश्चित्त की भावना नष्ट हो गई थी। उनके बहुत-से साथियो ने ही उनको दबाव डालने वाला कहकर आलोचना की।

असहयोग और उपवास में निर्दिष्ट अहिंसा के आध्यात्मिक मूल्य या गुण की जो आलोचनाये हुई उनपर महात्मा गाधी ने पहले कोई ध्यान नही दिया। उन्होने जो कुछ कहा, उससे ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने आन्तरिक अनुभव से यह जानते है कि इनको आध्यात्मिक महत्त्व देने मे वह गलती पर नही है। और जहाँ दुनिया ने स्पष्टत उनको असफलता बतलाया, वहाँ भी गाधीजी ने उन्हे सफलता ही माना। परिणाम यह हुआ कि भारत मे सर्वत्र जिस किसी भी बात पर उपवास या 'अहिंसात्मक' सत्याग्रह की नकल करनेवाले बहुत-से लोग पैदा हो गये।

परन्तु अब यह सब बदल गया है। महात्मा गाधी को नई रोशनी मिली है। वह स्वय अपनी नीयत मे सन्देह करने लगे है। वह यह सोचने लगे है कि उस समय जब कि मै समझता था कि मैं आध्यात्मिक उद्देश्यो के लिए कार्य कर रहा हूँ, मै वास्तव में राजनैतिक और भौतिक उद्देश्यो के लिए कार्य कर रहा होता था। उन्होने हमसे कहा है कि "मेरे राजकोट के उपवास में 'हिंसा का दोष' था।" अब उन्होने अपने सब

अस्त्र नीचे डाल दिये हैं। यदि आत्म-शुद्धि के लिए किये गये इतने प्रयत्नों, इतने वर्षों के तप और त्याग और अपने विरोधियों को प्रेम करने के प्रयत्नों के बाद भी वह यह समझते हैं कि वह इन साधनों का प्रयोग करने के योग्य नहीं हैं तो क्या इस बात की कभी आशा की जा सकती है कि जनता, अथवा जो आदमी इस समय इन साधनों द्वारा काम करने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे कभी भी इनका प्रयोग करने के योग्य होंगे ?

पर महात्माजी ने स्वयं जो उन्नति की है वह इस विचार से कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण है और उनके भारत में तथा अन्यत्र भी आश्चर्यजनक परिणाम होंगे। बहुत वर्षों से महात्माजी ईसाई-धर्म के सिद्धान्तों व मान्यताओं के बहुत निकट पहुँच चुके हैं। उन्होंने हाल ही में जो कुछ कहा है उससे मालूम होता है कि उन्होंने बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म के आन्तरिक तत्त्व को समझ लिया है। 'अ' अर्थात् 'नहीं' का महत्त्व बहुत नहीं है। 'सहयोग' में 'असहयोग' से अधिक सद्गुण है। संसार इस समय हिंसा से पीड़ित हो रहा है। मनुष्यों का हृदय-परिवर्तन करने के लिए एक नई प्रेरक क्रान्तिकारी शक्ति की भारी और ज्ञानपूर्वक आवश्यकता है। सभी देशों में इस बात की मांग भी शुरू हो गई है। वहाँ ऐसे आन्दोलन चल पड़े हैं जो 'मानव-जाति के लिए अत्यन्त आवश्यक' नये परिवर्तन के आने की भूमिका हैं। हो सकता है कि महात्माजी का विकास इससे भी अधिक बातों का द्योतक हो।

हमारे समय की अनेक समस्याओं में सबसे अधिक जटिल समस्या यह है कि युद्ध के प्रति हमारा रुख क्या हो ? बहुत-से बौद्ध ईसाई तथा वे सच्चे लोग जो किसी धर्म-विशेष को माननेवाले नहीं हैं, यह जानते हैं कि आत्म-रक्षा के लिए भी युद्ध करना ठीक नहीं। बुराई का प्रतिरोध न करने का ईसाइयों का सिद्धान्त व्यक्तियों के समान राष्ट्रों पर भी लागू होता है। मुझे साफ़ कहना चाहिए कि महात्माजी ने टाल्स्टाय का जो सिद्धान्त अपनाया है, वह मुझे दार्शनिक अराजकतावाद ही मालूम होता है। इस युक्ति का मुझे कोई जवाब नहीं मिलता कि जब हमें रक्षा के लिए सेनायें रखने की ज़रूरत है तब हमें पुलिस भी न रखनी चाहिए। एक व्यक्ति अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले के प्रति सच्चा प्रेम होने के कारण उसके आक्रमण को बरदाश्त करके अंत में उसके हृदय पर विजय प्राप्त कर सकता है। लेकिन यदि एक राष्ट्र के आदमी जिन्हें स्वयं कोई व्यक्तिगत तकलीफ न उठानी पड़े, आक्रमणकारी राष्ट्र को अपने पर और अपने ही कुछ आदमियों पर मनमाने अत्याचार करने दें तो, मैं उनके इस काम को अच्छा और रुचिकर नहीं मान सकता। जो लोग इस सिद्धान्त का प्रचार करते हैं वे एक प्रकार के नैतिकता के जाल में जा उतना ही [illegible] है जितना कि नैतिक घृणा, अपने में व्यक्तिगत रूप में सच्ची नम्रता पैदा करने में सन्तोष मानने के बजाय दूसरों पर एक विशेष प्रकार का आचरण लादने का प्रयत्न करते हैं। हममें से सभी आदमी

नीचे कहे गये दो प्रकार के व्यक्तियों में से एक-न-एक प्रकार के हैं। एक तो वे मनुष्य हैं जिनका हृदय अपने आक्रमणकारियों के प्रति नैतिक घृणा से परिपूर्ण है, और जो नम्रता को भूलकर यह समझने में भी असमर्थ हो गये हैं कि आक्रमणकारी और वे स्वयं दोनों मनुष्य ही तो हैं। दूसरे मनुष्य वे हैं जो नम्रता के नैतिक जोश की अधिकता के कारण अपने नैतिक जीवन में (दूसरों के द्वारा पहुँचाये गये) आघातों को प्रेमपूर्वक स्वयं सह लेने का अभ्यास करने के बजाय, जिन लोगों तक उनकी पहुँच है, उन्हें आक्रमणकारियों के सामने नम्रता से झुक जाने का उपदेश देने में ही अधिक समय व्यतीत करते हैं। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों में कोई विशेष भेद नहीं है। ये दोनों ही जीवन में असफल हैं, और स्वयं आदर्श आचरण करने की अपेक्षा 'पर उपदेश कुशल' अधिक हैं। दोनों प्रकार के व्यक्ति जिस समय नैतिक द्वेष या नैतिक शान्तिवाद के जोश में बह जाते हैं उस समय मानव-जाति के साथ अपनी एकता की भावना को भूल जाते हैं। नैतिकता के इन उत्साही आदमियों की बुराई का सम्मिलित प्रतिरोध न करने का सिद्धान्त चल जाये तो बुराई को खुलकर खेलने का अवसर मिल जायगा और नैतिकतावादियों की दो पीढ़ी पीछे की सन्तान ऋषि या सन्त नहीं, बल्कि गुलाम होगी। नम्रता के बजाय दासता फले-फूलेगी। दास जाति की गिनी-चुनी आत्मायें ही संसार के लिए पथ-प्रदर्शन का काम करती हैं। जनता को तो चाटुकारी, गुप्तता और छल-कपट की कला सीखनी पड़ती है।

मुझे तो यह मालूम होता है कि भगवद्गीता में अर्जुन को उपदेश देते समय भगवान् कृष्ण बहुत पहले ही 'शान्तिवाद' की युक्ति का पूर्णतया खण्डन कर चुके हैं। तीन वर्ष पूर्व मैंने महात्माजी से यह युक्ति मनवाने का प्रयत्न किया। पर उनका मन्तव्य, जहाँतक कि मैं उसे समझ पाया हूँ, यह था कि भगवद्गीता में युद्ध की कथा तो रूपक मात्र है, वास्तविक नहीं, अत यह युक्ति भौतिक युद्ध और वास्तविक प्राण-हरण पर लागू नहीं हो सकती।

पर राजकोट के वाद से तो मैं एक नये ही महात्मा को देख रहा हूँ। हम सबको उस व्यक्ति का आदर करना चाहिए, जिसने अपने सेवा-मय जीवन में निरन्तर कठोर आत्म-संयम, कठोरतम तपस्या और आत्म-शुद्धि के लिए सतत प्रयत्न किया। यदि उन्हें एक नवीन-ज्योति प्राप्त हुई है तो वह उस दर्पण के द्वारा प्रतिक्षिप्त होकर और भी चमक उठेगी, जिसे बनाने में इतने वर्ष लगे और इतना परिश्रम करना पड़ा है। आज प्रत्येक देश यह बात मान रहा है कि संसार की आशा व्यक्ति की आत्मा के विकास में ही है। प्रत्येक को अपनेमे ही आरम्भ करना होगा। पर हमें एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता है, जो वह नीरवता पैदा करदे, जिसमें हम अपनी आत्मा की आवाज़ सुन सकें, अन्यथा हम अपने मार्ग से भटककर दूर जा पड़ेंगे। नैतिक जोश के प्रवाह में बहे हुए आदमी शान्ति के इन क्षणों के सम्बन्ध में बड़ा शोर मचाते हैं

और अन्तरात्मा की आवाज सुनने के बजाय दूसरों को अपने मत में परिवर्तित करने के लिए अधिक चिन्तित रहते हैं। कम-से-कम भारत में तो महात्माजी वह नीरवता उत्पन्न कर सकते हैं, जिसमें सच्ची शान्ति जन्म ले सके।

: ३३ :

गांधीजी का आध्यात्मिक प्रभुत्व

गिलबर्ट मरे, एम. ए., डी. सी एल.

[एमरीटस अध्यापक, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी]

जिस संसार में राष्ट्रों के शासक पाशविक शक्ति पर अधिक-से-अधिक भरोसा किये हुए हैं और राष्ट्रों के निवासी अपने जीवन के अस्तित्व और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ऐसी पद्धतियों पर भरोसा रखते हुए हैं जिनमें कानून, और भ्रातृभाव के लिए तनिक भी गुंजाइश नहीं रही है, उनमें महात्मा गांधी एकाकी खडे दीख पडते हैं और उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है। वह ऐसे राजा या शासक हैं, जिनका कहना लाखों मानते हैं। इसलिए नहीं कि वे उनसे डरते हैं, बल्कि इसलिए कि वे उन्हें प्यार करते हैं और इसलिए नहीं कि उनके पास विपुल सम्पत्ति, गुप्तचर, पुलिस और मशीनगन हैं, बल्कि इसलिए कि उनके पास ऐसा नैतिक प्रभुत्व है कि जब वह उससे काम लेने लगते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि वह भौतिक संसार के सारे महत्व को धूल में मिला देंगे। मैं 'प्रतीत होता है', इसलिए कहता हूँ कि भौतिक शक्ति के विरुद्ध उसका प्रयोग सहृदयता, सहानुभूति अथवा दया के बिना निरर्थक है। इसे अपने मोर्चों में केवल इसलिए विजय प्राप्त होती है कि वह अपने दुश्मन की अन्तरात्मा में सोई हुई उस नैतिकता या मनुष्यता को जगाती है, जो ऐसा मृदुल-मधुर तत्त्व है कि मनुष्य पशु बनने का कितना भी यत्न क्यों न करे उससे पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सकता। बीस वर्ष पहले मैंने इसी में गांधीजी के बारे में लिखा था कि 'वह एक ऐसे युद्ध में लगे हुए हैं जिसमें [illegible] और [illegible] आत्मिक शक्ति का भौतिक साधनों से अत्यधिक सम्पन्न [illegible] के साथ संघर्ष छिड़ा है। इस युद्ध का अन्त हम इस जन्म में देख पड़ता है कि भौतिक साधनों में सम्पन्न [illegible] युद्ध में [illegible] एक [illegible] हार [illegible] हैं और आत्मिक शक्ति [illegible] हैं

हम निस्सन्देह यह नहीं मान सकते कि आत्मिक प्रभुत्व [illegible] व्यक्ति का नेतृत्व सदा ही सही होता है। उसके दावे और [illegible] का समर्थन या प्रतिवाद सहसा शायद ही किया जा सकता है क्योंकि उनका [illegible] ही होता है जो साधारण मनुष्यों के समान भूलें न कर सकें नहीं हैं और [illegible] होने पर जिनका स्वेच्छाचारियों के समान पतन होना सम्भव है। लेकिन नैतिकता के बल पर

[illegible] ने, [illegible] साधारण आलोचकों ने भी गांधीजी की [illegible] प्रशंसा की है। पहली बात तो यह है कि वह कोई आदेश या हुक्म नहीं देते। केवल अपील करते हैं, हमारी अन्तरात्मा को सम्बोधित करते हैं। वह कहते हैं कि उनके पास 'अस्त्र' बल है। लेकिन उनकी सेना ऐसे लोगों की नहीं बनती, जो उनसे भिन्न क्षेत्र में सचाई की खोज करते हैं।

दूसरी बात यह है कि उनका लड़ाई का तरीका अजीब और अनूठा है, जिसे कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के अधिकारों के लिए लगातार पन्द्रह वर्ष तक लड़ी गई लड़ाई में खूब अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। वह और उनके अनुयायी बार-बार गिरफ्तार करके जेल भेजे गये, लेकिन जरायम करनेवालों के साथ रक्खे गये और उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। लेकिन जब भी कभी उनकी दमन करनेवाली सरकार कमजोर पड़ी या उसपर कोई संकट आया, अपनी बात को मनवाने एवं लाभ उठाने के बजाय उन्होंने अपना रुख बदल दिया और उसकी सहायता की। जब वह भीषण युद्ध की भयानक दलदल में फँस गई, तब उसकी सहायता के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी स्वयंसेवकों की सेना खड़ी की। अपने हिन्दुस्तानी अनुयायियों की अहिंसात्मक हड़ताल के जारी रहते हुए जब सरकार के लिए क्रान्तिकारी लोगों की रेलों की हड़ताल की आशंका उपस्थित हुई, तब उन्होंने सहसा अपने लोगों को काम शुरू करने की आज्ञा दे दी, जिससे उनके विरोधी निरापद हो जायँ। इसमें आश्चर्य ही क्या कि अन्त में उनकी विजय हुई। कोई भी सहृदय शत्रु इस तरीके की लड़ाई का सामना नहीं कर सकता।

तीसरी बात, जो कि एक नेता के लिए बड़ी कठिन होती है, यह है कि गांधीजी कभी यह दावा नहीं करते कि उनसे भूल या दोष नहीं होता। यह भी उस हालत में जबकि असंख्य लोग उन्हें एक आदर्श मानकर पूजते हैं। हमें पता है कि इस समय उन्होंने अपने असहयोग आन्दोलन को रोक रक्खा है, जिससे कि वह और उनके विरोधी आत्म-निरीक्षण तथा परीक्षण कर सकें।

एक निःशस्त्र व्यक्ति का करोड़ों मनुष्यों पर नैतिक प्रभुत्व होना स्वतः ही आश्चर्यजनक है। लेकिन जब वह न केवल हिंसा को छोड़ने की शपथ लिये हुए है, बल्कि अपने शत्रुओं तक की संकट में सहायता करता है और अपनी मानवीय कमजोरियों को भी स्वीकार करता है तब वह निर्विवाद रूप से सारे संसार का श्रद्धा-भाजन बन जाता है। एक दूसरे देश में बैठे हुए, बिलकुल भिन्न सभ्यता को मानते हुए जीवन-सम्बन्धी अनेक व्यावहारिक समस्याओं के बारे में उनसे सर्वथा विपरीत विचार रखते हुए, उस यूरोप के चिन्ताशील तथा संघर्षमय विचारों में निमग्न रहते हुए भी जिसमें मनुष्य का दिल और दिमाग पाशविक शक्ति और अज्ञान की चोट खाकर अपने को कुछ समय के लिए असहाय-सा अनुभव कर रहा है, मैं बहुत खुशी के साथ इस

महापुरुष को 'महात्मा गांधी' के उस शुभ नाम से पुकारता हूँ, जिसका कि उसके भक्त उसके लिए दावा करते हैं और बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ उसका उच्चारण करते हैं।

: ३४ :

सुदूरपूर्व से एक भेंट

योन नागूची

[कियो विश्वविद्यालय, टोकियो, जापान]

दिसम्बर १९३५ के अन्त में नागपुर से बंबई जाते हुए मैं वर्धा ठहरा था। वर्धा एक साधारण-सा शहर है। लेकिन नैतिक दृष्टि से वह गांधीजी के आन्दोलन का केन्द्र बना हुआ है। मुझे गांधीजी को आश्रम में देखकर बहुत खुशी हुई। वह आश्रम एक तपोभूमि या साधना-मन्दिर था, जहाँ पुराने ऋषि-मुनियों या साधकों से सर्वथा भिन्न रूप में इस युग के ऋषि पर अपने राष्ट्र के जीवन की आशा या पीड़ा की समस्त हलचलों की प्रतिक्रिया होती है। बीमारी के कारण वह उस समय वर्गाकार और बीच में आंगनवाली दुमंजिले मकान की पक्की छत पर लगाये गये एक तम्बू में लेटे हुए थे। सन्त की जैसी एक मुस्कराहट उनके चेहरे पर थी। उनकी नंगी टांगें दुबली-पतली पर लोह-शलाका-सी मजबूत, सामने फैली थीं। एक शिष्य मालिश कर रहा था। इस साधारण और अलिप्त-से आदमी का उन महान् ऐतिहासिक उपवासों के साथ मेल मिलाना मेरे लिए कठिन हो गया, जिन्होंने इंग्लैण्ड की विशाल आत्मा को भी एक बार भय से थर्रा दिया था। जब मैंने सूती कपड़े में कुछ लपेटा उनके सिर पर रखा देखा, तब मैंने पूछा कि यह क्या है? उन्होंने बताया कि वह गीली मिट्टी है, जो कि उनके डाक्टरों के कथनानुसार उनके जैसे खून के दबाव वाले लोगों के लिए फायदेमन्द होती है। फिर कुछ व्यंग और कुछ दार्शनिकता से मिश्रित मुसकान के साथ बोले, "मैं हिन्दुस्तान की मिट्टी से पैदा हुआ हूँ और यही हिन्दुस्तान की मिट्टी मेरे सिर का ताज है।

थोड़ी-सी बात करने के बाद मैं उनसे विदा लेकर उनके तीन या चार शिष्यों से मिलने के लिए नीचे उतर आया, जो मुझे सारा आश्रम दिखाने के लिए नीचे खड़े मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मधु-मक्खियाँ रहने के स्थान के पास से गुजरने के बाद मैं तेल की घानी के पास पहुँचा। उसके बाद मैं वहाँ पहुँचा जहाँ कागज बनाने का प्रयोग किया जा रहा था। उन मेरे साथवालों में से एक ने कहा कि कागज बनाना कितना सुगम है। यदि पूरक धन्धे के तौर पर इसका हमारे देश में चलन हो जाय तो हम

अपना कितना रुपया अपने ही देश मे बचाकर रख सकेंगे ?" यह कहने की जरूरत नहीं कि आश्रम में चरखे को प्रधान स्थान प्राप्त है। एक छोटा-सा लकडी का डिब्बा लाया गया, जिसे खोलने पर एक छोटा-सा चरखा प्रकट हुआ। इसका गांधीजी ने जेल में खाली समय में स्वय आविष्कार किया था। मुझे कहा गया, "आप इसे हैण्डबेग तक में रख सकते है और खाली समय में सूत कातने के लिए रेलगाड़ी के सफर में इसे साथ ले जा सकते है।"

फिर मुझे बताया गया कि "गाधीजी एक विशेष वैज्ञानिक व्यक्ति है। उनका अटूट धैर्य सदा उनके आविष्कारक मन का साथ देता है, जिससे उन्हे पूरी तरह सफलता मिलती है। अगर वह घडीसाज होते तो उन्होंने ससार में सर्वोत्तम घडी बनाने का श्रेय-सम्पादन किया होता। सर्जन या वकील के रूप में भी उन्होंने सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की होती। लेकिन १९२२ के मुकदमे के समय अपने को पेशे से किसान और जुलाहा उन्होंने बताया और इस तरह हाथ की मजूरी की पवित्रता में निष्ठा प्रकट की। ऐसे कामो में वह कताई को सबसे अधिक महत्त्व देते है, क्योकि उनका खयाल है कि इससे मनुष्य मितव्ययी बनने के साथ-साथ समय का भी ठीक-ठीक उपयोग करना सीख जाता है। वह किसी भी वस्तु के अपव्यय को सबसे अधिक घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनका यह विश्वास है कि हाथ की मिहनत से ही हिन्दुस्तान को नया जीवन मिल सकता है। इसलिए चरखे को अपना आदर्श मानकर वह जनता से स्वतन्त्र जीवन के झण्डे के नीचे आने के लिए अपील कर रहे है।"

यह तो केवल आकस्मिक घटना है कि उनका आन्दोलन ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक विद्रोह प्रतीत होता है, क्योकि वह आन्दोलन, जहाँ एक ओर भारत को नीति-भ्रष्टता से बचावेगा तहाँ वह दूसरे देशो को भी उबारेगा। क्योकि वह शक्ति को उत्पादक कामो में लगाने की तथा खेतो और खलिहानो से मिलते-जुलते जीवन बिताने की महान् शिक्षा देता है। दूर के आदर्शो के पीछे भटकते-फिरने की अपेक्षा अपने आस-पास के लोगो की ही सेवा करने का महत्त्व केवल हिन्दुस्तान तक ही सीमित नहीं रह सकता। स्वदेशी की 'आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन' की भावना का प्रभाव समस्त देश और काल में व्यापक होकर रहेगा।

दीन-दुखियो और गरीबो की सेवा करने और उनके साथ अपने को तन्मय करने से अधिक पवित्र और ऊँचा मार्ग ईश्वरोपासना के लिए गाधीजी नही ढूंढ सकते। उदाहरण के लिए वह जब रेल में सफ़र करते है, तो सदा ही तीसरे दर्जे का टिकिट लेते है। इससे वह अपने आपको यह याद दिलाते है कि वह उन निम्नतम मनुष्यो में से है, जिनमे मानवता और स्नेह ही सबसे बडी सम्पत्ति माने जाते है। ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग मजूरो के साथ बिताया हो और उनके सुख-दुख में समान भाग लिया हो, गांधीजी आत्म-निर्भर और स्वावलम्बी जीवन

दिलाने की प्रेरणा देते रहने के लिए अपने मित्रों को चरखा भेंट करते हैं।

बम्बई जाते हुए गाड़ी में अपने डिब्बे में अकेला बैठा हुआ मैं अपने मन से महात्मा गांधी की मूर्ति को थोड़े समय के लिए भी दूर नहीं कर सका। मुझे एकबार उनका एक छोटा-सा निबन्ध 'स्वेच्छापूर्वक गरीबी' (अपरिग्रह) पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिसमें उन्होंने उन वस्तुओं के परित्याग से होनेवाले अपने आनन्द का वर्णन किया है, जो कभी उनकी अपनी थी। उनका यह विश्वास है कि हिन्दुस्तान सरीखे देश में अनिवार्यतः आवश्यक से अधिक अपने पास कुछ रखकर जीवन-निर्वाह करना डाकेजनी करके गुज़ारा करने के समान है। जबतक कि तुम उसके-जैसे न हो जाओ, जो नगा और भूखा बाहर खुले में सोता है, तबतक तुम्हें यह कहने का अधिकार नहीं कि तुम हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों की रक्षा कर सकते हो। मुझे बताया गया है कि जिस कपड़े से गांधीजी अपने-आपको ढाँपते हैं, वह भी कम-से-कम है। यह स्वाभाविक है कि गांधीजी इस ग़रीबी की ऐसी लगन से उस साधना और तप के आदर्श पर पहुँच जायें, जहाँ आत्मशुद्धि के अर्थ पचेंद्रिय-दमन किया जाता है।

वह योद्धा जो आत्म-दर्शन में जूझता हुआ बिगुल बजाता अदृश्य विजय की निश्चित आशा से स्वर्ग के निकट पहुँच गया है, जिस बिगुल की आवाज़ नरक के कोने-कोने में गूंज उठी है। और जो अकेला ही वहां से भावी को ललकार रहा है।

दुर्बल, क्षीणकाय परन्तु जिसकी महान् आत्मा ने संसार कँपा दिया है। विस्मृत और तिरस्कृत प्रेम ने, जीवन की कुचली और झंझोड़ी हुई स्वतन्त्रता ने, अपुरस्कृत और अपमानित शारीरिक परिश्रम ने इस पुरुष की गर्जना में अत्याचार के विरुद्ध चुनौती की आवाज़ उठाई है, ईश्वरीय न्याय के लिए प्रार्थना की है। धरती-माता के अत्यन्त निकट जीवनयापन का करुण मन्त्र पढ़नेवाला जादूगर, उस मनुष्य से बढ़कर कौन पुरुष है जिसके हृदय में देश-भक्ति की ज्वाला इतने जोर से धधक रही हो। सत्य का वह एक एकाकी शोधक है। वह सब सांसारिक सुखों को तिलाञ्जलि दे चुका है। इस मनुष्य की आत्मा से बढ़कर किसकी आत्मा अवतारी हो सकती है? वह भूख और दुख के अनन्त और दुर्गम पथ का पथिक है।[1]

१ मूल अंग्रेजी पद्य इस प्रकार है —

A warrior in combat near Heaven with a prospect of unseen victory,
Blowing a bugle that rings to the last gulf of Hell,
A lonely hero challenging the future for repose
Withered and thin,
But with a mammoth soul shaking the world in fear—

: २५ :

विविधरूप गांधीजी

डा० पट्टाभि सीतारामैया, बी. ए., एम. बी, सी. एम.

[मछलीपट्टम]

गांधीजी—अवतार

"जो व्यक्ति अपने इन्द्रिय-सुख की कुछ परवाह नहीं करता, जो अपने आराम या प्रशंसा या पद-वृद्धि की कुछ चिन्ता नहीं करता, किन्तु जो केवल उसी बात के करने का दृढ़ निश्चय रखता है जिसे वह सत्य समझता है, उससे व्यवहार करने में सावधान रहो। वह एक भयंकर और असुविधाजनक शत्रु है, क्योंकि इसके जा सकने वाले शरीर पर क़ाबू पा करके भी तुम उसकी आत्मा पर बिल्कुल अधिकार नहीं कर सकते।"
—प्रो० गिल्बर्ट मरे

संसार ने समय-समय पर महान् पुरुषों को जन्म दिया है। प्रत्येक राष्ट्र ने अपने सन्त, अपने शहीद, अपने वीर, अपने कवि, अपने योद्धा और अपने राजनीतिज्ञ उत्पन्न किये हैं। भारतवर्ष में हम अपने महापुरुषों को अवतार कहते हैं। वे ऐसे व्यक्ति हैं जो पुण्य की रक्षा और पाप का नाश करने के लिए ईश्वर के मूर्तरूप होकर पृथ्वी पर आते हैं। हमारे लिए गांधीजी एक अवतार है, जिन्होंने इस कर्मरत संसार में पूर्ण अहिंसा को कार्यान्वित करके बताया है।

गांधीजी—स्थितप्रज्ञ

गांधीजी की सम्मति में स्वराज्य का अर्थ यह नहीं है कि गोरी नौकरशाही की जगह काली नौकरशाही क़ायम होजाय। स्वराज्य का अर्थ है जीवन के ढांचे का

Through this man love, profaned and ignored,
Through this man life's independence, shattered and fallen,
Through this man, body-labour bereft of honour and prize,
Cry rebel-call against tyranny; to God's justice be praise!
A Sad chanter of life close to the mother-earth,
(Where is there a more burning patriot than this man?)
A lone seeker of truth denying the night and self-pleasure,
(Where is there a more prophetic soul than this man's?
A pilgrim along the endless road of hunger and sorrow.

बिल्कुल बदल जाना। दूसरे शब्दो में, भारत का पुनर्विजय करना। उनके मस्तिष्क में तो समस्या यह है कि देश के भिन्न-भिन्न टुकडो को, जो प्रादेशिक दृष्टि से प्रान्तो और देशी राज्यो में, सम्प्रदायो की दृष्टि से हिन्दुओ, मुसलमानो और ईसाइयो में, व्यवसायो की दृष्टि से शहरी और देहाती समुदायो में बँटे हुए है, और जो कही 'बहिर्गत प्रदेशो' और कही 'अन्तर्गत प्रदेशो' में विभक्त हैं, किस प्रकार एक सूत्र में ग्रथित किया जाय। वह यह भी चाहते है कि राष्ट्र की संस्कृति का पुनरावर्तन किया जाय और उसमें आधुनिक जीवन में से नकल की जाने योग्य बातो को भी ग्रहण किया जाय, सेवा के आदर्श को पुनर्जीवित किया जाय, नई सभ्यता से उत्पन्न हुई स्वार्थपरायणता के स्थान पर दीन-दरिद्रो के प्रति दया की भावना बढाई जाय, पीडित समाज में अत्यन्त धनिको और अत्यन्त निर्धनो के समुदाय बनने देने के स्थानो पर निम्नश्रेणी वालो की सतह पर लाया जाय, सभी लोगो के लिए अन्न-वस्त्र की व्यवस्था की जाय और कुछ लोगो के उत्कर्ष की खातिर रहन-सहन की कोटि ऊँची करने के बजाय, यदि आवश्यक हो तो, औसत जीवन-कोटि को ही कुछ नीचा कर दिया जाय। इस दृष्टि से उन्होंने अपने जीवन में ही एक नये सामजस्य का विकास किया है, और हिन्दू-धर्म के चारो वर्णों और चारो आश्रमो को उन्होंने अपने जीवन में सन्निविष्ट कर लिया है। वह ब्राह्मण का कार्य करते है, वह व्यवस्था देते है। वह क्षत्रिय है, वह भारत के मुख्य चौकीदार हैं। वैश्य के रूप में वह भारत की सम्पत्ति का विनियोग करते है, और शूद्र के रूप में उन्होंने अन्न और वस्त्र की उत्पत्ति की है। अपने ऊपर चलाये गये सुप्रसिद्ध अभियोग में उन्होंने कहा था कि मैं जुलाहा और किसान हूँ। और गृहस्थ होते हुए भी वह ब्रह्मचारी की भांति सयम से रहते है, वानप्रस्थ की भाति अपनी पत्नी के साथ मानव-जाति की सेवा करते है। और वह सच्चे सन्यासी भी है, क्योकि उन्होंने अपना सब-कुछ मनुष्य-जाति के कल्याण के लिए परित्याग कर दिया है। इतने पर भी गांधीजी प्रधानत एक मनुष्य है। वह मानवोत्तर होने का न ढग रखते है न कोई ऐसा दावा ही करते है। वह पक्के कार्य-कुशल आदमी है, बडी उम्र के लोगों में खुश-मिजाज है, और मनुष्य-जाति के लिए एक साधु है, ऋषि है, पथ-प्रदर्शक है, दार्शनिक है और सबके मित्र है। उनका चेहरा तेजोमय है, उनकी दोनो आंखो में तेज है और उनकी हँसी में तो उनका सम्पूर्ण अन्तरंग बाहर प्रकट हो जाता है। वह एक अर्थ मे स्पष्टवक्ता है, और उन्हे लोगो के पीठ-पीछे आक्षेप सुनने की आदत नही है। किन्तु वह आक्षेपकर्त्ताओ के समक्ष ही आक्षिप्तो के सामने उन्हे रख देते है। वह आपके स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लेते है, और आपकी बात को सत्य मान लेते है। वह बातचीत बडी निश्चित और नपी-तुली करते है और आशा करते है कि उनके वक्तव्यो को समझने मे उनके अगर-मगर को तथा प्रधान वाक्याशो को ध्यान मे रक्खा जायगा। अधिकाश लोगो ने उनके प्रधान वाक्याशो को तो ले लिया पर अगर-मगर को भुला दिया, और इस प्रकार अपने

उत्तरदायित्वों को उठाये बिना उन्होंने बाह्य परिणामों की आशा नहीं की। उनकी लेखन-शैली अपनी ही और विलक्षण है। उसमें छोटे-छोटे वाक्य होते हैं—छोटे, उतने ही प्रबल, सीधे और उतने ही गतिमान, जैसे तीर और असर करने में सफल। गांधीजी उपनिषदों में वर्णित पूर्णपुरुष हैं, जिनसे परिचित होना एक सौभाग्य है, और जिनके साथ काम करना एक वरदान है। वह भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ हैं, जिन्होंने अपने आत्मसंयम और आत्मत्याग से अपनेआप पर और संसार पर विजय पाई है।

गांधीजी का द्विविध कार्यक्रम

सत्याग्रही के रूप में गांधीजी पराजय को जानते ही नहीं। जब राष्ट्र आक्रामक कार्यक्रम से थक जाता है तो उसे फ़ौरन रचनात्मक कार्यक्रम में लगा दिया जाता है। जिस सरलता से कारखाने में मशीन का पट्टा फास्ट पुली से लूज़ पुली पर आ जाता है, उसी सरलता से गांधीजी के शक्ति-चक्र का पट्टा भी युद्ध के विध्वंसक-क्षेत्र से रचनात्मक क्षेत्र पर उतर आता है। उतनी ही तेजी-फुर्ती से वह सविनय आज्ञाभंग के आक्रामक कार्यक्रम का बटन दबा देते हैं, और यह कार्यक्रम भी तूफ़ान या ज्वार की-सी तीव्रता और वेग के साथ बढ़ जाता है। उनके आक्रमण कितने प्रबल होते हैं, यह संसार अच्छी तरह से जानता है। उन्हें खुद मालूम न था कि सामूहिक सविनय आज्ञाभंग कैसा होगा। पर वह जानते थे कि वह आज्ञाभंग होगा जो सविनय या अहिंसात्मक रूप में होगा और अपरिमित परिमाण पर सामूहिक रूप में कार्यान्वित किया जायगा। उनके युद्धों में, जो कि देखने में तो नगण्य होते हैं। किन्तु जिनका लक्ष्य एक और निश्चित, तथा परिणाम स्थायी और व्यापक होता है, कोई-न-कोई नैतिक प्रश्न जरूर शामिल रहता है। कभी तो अमृतसर-हत्याकाण्ड का प्रश्न ले लिया जाता है, जिसके लिए क्षमा-याचना की मांग की जाती है, कभी खिलाफ़त के अन्याय का प्रश्न होता है, जिसका घटनास्थल तो दूर-देशीय होता है, किन्तु परिणाम और प्रभाव निकटवर्ती होता है, तो कभी-कभी नमक-कर का ही प्रश्न उठा लिया जाता है, जो यद्यपि छोटा-सा कर है, किन्तु जो परिणाम में पापमय है। जब संसार समझता है कि गांधीजी पराजित होगये तब उस पराजय को वह एक वाक्य से विजय बना लेते हैं।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की देश में स्तुति भी हुई है और निन्दा भी हुई है, और उसके प्रति आज भी अधिकांश जनता का आकर्षण कम है। उनका खद्दर दरिद्रों की रामबाण औषधि है, नया आर्थिक कवच है, विधवाओं और अनाथों का, अपाहिजों और अन्धों का आश्रयदाता है। खद्दर किसानों को, जो कि ऋण और कर के असह्य बोझ से दबे जा रहे हैं, सहारा देनेवाला एक सहायक धन्धा है। खद्दर का पुनर्जीवन स्वयं एक सम्पूर्ण पन्थ ही है, क्योंकि वह मानव-जाति पर यंत्रवाद के जो कि अच्छा नौकर किन्तु बुरा मालिक है, आघात का विरोध करता है। खद्दर भारत की

उत्पादनशील प्रतिभा के पुनर्जीवन का एक चिन्ह है। खद्दर कारीगर की अपनी स्वतन्त्रता और मिल्कियत की भावना का, जो कि भारतीय कारीगर में सदा अनुप्राणित रही है, मूर्तस्वरूप है। खद्दर पवित्रता और परिवार की अक्षुण्णता के वातावरण का, जिसमें कि भारतीय शिल्पकला सदा फूली-फली है, एक प्रतीक है। खादी भारतीय देशभक्त की वर्दी है और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का बिल्ला है। गांधीजी के प्रधान-काल के प्रथम पांच वर्ष खद्दर की जड़ मजबूत करने में लग गये, जिससे कि अन्य ग्रामीण उद्योगों और घरेलू धंधों का रास्ता साफ होजाय और जीवन में मशीन की, जो कि हिंसा का ही एक चलता-फिरता रूप है, मर्यादा सुनिश्चित होजाय।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के तीन भाग हैं—वह खद्दर के रूप में आर्थिक, **अस्पृश्यता-निवारण** के रूप में सामाजिक और **मद्य-निषेध** के रूप में नैतिक है। पहले भाग को पूर्ण करके वह दूसरे भाग में लग गये, और सितम्बर १९३२ में उनके आमरण अनशन करने की घटना तो अब विश्व-इतिहास का एक अध्याय ही बन गई है। और तीसरे भाग मद्य-निषेध को प्रान्तीय स्वतन्त्रता के अधीन मंत्रियों के कार्यक्रम में सम्मिलित करके कार्यान्वित किया जा रहा है। अभी कुछ ही हफ्ते पहले गांधीजी ने बड़े दुःख के साथ निराशा प्रकट की थी कि उनके विश्वस्त सहयोगी इस सुधार की दिशा में बहुत धीरे-धीरे कदम बढ़ा रहे हैं, क्योंकि उन्होंने भारत में पूर्ण मद्य-निषेध के लिए जो मियाद रक्खी है, वह साढ़े तीन वर्ष की ही है। रचनात्मक कार्यक्रम का चौथा भाग सांस्कृतिक है और वह है **राष्ट्रीय शिक्षा**, जिसके लिए हरिपुरा में एक अखिल-भारतीय बोर्ड कायम कर दिया गया है और उसके तत्वावधान में वर्धा-योजना नामक शिक्षा-पद्धति का प्रचार किया जा रहा है, जिसका लक्ष्य है बच्चों के शिक्षण को राष्ट्र के जीवन से सम्बन्धित करना। केवल एक बड़े सुधार का होना रहा है—साम्प्रदायिक एकता का, जो मुख्यतः हिन्दू-मुस्लिम एकता ही है। इसका श्रीगणेश होने में कुछ देर नहीं है और इस एकता का जो तरीका सोचा गया है उससे अल्पसंख्यकों का [illegible] नहीं होगा, किन्तु भारत के दो बड़े समुदायों की उदात्त भावनाओं और दृष्टिकोण को जाग्रत करना होगा। इस प्रकार अब राष्ट्र की प्रतिभा और ध्यान को एक बार [illegible] और [illegible] करने में और [illegible] करने में [illegible] दिया जाता है [illegible] [illegible] नहीं कर सकता।

गांधीजी के [illegible]

[illegible]

कार्यक्रम का उद्देश्य बारी-बारी से इनमें से हरेक को और अन्त में सभीको नष्ट कर देना ही है। कौंसिलो, अदालतो और कालिजो का बहिष्कार इसी योजना का एक भाग है। एक बार सरकारी नौकरो और फौजवालो से भी अपनी गुलामी छोड देने की अपील की गई थी। इस प्रकार भारत के अग्रेजी राज्य की मोहकता और अजेयता का नाश किया गया था।

गांधीजी और सत्याग्रह

हिंसा और युद्ध के युग में सत्याग्रह उतना ही विचित्र हथियार है जितना कि पत्थर युग में लोहे की छुरी या बैलगाडियो के बीच में पेट्रोल का एँजिन। लोग इसे समझ नही सकते, इसमें विश्वास नहीं करते, इसकी ओर देखना भी नहीं चाहते। जब ट्रासवाल की सफलता का उदाहरण दिया जाता है, तो लोग कहते है कि वह घटना तो एक छोटे-से परिणाम में हुई थी। वह एक छोटी-सी लडाई थी। वह उदाहरण भारत-जैसे विशाल देश के लिए लागू नहीं हो सकता। चम्पारन, खेडा और बोरसद को भी यह कहकर तुरन्त नगण्य बता दिया जाता है कि वे भी छोटी-छोटी-सी सफलतायें थी, जिनकी राष्ट्रव्यापी रूप में पुनरावृत्ति नही हो सकती। किन्तु आज तो सारी शकायें मिट चुकी है और सब कठिनाइयाँ हल होगई है। समस्या यही है कि सत्याग्रह को सत्य और उसकी आनुषगिक—अहिंसा—की सीमा के भीतर रक्खा जाय। सत्य और अहिंसा जो इस नये हथियार के दो अग है, निष्क्रिय नहीं है, निषेधात्मक तो है ही नही। वे विधानात्मक, आक्रमक शक्तियाँ है, जिनसे कि कार्यक्रम में वही सब गुण आजाते है जो कि हिंसा के क्षेत्र में युद्ध में होते है। अपने शत्रुओं को घबरा देने और भयभीत करने और अन्त में उनका हृदय-परिवर्तन करके उन्हें जीत लेने, अपने अनुयायियो में एक सख्त अनुशासन-भावना पैदा करने, इस नये शस्त्र के समर्थको के मस्तिष्क और भावना को प्रभावित करने, साहस, त्याग और धैर्य को जाग्रत करने, अत्यल्प पूजी से और विनाशक शस्त्रास्त्र की सहायता के बिना ही राष्ट्रव्यापी प्रतिरोध खडा करने के कारण सत्याग्रह एक निश्चयात्मक और अदम्य शक्ति का काम देता है, और अनुभव भी इसकी उपयोगिता का काफी प्रमाण देता है।

गाधीजी की सत्य और अहिंसा-सम्बन्धी धारणा को बहुत कम लोग समझते हैं। उनके मतानुसार दोनो के दो-दो स्वरूप है—क्रियात्मक और निषेधात्मक। चम्पारन के कलक्टर ने उन्हे एक कडा पत्र लिखा था, जिसे उसने बाद में वापस लेने का निश्चय किया और वापस मांगा। जब गांधीजी के नये अनुयायी उसकी नक़ल करने लगे तो उन्होंने उन्हे फटकारा और कहा कि अगर उसकी नक़ल रखली गई तो पत्र वापस लिया हुआ नही कहा जायगा। यह सत्य की एक नई परिभाषा थी, और इसीकी पुनरावृत्ति गाधी-अरविन समझौते के समय भी हुई, जबकि होम सेक्रेटरी श्री इमरसन

का अपमानकारक पत्र पुनर्विचार के बाद वापस लिया गया। काग्रेस के कागजो में उसकी नकल नही है। इसका कारण भी यही था कि वापस लिये हुए पत्र की नकल रखना अपनी फाइलो में और अपने हृदयो में उसे बनाये रखने के बराबर है। और ऐसा करना असत्य होगा और अहिंसा के विरुद्ध होगा।

गाधीजी हिंसा के सूक्ष्मतम प्रोत्साहन को भी सहन नही करते। सन् १९२१ में जब गाधीजी की यह राय हुई कि अलीबन्धुओ के भाषणो में से हिंसा के अनुकूल अर्थ निकाला जा सकता है तो उन्होंने उनसे एक वक्तव्य निकलवाया कि उनका ऐसा कोई इरादा नही था। किन्तु जब उन्ही अलीबन्धुओ पर अक्तूबर १९२१ में कराची-भाषण के कारण मुकदमा चलाया गया तो उन्होंने उसी भाषण को त्रिचनापल्ली में दोहराया और सारे भारतवर्ष से उसीको हजारो सभामचो पर दोहरवाया। उनके सामने एक ही कसौटी रहती है—क्या भाषण पूर्णतया अहिंसात्मक है ? यदि अहिंसात्मक है, तो वह उतनी ही शीघ्रता से उसपर रण-ललकार देने को तत्पर रहते है, जितनी शीघ्रता से कि यदि वह अहिंसात्मक नही है तो क्षमायाचना करने को भी तैयार हो जाते है। चूँकि उनका अहिंसा-सम्बन्धी दृष्टिकोण ऐसा है, इसलिए जब १९२१ के सविनय आज्ञाभग आन्दोलन मे ब्रिटिश युवराज के आगमन के समय, ५३ आदमी मारे गये और ४०० घायल हुए तो उनके हृदय को बडा आघात पहुँचा। उन दिनो में उन्होंने प्रायश्चित के रूप में पाँच दिन का उपवास किया था जोकि उनके बाद के २१ दिन और २८ दिन और अन्त में किये गये प्रायोपवेशन के मुकाबिले में आज इतने समय बाद भले ही बहुत छोटा-सा दिखाई देता हो।

गाधीजी का असहयोग सदा अन्त में सहयोग स्थापित करने के इरादे से किया गया है किन्तु उन्होंने अपने सत्य और अहिंसा के मूल तत्त्वो को कभी नही छोडा है, जैसा कि उनके १ फरवरी १९२२ के लार्ड रीडिंग को लिखे हुए पत्र से प्रकट होता है—

किन्तु इससे पहले कि बारडोली के लोग सचमुच सविनय आज्ञाभग प्रारम्भ करें मैं [illegible] के प्रमुख के नाते आपसे सादर अनुरोध करूँगा कि आप अपनी नीति [illegible] और [illegible] असहयोगी कैदियो को जो देश में अहिंसात्मक [illegible] छोड दें चाहे वे खिलाफत या [illegible] या स्वराज्य के [illegible] [illegible] भी [illegible] भी [illegible] केवल अहिंसा [illegible] इस प्रकार के अनुरोध [illegible] [illegible] प्रत्येक सभ्य [illegible] शासनाधीन देश में हो रहा है। यदि आप इस वक्तव्य के प्रकाशन की

१९१३ में कराची में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने " भारत के आत्मसम्मान की रक्षा के लिए और भारतीयों के कष्ट दूर कराने के लिए दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई में गांधीजी और उनके अनुयायियों ने जो वीरतापूर्ण प्रयत्न किये और जो अनुपम बलिदान किया", उसकी प्रशंसा का प्रस्ताव पास किया। यह प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हुआ था। और १९३१ में कांग्रेस के ४५वें अधिवेशन में जोकि फिर कराची में ही हुआ था, गांधीजी को अपने वीरतापूर्ण प्रयत्नों के लिए राष्ट्र की प्रशंसा फिर प्राप्त हुई। किन्तु दक्षिण अफ्रीका के मुट्ठीभर लोगों की ओर से नहीं, बल्कि ३५ करोड़ जनता के पूरे राष्ट्र की ओर से, जिनकी मुक्ति का श्रीगणेश सत्याग्रह के उन्हीं मुख्य और स्थायी सिद्धान्तों के आधार पर स्पष्टतापूर्वक किया गया था।

१९१४ में गांधीजी ब्रिटिश साम्राज्य के एक राजभक्त नागरिक थे, और जैसे उन्होंने बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जूलू-विद्रोह और बोअर-युद्ध में रेड क्रास सोसाइटी का संगठन किया था, इसी तरह महायुद्ध के लिए भी सिपाहियों की भर्ती में सहायता दी थी। हालांकि युद्ध-सम्बन्धी उनका रुख अब एक छोर से दूसरे छोर पर आगया है, फिर भी कभी वह इस तरफ़ और कभी उस तरफ़ रहा। यद्यपि १९१८ के अगस्त मास तक वह भर्ती के मामले में अंग्रेज़ों को बिना शर्त के सहायता देने के पक्ष में थे, तथापि १९३८ के सितम्बर में, जबकि यूरोप पर युद्ध के बादल झुके आरहे थे, वह युद्ध की परिस्थिति से भारत के लिए लाभ उठाने के या आगामी युद्ध में किसी अंश में भी भाग लेने के सख्त खिलाफ़ थे। इन दोनों चित्रों का कुछ अधिक विस्तृत अध्ययन करना ठीक होगा।

१९१९ में तिलक के नाम एक आर्डर निकाला गया कि वह ज़िला मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बिना कोई भाषण न दें। कहा जाता है कि इससे एक सप्ताह पहले ही वह भर्ती कराने के पक्ष में ज़ोरदार काम कर रहे थे और अपनी सद्भावना के प्रमाण के तौर पर उन्होंने महात्मा गांधी के पास पचास हज़ार रुपये का एक चेक भेजा था कि यदि मैं [illegible] यह रकम शर्त हारने के जुर्माने के रूप में ज़ब्त करली जाय [illegible] सरकार से पहले यह प्रतिज्ञा प्राप्त करले कि [illegible] महाराष्ट्र से पचास हज़ार [illegible] चेक लौटा दिया।

[illegible]

विरोधी थे जितने कि १९१८ में ब्रिटेन को बिलागर्त सहायता देने के पक्षपाती थे।

१९१८ में गाधीजी अनेक कार्यों में पड गये, जिनमें सबसे प्रसिद्ध कार्य रौलट-बिलो का विरोध था। आज भी वह उसी प्रकार के उन अनेक कानूनो से लडने में लगे हुए है जो भारत के अनेक देशी राज्यो में—त्रावणकोर, जयपुर, राजकोट, लीम्बडी धेनकानल आदि में—पूरे जोर-शोर से अमल मे आ रहे है। उनकी योजना और उद्देश्य की बावत भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित 'इण्डिया—१९१९' के लेखक के लेख से अच्छा और क्या प्रमाण दिया जा सकता है।—

"गाधीजी सामान्यतया ऊँचे आदर्श और पूर्ण निस्वार्थता रखने वाले टाल्स्टाय-वादी समझे जाते है। जबसे उन्होने दक्षिण अफ्रीका में भारतवासियो का पक्ष लिया तबसे उनके देशवासी उन्हे उसी परम्परागत श्रद्धा-भक्ति से देखते है जो पूर्वीय देशों मे सच्चे त्यागी धार्मिक नेता के प्रति हुआ करती है। उनमें एक विशेषता यह भी है कि उनके प्रशसक केवल किसी एक ही मत के नही है। जबसे वह अहमदाबाद में रहने लगे, तबसे उनका कई प्रकार के सामाजिक कार्यो से क्रियात्मक सम्बन्ध होगया है।

"जिस किसी व्यक्ति या वर्ग को वह पीडित समझते है उसके पक्ष में पडकर लडने को वह शीघ्र तत्पर हो जाते है, और इस कारण वह अपने देश के सामान्य लोगो में बडे लोकप्रिय बन गये है। बम्बई प्रान्त के कई भागो की शहरी और देहाती जनता में उनका प्रभाव असदिग्ध है, और उनके प्रति लोग इतनी श्रद्धा रखते है कि उसके लिए पूजन शब्द कहना अत्युक्ति न होगा। चूकि गाधीजी भौतिक शक्ति से आत्मिक बल को ऊँचा समझते है, इसलिए उनको यह विश्वास होगया कि रौलट-एक्ट के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध का वही शस्त्र प्रयुक्त करना उनका कर्तव्य है, जो उन्होने सफलतापूर्वक दक्षिण अफ्रीका में प्रयुक्त किया था। २४ फरवरी को यह घोषणा करदी गई कि अगर बिल पास कर दिये गये तो वह निष्क्रिय प्रतिरोध या सत्याग्रह चलायेंगे। सरकार ने और कई भारतीय राजनीतिज्ञो ने भी इस घोषणा को अत्यन्त गम्भीर समझा। भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के कुछ नरम विचार के मेम्बरो ने सार्वजनिक रूप में ऐसे कार्य के भयकर परिणामो की आशका प्रकट की। श्रीमती बेसेण्ट ने, जिन्हे भारतवासियो के मानस का अच्छा ज्ञान था, अत्यन्त गम्भीर भाव से गाधीजी को चेता दिया कि जिस प्रकार का आन्दोलन वह चलाना चाहते है, उसमें भीषण परिणाम पैदा करनेवाली अतोल क्रियाशक्तियाँ उत्पन्न होगी। यह स्पष्ट कह देना होगा कि गाधीजी के रुख या वक्तव्यो मे ऐसी कोई बात न थी, जिससे सरकार के लिए उनके आन्दोलन शुरू करने से पहले उनके विरुद्ध कोई कार्य करना उचित होता। निष्क्रिय प्रतिरोध विधानात्मक नही बल्कि निषेधात्मक क्रिया है। गाधीजी ने प्रकटरूप से पार्थिव बल-प्रयोग की निन्दा की। उन्हे विश्वास था कि कानूनो के निष्क्रिय भग से वह सरकार को रौलट-कानून हटा देने को बाध्य कर सकेंगे। १८ मार्च को

रौलट क़ानूनों की बाबत उन्होंने एक प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित करवाया, जिसमें लिखा था—"चूंकि हमारी अन्तरात्मा को यह विश्वास है कि इण्डियन क्रिमीनल लॉ एमेण्डमेन्ट बिल नं० १, सन् १९१९, और क्रिमिनल एमर्जेंसी पावर्स बिल नं० २ सन् १९२० अन्यायपूर्ण हैं, स्वतन्त्रता और इन्साफ़ के उसूलों के विरुद्ध हैं, जिनपर कि सम्पूर्ण भारत की सुरक्षितता और स्वयं राज्यसत्ता का आधार है, इसलिए हम गम्भीरतापूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि ये बिल क़ानून बना दिये गये तो जबतक ये वापस न ले लिए जायेंगे तबतक हम इन क़ानूनों का और आगे मुक़र्रर होनेवाली कमेटी जिन-जिन क़ानूनों को बनाना उचित समझेगी उन-उनका पालन करने से विनय-पूर्वक इन्कार कर देंगे। और हम यह भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस लड़ाई में हम ईमानदारी से सत्य का अनुसरण करेंगे और जान-माल और ज़ात के प्रति हिंसा न करेंगे।"

१९१९ (२१ जुलाई) में गांधीजी ने सरकार की और मित्रों की सलाह मानली और सविनय आज्ञाभंग स्थगित कर दिया और १९३४ (अप्रैल) में फिर उन्हें अपने आपके सिवा सबके लिए सविनय आज्ञाभंग स्थगित करना पड़ा। १९१९ में उन्होंने कहा कि "मुझपर यह आरोप लगाया गया है कि मैंने एक जलती हुई दियासलाई छोड़ दी है। यदि मेरा आकस्मिक प्रतिरोध एक जलती हुई दियासलाई है तो रौलट क़ानून का बनाना और उसको जारी रखने की ज़िद करना तो भारतवर्ष में हज़ारों जलती हुई दियासलाइयाँ बिखेर देने के समान है। सविनय प्रतिरोध की बिल्कुल नौबत न आने देने का उपाय है उस क़ानून को ही वापस ले लेना।' फिर सविनय आज्ञाभंग स्थगित करते समय ७ अप्रैल १९३४ को अपने पटना के वक्तव्य में उन्होंने कहा :—

"मुझे प्रतीत होता है कि सामान्य जनता को सत्याग्रह का पूरा सन्देश प्राप्त नहीं हुआ है, क्योंकि सन्देश उन तक पहुँचते-पहुँचते शुद्ध नहीं रह पाता है। मुझे यह स्पष्ट हो गया है कि आध्यात्मिक साधना का प्रचार जब अनाध्यात्मिक साधनों द्वारा किया जाता है तब उसकी शक्ति कम हो जाती है। आध्यात्मिक सन्देश तो स्वयं-प्रचारित होते हैं।

[illegible]

आज्ञाभग करने से रुक जायें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति की भारत की लडाई के हित में ऐसा करना ही सर्वोत्तम मार्ग है।

"मानव-जाति के इस सबसे बडे शस्त्र के विषय में मेरे मन में बहुत ही सर-गर्मी है।"

उसी पटना-वक्तव्य में १९३४ मे उन्होंने शोक प्रदर्शित किया कि "बहुत-से लोगो के आधे हृदय से किये हुए सविनय आज्ञाभग के कारण, चाहे उसका परिणाम कितना भी भयकर क्यो न हुआ हो, सामान्यतया न तो आतकवादियो के हृदय पर प्रभाव पडा और न शासको के हृदयो पर।" किन्तु आज उन्हे यह सतोष मिला है कि २५०० से अधिक ऐसे मित्र नजरबन्दी से छूट गये है, और उन्होंने अहिंसा पर अपना विश्वास भी प्रकट कर दिया है। हिंसा पर अहिंसा की विजय का सबसे बडा उदाहरण तो यह हुआ कि सरदार पृथ्वीसिंह ने, जिसे मरा हुआ मान लिया गया था, किन्तु जो वास्तव मे दूसरी जगह ले जाते समय हिरासत में से चलती रेल से कूदकर भाग गया था और तबसे सत्रह वर्ष तक भारत और यूरोप के बीच सरलता से फिरता रहा था, गाधीजी के हाथो में अपने आपको सौंप दिया, और उन्होंने भी उसे भारत की ब्रिटिश सरकार की जेल के सुपुर्द कर दिया, और वह अब फिर उसकी रिहाई के लिए ज़ोरदार प्रयत्न कर रहे है।[1]

१९१९ में सविनय आज्ञाभग को स्थगित करने के बाद गाधीजी को पजाब की घटनाओ के इस अप्रत्याशित ढग से घटित होने की बात जानकर नि सन्देह बडा आघात पहुँचा। उन्होंने स्वीकार किया कि उनसे 'हिमालय-जैसी बड़ी भूल हुई, जिसके कारण ऐसे अयोग्य लोग जो सच्चे सविनय आज्ञाभगकारी न थे, गडबड पैदा कर सके।"

जब १९१९ का शासन-सुधार-कानून बना, तब गाधीजी का यह मत था कि यद्यपि सुधार असतोषजनक और अपर्याप्त है, तो भी काग्रेस को सम्राट् की घोषणा की भावनाओ को मानकर प्रकट करना चाहिए कि उसे विश्वास है कि "सरकारी अधिकारी और जनता दोनो इस प्रकार सहयोग करेगे कि जिससे उत्तरदायी सरकार कायम होजायगी।" अब इससे उनके उस रुख का मुकाबिला कीजिए, जबकि उन्होंने १९३७ में प्रातीय शासन के दैनिक कार्य मे गवर्नरो द्वारा अपने विशेषाधिकारो का प्रयोग न करने और दखल न देने का आश्वासन सरकार से माँगा और हिंसा-सबधी कैदियो के छोडे जाने, उडीसा के गवर्नर के नियुक्त किये जाने, देश के जमींदार और भूमि-सम्बन्धी क़ानूनो का आमूल सुधार करने और बारडोली के किसानो को उनकी जब्तशुदा ज़मीनें वापस दिलाने के मामलो में उन्होने उस आश्वासन को कार्यान्वित करवाया।

१ सरदार पृथ्वीसिंह २२ सितम्बर १९३९ को रिहा कर दिये गये। —सपादक

अमृतसर-कांग्रेस में गांधीजी ने कहा था कि "सरकार के पागलपन का जवाब समझदारी से देना चाहिए, न कि पागलपन का जवाब पागलपन से।" आज वह देश को विश्वास दिला रहे हैं कि राजकोट में और दूसरी रियासतों में जहाँ-जहाँ शासकवर्ग पागल होरहा है वहाँ अन्त में जनता की ही विजय होगी, यदि वे अहिंसा पर दृढ रहें और पागलपन का जवाब समझदारी से दें।

गांधीजी का पूर्णतया मानव-सेवा के क्षेत्र से निकलकर विशुद्ध राजनैतिक क्षेत्र में पहुँच जाना धीरे-धीरे अज्ञातरूप से और इच्छा के बिना ही हुआ—यह नहीं कि वह इस क्षेत्र-परिवर्तन को जानते न थे, किन्तु वह इसको रोक न सकते थे। और जब वह ऑल इण्डिया होमरूल लीग में शामिल हुए और उसके अध्यक्ष बन गये तो उन्हें अपनी शर्तों के अनुसार कर्तव्य की पुकार सुनाई दी। उनकी शर्तें उन्हींके कथनानुसार ये थीं—"जिन कार्यों में उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त थी उनके, अर्थात् स्वदेशी, साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, और प्रान्तों के भाषा-आधार पर पुनर्विभाजन के कार्यों के प्रचार में सत्य और अहिंसा का कड़ाई से पालन किया जाय।" उनकी दृष्टि में सुधार तो गौण थे। इस प्रकार धर्म के मार्ग द्वारा सामाजिक सेवा से राजनीति में आजाना उनके लिए एक सरल परिवर्तन था। आज भी वह उसी मार्ग द्वारा राजनीति से फिर सामाजिक सेवा में चले आते हैं। वास्तव में उनकी दृष्टि में दोनों चीजें एक ही हैं, जैसे कि किसी सिक्के की दो बाजुयें होती हैं, और वह सिक्का स्वयं सत्य और अहिंसा की धातुओं से बना हुआ है, जो सारे धर्मों के मूल सिद्धान्त हैं।

गांधीजी के लिए असहयोग स्वयं कोई उद्देश्य नहीं है, किन्तु किसी उद्देश्य का साधन है। उनका सहयोग का हाथ उनके विरोधी के सामने हमेशा खुला रहता है, बशर्ते कि राष्ट्र के आत्म-सम्मान को उससे धक्का न लगता हो। १९२० में भी उनकी यही स्थिति थी और आज भी उनकी यही स्थिति है। १९२० में सरकार ने उसका तिरस्कार किया, १९३९ में सरकार ने उनको उत्साह के साथ अपनाना चाहा।

इसी प्रकार का परस्पर-विरोध गांधीजी के रुख में पूर्ण स्वाधीनता के विषय में १९२१ में और १९२९ में मिलता है। १९२१ में उन्होंने अहमदाबाद में कहा था :—

"इस प्रश्न को आप में से कुछ लोगों ने जैसा मामूली-सा समझ रक्खा है उससे मुझे दुःख हुआ है। दुःख इसलिए हुआ है कि इसमें जिम्मेदारी की कमी मालूम होती है। यदि हम जिम्मेदार स्त्री-पुरुष हैं तो हमें नागपुर और कलकत्ता के पिछले दिनों पर वापस पहुँच जाना चाहिए।

१९२८ में जब स्वाधीनता का प्रश्न फिर आगे लाया गया, तब गांधीजी ने निम्नलिखित अनूठी बात कही :—

आप स्वाधीनता का नाम अपने मुँह से उसी प्रकार लेते रहें जैसे मुसल्मान अल्लाह का या धार्मिक हिन्दू राम व कृष्ण का नाम लेते रहते हैं। किन्तु केवल

मन्त्र रटने से कुछ न होगा, जबतक कि उसके साथ अपने आत्मगौरव का भाव न होगा। यदि आप अपने शब्दो पर टिके रहने के लिए तैयार नही है तो स्वाधीनता कैसी होगी ? आखिरकार स्वाधीनता तो बहुत कष्ट-साध्य वस्तु है। वह केवल शब्दाडम्बर से नही आजाती।"

और १९२९ में २३ दिसम्बर को जब उन्होने लार्ड अरविन से बातचीत समाप्त की तो प्राय. यह चुनौती देदी कि अब वह देश को पूर्ण स्वाधीनता के लिए सगठित करेंगे।

१९२० मे सरकार ने यह आशा और विश्वास प्रकट किया कि "ऊँचे वर्ग और सामान्य वर्ग के लोग इतने समझदार है कि वे असहयोग को एक काल्पनिक और असम्भव योजना समझकर त्याग ही देंगे। यदि यह सफल होजाय तो परिणामय ही होगा कि सर्वत्र अव्यवस्था होजायगी, राजनैतिक अराजकता फैल जायगी और देश में जिन-जिनकी कोई माल-मिलकियत है उन-उनका सर्वनाश होजायगा।" सरकार ने कहा कि "असहयोग में द्वेप और नादानी को जाग्रत किया जाता है। उसके सिद्धान्त में कोई रचनात्मक बीज नही है।" वही सरकार आज उस आन्दोलन के जन्मदाता से, तथा उसके सर्वोत्तम भाग अर्थात् सविनयभंग के उत्तराधिकारी से सधि करने को उत्सुक है।

१९२१ मे जब लार्ड रीडिंग ने गाधीजी से बातचीत की—और वह बातचीत इसलिए असफल होगई कि कलकत्ता में लार्ड रीडिंग के नाम गाधीजी का तार कुछ देरी से पहुँचा—उस समय प्रत्येक व्यक्ति का अनुमान था कि गाधीजी एक अव्यावहारिक, बल्कि असम्भव आदमी है। किन्तु जब लार्ड अरविन ने १९३१ में दस साल बाद उनको और उनके छब्बीस साथियो को जेल से छोड दिया, तो प्रत्येक व्यक्ति ने उनके उचित बात मानने और मनवाने की तथा उनके उचित दृष्टिकोण रखने के गुणो की प्रशसा की। और जून १९३७ मे जब गाधीजी और लार्ड लिनलियगो के बीच सौजन्यपूर्ण सन्धि-चर्चा हुई तो उसमें भी यही सद्गुण फिर उसी प्रकार सामने आये। और उसी प्रकार परिणामकारी हुए, जिससे कि अन्त में काग्रेस ने पदग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

१९२२ मे चौरी-चौरा-काण्ड के कारण, जिसमें कि इक्कीस पुलिस के सिपाही और एक सब-इन्सपेक्टर और वह थाना जिसमे कि वे सब वन्द थे जला दिये गये, गाधीजी ने सविनय आज्ञा-भग के सारे कार्यक्रम को स्थगित कर दिया और १९३९ में राणपुर (उडीसा) में बेजलगेटी की हत्या के कारण भी उन्होने उडीसा की ईस्टर्न एजेन्सी के देशी राज्य के लोगो को वही सलाह दी। अहिंसा की सर्व-प्रधानता के मार्ग में स्वप्रतिष्ठा का खयाल कभी आडे नहीं आया है। १९२४ में गाधीजी के जेल से छूटने के बाद उन्होने एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होने कहा कि "मेरी राय

अब भी यही है कि कौंसिल-प्रवेश असहयोग के साथ असंगत है।" परन्तु १९३४ में जब सविनय आज्ञा-भंग स्थगित कर दिया गया तो कौंसिल-प्रवेश का उन्होंने समर्थन किया, और उसको ऐसी शर्तों के साथ मन्त्रिपद ग्रहण कर लेने तक पूरी तरह कार्यान्वित कर दिया, जिससे कि मन्त्रिगण रिफार्म्स एक्ट पर राष्ट्र की इच्छा व मांग के अनुसार, न कि अंग्रेजों की मर्जी के अनुसार, अमल करने में समर्थ हुए।

१९३४ में ७ अप्रैल को अपने प्रसिद्ध पटना-वक्तव्य में उन्होंने देशी राज्यों के विषय में लिखा कि "देशी राज्यों के बाबत कुछ व्यक्तियों ने जिस नीति का समर्थन किया, वह मेरी नीति से बिल्कुल भिन्न थी। मैंने इस प्रश्न पर कई घण्टे गम्भीर चिंता के साथ विचार किया है, किन्तु मैं अपनी सम्मति बदल नहीं सका हूँ।"

१९३९ में उन्होंने अपनी सम्मति पूरी तरह बदल ली, और इसका कारण यही था कि देशी राज्यों की परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गई। देशी राज्यों की जाग्रति ने उनकी सहानुभूति यहाँ तक प्राप्त कर ली है कि आज वह देशी राज्यों की जनता के पक्ष को अधिक-से-अधिक समर्थन दे रहे हैं, यहाँतक कि श्रीमती (कस्तूर बा) गांधी आज राजकोट की जेल में बन्द हैं और गांधीजी ने कह दिया है कि देशी नरेशों को या तो अपनी जनता को उत्तरदायी शासन देदेना पड़ेगा या मिट जाना पड़ेगा।

गांधीजी की आन्तरिक प्रेरणा

सत्य और अहिंसा मनुष्य के ऊँचे अनुभव की बातें हैं, जिनको समझने के लिए आदमी में उसी प्रकार की जन्मानसिद्ध अनुभव-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जैसी कि संगीत और गणित को या खद्दर-यन्त्र और साम्प्रदायिक एकता को समझने के लिए। अभ्यस्त संवेदन शक्ति से अन्तरात्मा की अनुभूतियाँ बढ़ जाती हैं, और गांधीजी सदा अन्तरात्मा की अनुभूति अन्तःप्रेरणा से निर्णय करते हैं न कि बुद्धि-प्रयोग से। सद्गुणी लोग सत्य को अन्तरात्मा की प्रेरणा से अनुभव कर लेते हैं। इसी प्रकार सद्गुणों की यह साकार मूर्ति भी सत्य का अनुभव अन्तरात्मा की प्रेरणा से किया करती है। और गांधीजी के चरण-चिन्हों पर चलनेवाले अनुयायियों का यह कर्तव्य होजाता है कि उनकी शिक्षाओं का अपने काल और अपने देश के नैतिक नियमों और सामाजिक व्यवहारों के अनुसार अर्थ लगावें और व्याख्या करें। अपनी आन्तरिक प्रेरणा से ही उन्होंने १९२२ में बारडोली में सविनय आज्ञा-भंग को सहसा स्थगित करने का, १९३० में नमक-सत्याग्रह चालू करने का, १९३४ में सविनय आज्ञाभंग बन्द करने का और १९३९ में देशी राज्यों सम्बन्धी नीति का निर्णय किया। उन्हें सहसा नये प्रकाश, नये ज्ञान का अनुभव होता है। कई बार उन्होंने कहा है कि मुझे प्रकाश नहीं मिल रहा है और उसको पाने के लिए मैं प्रार्थना करता रहता हूं और जब उन्हें प्रकाश मिल जाता है तो उनके अनुयायियों को वह विचित्र प्रतीत होता है, क्योंकि उनका

व्यावहारिक होना है उसमे ऐसी विशेषताएँ होना आवश्यक ही है। वास्तविक जीवन मे आदर्श को मिलाना, सावधानी मे साहस को जोडना, प्राचीनता-प्रेम मे क्रान्ति-भावना को संयुक्त करना, भूतकाल के आग्रह के साथ भविष्य की दौड को सम्मिलित करना, सार्वभौमिक-मानवता-वाद की तैयारी के साथ राष्ट्रीयता-विकास का सामंजस्य करना—अर्थात्, संक्षेप मे, बन्धुत्व-भावना के साथ मानवता का सामंजस्य करना और दोनों में से मानवता को विकसित करना, ऐसा ही कार्य है जैसा कि एक सुनिश्चित रेलगाडी के एञ्जिन के ब्रेक लगाना, और उसे अपनी पटरी पर उचित स्थानो पर ठहराते हुए और उचित समय पर चालू करते हुए आगे ले जाना। इस यात्रा में कही धीरे-धीरे चढाई चढनी होगी, कही शीघ्रता से उतरना होगा, कही सीधी समभूमि पर चलना होगा और कही असमतापूर्ण और चक्करदार मार्ग से जाना होगा। भारत को यह गौरव प्राप्त है कि उसका नेता एक ऐसा व्यक्ति है जो सामान्य जनता में से ही एक साधारण मनुष्य है, किन्तु आजकल की दुनिया जिसे देखकर चकित है। वह चमत्कारी बन गया है। वह है तो एक दुबला-पतला मनुष्य ही, किन्तु मानो वास्तविक आलोक है, स्वितप्रज्ञ है, बल्कि अवतार ही है, जिसने समाज के भीतर होनेवाले संघर्षों को उच्च नैतिकता और मानवता के स्पर्श से प्रभावित कर दिया है, और जो उस दूरवर्ती दिव्य घटना—मनुष्यजाति की महापंचायत और विश्व-संघ—के शीघ्र-से-शीघ्र घटित करने का प्रयत्न कर रहा है।

: ३६ :

गांधीजी का विश्व के लिए संदेश

कुमारी मॉड डी० पेट्री

[स्टॉरिंगटन, ससेक्स, लंदन]

मै एक अंग्रेज महिला हूँ, फिर भी ऐसे व्यक्ति के जीवन पर कुछ कहना चाहती हूँ जिसने खुद मेरे देश के चारित्र्य और जीवन-व्यवहार की आलोचना करने मे दया नही दिखलाई है और जिसने बहुत हद तक उसके विरोध में अपना जीवन लगाया है। फिर भी जब उन्हे भेंट की जानेवाली इस पुस्तक में मुझे कुछ लिखने के लिए कहा गया तो उसे मैने बेखटके स्वीकार कर लिया, क्योकि मै जानती हूँ कि यद्यपि महात्मा गांधी ने अपने देशवासियो की सेवा में ही सारा जीवन लगाया है तो भी उन्होने उससे बडे और बहुत व्यापक उद्देश, अर्थात मानव-जाति की सेवा के सिद्धान्त का भी समर्थन और प्रतिपादन किया है। और इस कारण मै मानती हूँ कि ऐसा करके उन्होंने आवश्यक रूप से उन तमाम देशो के आदर्शों की पूर्ति के लिए काम किया है, जो इस बात को जानते है कि हमें संसार के भाग्य-निर्माण में क्या खेल खेलना है और खुद अपने देश

के काम-काज में क्या हिस्सा लेता है। क्योंकि एक व्यक्ति की तरह एक राष्ट्र के मन में भी दो प्रकार की जीवन प्रेरणाये होती हैं। एक तो यह कि अपनी परंपरा और संस्कृति के अनुसार अपना जीवन कायम रक्खे और खुद अपने कल्याण की दृष्टि से उसे चलावे, और दूसरी यह कि तमाम राष्ट्रों और मनुष्य-जाति के इस महान् समाज का एक अंग बनकर अपना जीवन-यापन करे।

महात्माजी प्रत्येक मनुष्य और मानव-समाज के हृदय में उठनेवाली इस दूसरी विशाल प्रेरणा के एक सदेशवाहक और नेता हैं; इसलिए उनके जीवन का अकेला राजनैतिक पहलू मुझे और बातो की अपेक्षा महत्वहीन मालूम है। और इसलिए मैं यहाँ उनकी उन्हीं शिक्षाओं के बारे में कहने का साहस करूँगी, जो उन्होंने मानवी निःस्वार्थता और विश्वजनीन उदारता के विषय में निरंतर हमें दी हैं। क्योंकि मैं मानती हूँ कि इन शिक्षाओं पर भावी पीढ़ी को भी अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा।

उन्होंने खुद भी तो ऐसा ही कहा

"आज अगर मैं राजनीति में भाग लेता हुआ दिखाई देता हूँ तो इसका कारण यही है कि आज राजनीति हमसे उसी तरह चारों ओर लिपटी हुई है जैसे कि सांप के उसकी केंचुल, जिससे कि हजारों प्रयत्न करने पर भी हम नहीं छूट सकते हैं। मैं उस सांप के साथ कुश्ती लड़ना चाहता हूँ.. मैं राजनीति में धर्म की पुट देने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"[1]

अब एक ऐसे व्यक्ति के जीवन से जिसकी मुख्य दिशा सारे मानव-समाज का नैतिक पुनरुज्जीवन अर्थात् स्वार्थभाव, प्रतिस्पर्धा और निर्दयता का परस्पर सहिष्णुता और भाई-चारे के सहयोग में रूपांतर करना रही है, हम क्या अपेक्षा रख सकते हैं? समझदार आदमी की अपेक्षा तो ऐसे मामलों में निराशा की, विफलता की और असफलता की ही हो सकती है, और मैं यह कहने की धृष्टता करती हूँ कि गांधीजी अपनी बहुत-सी असफलताओं के बावजूद गौरवपूर्ण असफलता के एक उदाहरण हैं। सुधारकों को तो हमेशा इस बात के लिए तैयार रहना पड़ता है कि वे आदर्श के एक किनारे खड़े देखते-देखते खत्म हो जायँ क्योंकि हजरत मूसा की तरह वे अपने उद्देश्य की जमीन ही देख सकते हैं उसका [illegible] नहीं [illegible]

मैंने मेरी [illegible] गांधीजी ने [illegible] नहीं दीखते [illegible] हो जाते हैं।

क्योंकि जब एक बार महान [illegible]

१ रोम्यां रोलां कृत 'महात्मा गांधी' से उद्धृत।

उद्योग किया जाता है तब शरीर और आत्मा का शाश्वत युद्ध शुरू हो जाता है; आध्यात्मिक साधना की शुद्धि में मलीनता आजाती है, हमारा उद्देश धूमिल होकर छिपने लगता है और उसका प्रवर्तक मानवी राग-द्वेषो के अखाड़े में आ खिचता है, उसकी अच्छी-से-अच्छी योजनाओ को पूरा करने का काम नादान लोगो के हाथ में चला जाता है, उसके अत्यन्त शुद्ध प्रयत्न पूर्ण होते-होते माननीय राग-द्वेषो और स्वार्थ-साधना से कलुषित होने लगते हैं।

हाँ, ऐसे सग्राम में तो हार-ही-हार है। पर यही हार है जो, अन्त में, कारीगरों द्वारा तिरस्कृत पत्थरो की तरह नये जेरूसलेम अर्थात् नवीन धर्म की दीवारों की आधारशिला जैसी साबित होती है। हज़रत मूसा को अपने आदर्श की प्राप्ति तो नहीं हुई। उसके दर्शन अवश्य हुए। पर उसका लक्ष्य था सच्चा, इसलिए वहाँतक उनके पहुँच पानें या न पहुँच पाने से इसराईल के भविष्य पर कोई असर नही पडा। जिसके किनारे उन्होने अपना शरीर छोडा, उस सुरम्य स्थान में बैठकर दूसरे कइयो ने शान्ति-लाभ किया।

और इसलिए, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के प्रधान प्रयत्नों की गिनती करते समय हम उनकी असफलताओ की गिनती करते हैं, क्योंकि असफलता अनिवार्य है, मगर असफलता ही फल भी लाती है।

यहाँ मै गाधीजी की कुछ ऐसी लडाइयो का जिक्र करती हूँ, जिनमें उनकी हार तो हुई है, लेकिन जिनकी शिक्षायें सदा अमर रहेंगी।

सबसे पहले मशीन के खिलाफ उनकी लडाई को ही लीजिए, जिसका मुकाबिला तलवार या बन्दूक के सहारे नही, बल्कि चर्खे से करना उन्होने चाहा। कितना दया-जनक उद्योग था यह—जैसा कि उनके कितने ही अनुयायियो ने कहा भी! यह एक ऐसा प्रयत्न था जिसकी असफलता निश्चित थी, लेकिन फिर भी उसी चर्खे ने सत्य का—आत्म-शोधक सत्य के मधुर मत्र का—गुजार किया है, जिसे हम बहुतों ने कर्णों और बहुत दु खित हृदयों मे अनुभव कर लिया है।

मशीन का परिणाम मनुष्य-जीवन को मानवता-हीन बनाने में हुआ है। उसमें हमारे जीवन की अधिक श्रेष्ठता आ गई है, जिससे हिन्दुस्तान के तमाम चर्खे उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। लेकिन फिर भी सभव है हिन्दुस्तान का चर्खा हमें अपनी दासता का अहसास करा दे। वह जो सादे और अधिक मानवीय जीवन की पुकार मचा रहा है उसमें मनुष्य अन्त को खुद अपनी आदमियता का जोर जमाने म कामयाब हो, और इस भीमकाय राक्षस (मशीन) की सत्ता को घटाकर उसे उचित सीमा में ला रक्खे। उसे मानवीय आत्मा का मालिक नहीं, बल्कि सेवक बनाए और जब यह मनुष्य के शरीर और आत्मा के वास्तविक कल्याण के विरुद्ध जाने लगे तब वह उसकी लगाम खींचकर रक्खे और उससे जो क्षणिक भौतिक लाभ होते हैं उनसे भी मुंह मोड लेने के लिए कहे।

उद्योग किया जाता है तब शरीर और आत्मा का शाश्वत युद्ध शुरू हो जाता है; आध्यात्मिक साधना की शुद्धि में मलीनता आजाती है, हमारा उद्देश धूमिल होकर छिपने लगता है और उसका प्रवर्त्तक मानवी राग-द्वेषो के अखाड़े में आ खिचता है, उसकी अच्छी-से-अच्छी योजनाओ को पूरा करने का काम नादान लोगों के हाथ में चला जाता है, उनके अत्यन्त शुद्ध प्रयत्न पूर्ण होते-होते माननीय राग-द्वेषो और स्वार्थ-भावना से कलुषित होने लगते है।

हां, ऐसे सग्राम में तो हार-ही-हार है। पर यही हार है जो, अन्त में, कारीगरों द्वारा तिरस्कृत पत्थरो की तरह नये जेरूसलेम अर्थात् नवीन धर्म की दीवारों की आधारशिला जैसी साबित होती है। हजरत मूसा को अपने आदर्श की प्राप्ति तो नहीं हुई। उसके दर्शन अवश्य हुए। पर उनका लक्ष्य था सच्चा, इसलिए वहांतक उनके पहुंच पानें या न पहुँच पाने से इसराईल के भविष्य पर कोई असर नही पड़ा। जिसके किनारे उन्होंने अपना शरीर छोड़ा, उस सुरम्य स्थान में बैठकर दूसरे कइयों ने शांति-लाभ किया।

और इसलिए, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के प्रधान प्रयत्नों की गिनती करते समय हम उनकी असफलताओ की गिनती करते है; क्योंकि असफलता अनिवार्य है, मगर असफलता ही फल भी लाती है।

यहां मै गाधीजी की कुछ ऐसी लडाइयो का जिक्र करती हूं, जिनमें उनकी हार तो हुई है, लेकिन जिनकी शिक्षायें सदा अमर रहेंगी।

सबसे पहले मशीन के खिलाफ उनकी लडाई को ही लीजिए, जिनका मुक़ाबिला तलवार या बन्दूक के सहारे नही, बल्कि चर्खे से करना उन्होंने चाहा। कितना दया-जनक उद्योग था यह—जैसा कि उनके कितने ही अनुयायियो ने कहा भी! यह एक ऐसा प्रयत्न था जिसकी असफलता निश्चित थी, लेकिन फिर भी उसी चर्खे ने सत्य का—आत्म-शोधक सत्य के मधुर मत्र का—गुजार किया है, जिसे हम बहुतो ने कमीले और बहुत दु खित हृदयो मे अनुभव कर लिया है।

मशीन का परिणाम मनुष्य-जीवन को मानवता-हीन बनाने में हुआ है। उसमें हमारे जीवन की अधिक श्रेष्ठता आ गई है, जिसने हिन्दुस्तान के तमाम चर्खे उस पर विजय प्राप्त नही कर सकते। लेकिन फिर भी सभव है हिन्दुस्तान का चर्खा हमें अपनी दासता को महसूस करा दे। वह जो सादे और अधिक मानवीय जीवन की पुकार मचा रहा है उसमे मनुष्य अन्त को खुद अपनी आदिमता का जोर जमाने में कामयाब हो, और इस भीमकाय राक्षस (मशीन) की काया को घटाकर उसे उचित सीमा में ला रक्खे। उसे मानवीय आत्मा का मालिक नही, बल्कि सेवक बनावे और जब वह मनुष्य के शरीर और आत्मा के वास्तविक कल्याण के विरुद्ध जाने लगे तब वह उसकी लगाम खेंचकर रक्खे और उससे जो क्षणिक भौतिक लाभ होते है उनसे भी मुंह मोड़ लेने के लिए कहे।

अब दूसरी लड़ाई लीजिए, जो उन्होंने मनुष्य और पशु के सम्बन्ध में की जाने-वाली निर्दयताओं के विरुद्ध ठानी थी और इसमें उन्हें, दूसरे देश के लोगों की तरह, अपने देश के लोगों से भी लड़ाई और विवाद में पड़ना पड़ा। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि 'अपनी जाति से बाहर के प्राणियों का भी ध्यान रक्खो और प्राणी-मात्र के साथ अपनी एकात्मता का अनुभव करो।'

और जहाँ कि उन्होंने प्राणिमात्र को पवित्र मानने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, वहाँ उन मूक प्राणियों के कष्टों को देखकर, जो वास्तव में कत्ल नहीं किये जा रहे थे, बल्कि जिनकी अच्छी तरह से सम्हाल नहीं की जा रही थी, उनके हृदय ने खून के आँसू बहाये हैं।

उनकी तीसरी और सबसे बड़ी लड़ाई हुई है एक के दूसरे पर दबाने और हिंसा की भावना के खिलाफ। लेकिन इसमें वह मनुष्य के पाशविक बल और राग-द्वेष रूपी दानव के सामने बारूद से भी अधिक निःशस्त्र होकर आगे बढ़ गये हैं। उनके पास एक ही हथियार है—अहिंसा।

लेकिन वह अपने शत्रुओं द्वारा ही नहीं, बल्कि इससे अधिक दुःख की बात क्या होगी कि, अपने मित्रों के द्वारा बारबार असफल बनाये गये हैं। अब वह इस उलझी हुई शान्तिवाद की समस्या को सुलझाने के लिए जोरों से जुट पड़े हैं कि इस हिंसामय जगत् में एक अहिंसाधर्मी कैसे जीवित रहे और इस हिंसा-प्रधान जगत् में स्वयं अहिंसा भी कैसे अपनी हस्ती कायम रख सके?

जो लोग यह अनुभव करना चाहें कि वे कौनसी समस्या हैं, जिन्होंने महात्मा-जी को निरन्तर व्याकुल कर रक्खा है, तो उन्हें 'यंग इण्डिया' (अब हरिजन) पढ़ना चाहिए।

और वे देखेंगे कि यही वह विषय है जिसमें महात्माजी की असफलता भी विशेष अच्छी तरह दिखाई देती है, क्योंकि वह फिर-फिर यह कहते हैं कि 'अहिंसा-सिद्धान्त का पूरा-पूरा अमल वास्तव में अबतक किया ही नहीं गया है।'

और इसलिए वह कहते हैं कि अपने आपको जानो। क्योंकि जबतक हम शरीर-बल के द्वारा अपनी आत्मा की रक्षा करना बन्द न करेंगे, तबतक हम आत्मबल का सच्चा अनुभव नहीं [illegible]

[illegible] बिल्कुल [illegible]

कि यह तो आदर्श अवस्था हुई। तो मैं कहूँगा कि हाँ, यह आदर्श अवस्था ही है।"¹

इसमे हमें उनकी श्रद्धा का और अपनी सफलता की प्रत्यक्ष मान्यता का एवं अपनी अहिंसा-नीति के सम्बन्ध मे उनके दृढ विश्वास का और उसके साथ ही इस बात के निश्चय का भी कि उसकी सम्यक् पूर्ति का समय अभी नही आया है—वह आ भले ही रहा हो—अच्छी तरह पता चलता है।

तब क्या हम इस बात का अफसोस करे, जैसा कि एक महान् कवि ने किया है, कि गाधीजी ने अपनी शिक्षा और अपने आदर्शों को मनुष्य-जीवन के राग-द्वेषादि के अखाडे मे इस तरह उतारा है जिससे उनकी आज तो असफलता—भले ही वह आंशिक हो—प्रकट होती है? इसका जवाब 'हा' भी है और 'नही' भी।

'हाँ', तो इसलिए कि मनुष्य को यह अच्छा नही लगता कि वह श्रेष्ठ मानवीय आदर्शों के दिवालिया होजाने पर विश्वास करे।

'हाँ' इसलिए भी कि किसीको यह देखना बुरा लगता है कि एक पैगम्बर भी लडाई-झगडो मे खीचातानी हो—वह उस से ऊपर उठा हुआ न रहता हो, जैसे कि कुछ उदाहरण देखे भी जाते हैं।

'नही' इसलिए कि इस संघर्ष की पशुता ने ही मनुष्यो को आँखे खोलकर उन आदर्शों को देखने के लिए मजबूर किया है, जो अन्यथा कुछ थोडेसे विचारशील लोगो के मस्तिष्क में ही शांति के साथ मजे में सोये पडे होते। यहूदियो को स्वयं ईसा पर प्रहार करने के पहले उनके चेहरे की ओर देखना पडता था। और निश्चय ही मनुष्यो को नम्रता और उदारता का संदेश तो सुनना ही होगा, भले ही वे उसे मानने से इन्कार कर दे।

लडाई में तो घाव झेलने ही पडते हैं। उनके बिना भला लडाई कैसे लडी जा सकती है, और न ही हम, जब हमारी बारी आये, वार किये बिना रह सकते हैं भले ही हमारा पलटवार प्रहार नगण्य ही क्यो न हो। यही कारण है जो महात्मा के सार्वजनिक संग्राम में हमें अच्छी और बुरी दोनो बातें देखने को मिलती हैं।

किन्तु इन गुजरी हुई प्रतिक्रियाओं और लडाई-झगडो के बावजूद [illegible] ने ही जो सांस्कृतिक सन्देश दिया है, जो कि भारत में सारी मनुष्य जाति के लिए है, [illegible] है। [illegible] [illegible], [illegible] है [illegible] में।

[illegible]

१. 'यंग इंडिया', अक्तूबर १९२[illegible]

राजनीतिज्ञ हूँ और सन्त बनने का भगीरथ यत्न कर रहा हूँ।" यह मानवीय अपूर्णता का एक नम्रतापूर्ण, घरेलू और आधुनिक ढग का स्वीकार है, जो कि आत्मानुशासन के द्वारा निश्चित रूप मे पूर्णता के शिखर की ओर उत्तरोत्तर बढने का यत्न कर रहा है। पिछले पचास वर्षों की 'सत्य-शोध' की अपनी यात्रा में जो दोष उनके कार्यों मे प्रकट हुए है और जो निर्णय की भूले उनसे हुई है, जिन्हे कि बार-बार उन्होंने कबूल किया है, उनका स्पष्टीकरण उनके इस कथन से हो जाता है। उन्होंने अपने इस निरन्तर आग्रह मे कि "सत्यान्नास्ति परो धर्म" कभी कसर नही की है और इस बात को जानने और मानने के लिए यह जरूरी नही है कि कोई उनके परिस्थिति सम्बन्धी या उसके मुकाबिला करने के सर्वोत्तम साधन-सम्बन्धी विचारो से सहमत ही हो। और हम एक मनुष्य से और क्या माँग सकते है, सिवा इसके कि वह अपने आदर्श की ओर बराबर ध्यान लगाये रहे और अपने विश्वास पर अटल रहे। अगर वह कही किसी समय लडखडाता है या अटकने लगता है, तो उसे ऐसी कठिन यात्रा के मनुष्यमात्र को होनेवाले अनुभवो के सिवा और क्या कह सकते है ? ऐसे समय गाधीजी हमसे यह विश्वास करने के लिए कहते है कि ये तो हमारे लिए चेतावनियाँ है, जिनसे कि हम अपनी गलतियो को सुधार सके और अपने निश्चित ध्येय की ओर ज्यादा सही तरीके से आगे बढ सके।

अपनी इस पवित्र यात्रा के दरमियान उन्होने बहुत-से पाठ सीखे है और बहुतेरे व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किये है, जो इस पथ के तमाम पथिको के लिए बडी सपत्ति का काम देंगे। केवल मत्रोच्चार की उनके नजदीक कोई कीमत नही है। उनकी राय में उनमे मानवीय जीवन की आवश्यकता की पूर्ति और मामूली व्यवहार में उपयोगी बनने का भाव भी अवश्य होना चाहिए। फिर उनका कहना है कि वे ऐसे हो जो सब जगह लागू हो सके। और यदि वे ऐसे नहीं है तो कहना होगा कि वे मुख्यत असत्य है। इसलिए अहिंसा का जो अर्थ जीवन के व्यवहार-नियम के तौर पर हमारे सामने उन्होने रक्खा है, उसपर हमे आश्चर्य नही होना चाहिए।

वह कहते है—"जो दूसरो के प्रति अपने व्यवहार में अहिंसा (जिसको दूसरी जगह गाधीजी ने सत्य का 'परिपक्व फल' कहा है) का आचरण नही करते और फिर भी बडी बातो में उसका उपयोग करने की आशा रखते है, वे बडी गलती पर है। पुण्य की तरह अहिंसा की शुरुआत भी घर मे होनी चाहिए। और अगर एक व्यक्ति को अहिंसा की तालीम देने की जरूरत है, तो उससे भी अधिक एक राष्ट्र के लिए उसकी तालीम जरूरी है। यह नही हो सकता कि हम अपने घर-आँगन में तो अहिंसा का व्यवहार करे और बाहर हिंसा का। नही तो कहना होगा कि हम अपने घर-आँगन मे भी दरअसल अहिंसक नही है। हमारी अहिंसा अक्सर दिखाऊ होती है। आपकी अहिंसा की कसौटी तभी होती है जब आपको किसी प्रतिकार का सामना करना पडे।

आजकल तलवार खडखडानेवाले लोग ध्वनि-वाहको (माइक्रोफोन) के द्वारा ससार को आदेश देते है और बम-गोले गिराकर तथा जहरीली गैस छोडकर उनके आदेश को विराम देते है। वे दूसरे राष्ट्रो पर हुई अपनी विजय की शेखी बघारते फिरते है और आजादी के खडहरो में अकडकर चलते है। और लोग एक ओर उनके इस अभिमान के साधन बनते है तो दूसरी ओर उनकी हिंसा के शिकार। कहाँ यह और कहाँ इस भारतीय गुरु की धीमी वाणी, उनका आत्मिक शक्तियो पर दिया हुआ जोर और शान्ति, प्रेम तथा बन्धुता के प्राचीन सन्देश का पुन स्मरण। सदा की तरह अब भी नवयुग का यह सन्देश हमको पूर्व से मिला है। क्या हममें उसे सुनने की अक्ल और उसे सीखने की समझदारी है? गाधीजी यह ढोग नही करते कि उनका सन्देश मौलिक है। अपनी 'आत्म-कथा' में वह कहते है—"जिस ऋषि ने सत्य का साक्षात्कार किया है उसने अपने चारो ओर व्याप्त हिसा में से अहिंसा ढूंढ निकाली है और गाया है—हिसा असत है और अहिसा सत् है।"

नवयुवक लोगो में एक पीढी या उससे कुछ पहले जैसी हवा बही थी वैसी अब भी वह चली है। वे धर्म का मजाक उडाते है और यह कहकर उससे इन्कार करते है कि यह, इससे भी अधिक हीनकोटि का नही तो कम-से-कम मानवीय अज्ञान और मूर्खता का अधविश्वासपूर्ण अवशिष्ट-मात्र है। नि सन्देह हिन्दुस्तान में भी एक ऐसा ही मिथ्या दर्शन फैल रहा है और बहुत-से नवयुवक और नवयुवतियाँ भूसी के साथ गेहूँ को भी फेंक देने की कोशिश कर रहे है।

क्या ही अच्छा हो कि वे अपने महान् ऋषि-मुनियो के वचनो का मनन करे और उस प्राचीन ज्ञान के वास्तविक अर्थ को नये सिरे से ढूँढने का प्रयत्न करे। परन्तु यदि वे अपने प्राचीन पूर्वजो के विद्या और ज्ञान से लाभ नही उठाना चाहते तो, कम-से-कम उन्हे, अपने ही समय के, इस महान् राष्ट्रीय नेता के ज्ञान और शिक्षा पर तो अवश्य ध्यान देना चाहिए, जबकि वह अधिकारयुक्त वाणी से कहते है

"धर्म हम लोगो के लिए कोई बेगानी चीज नही है। हमी में से उसका विकास होना है। हमेशा वह हमारे भीतर विद्यमान है। कुछ के अन्दर जाग्रत रहता है, कुछ के अदर बिल्कुल सुप्त, मगर है हरेक में जरूर। और यह धार्मिक भाव जो कि हमारे अदर है उसे चाहे हम बाहरी साधना की सहायता से, चाहे आन्तरिक विकास क्रिया-द्वारा जाग्रत करे, बात एक ही है। पर हा उसे जाग्रत किये बिना गति नही है—यदि हम किसी काम को सही तरीके से करना चाहते हो या किसी स्थायी चीज को पाना चाहते हो।' इसी तरह वह और कहते है—'अहिसा सत्य की रूह है और अहिसा ही परमधर्म है। आगे वह और भी कहते है—हम चाहे इसे मान सके या न मान सके—'यदि तुम अपने प्रेम का—अहिसा का—परिचय अपने तथाकथित शत्रु को इस तरह से देते हो, जिसकी अमिट छाप उसपर बैठ जाय, तो वह अपने प्रेम का परिचय दिये

बिना नहीं रह सकता।"

टॉल्स्टॉय के बाद ही इतनी जल्दी जिस ज़माने ने एक दूसरा महान् 'मानवता-का पुजारी पैदा किया है उसमें रहना कितना अच्छा है। अहा! ये साधु-सन्त, ये पैग़म्बर और भक्तगण—फिर वे छोटे हों या बड़े—किस प्रकार वातावरण को स्वच्छ निर्मल बनाते हैं और आसपास फैले हुए 'सघन तिमिर' में प्रकाश चमकाते हैं! इन आध्यात्मिक महत्तरों के बिना हमारा क्या हाल हो, जो कि युग-युग में और पुनः-पुनः हमारे अन्तःकरण की शुद्धि में सहायक बनने के लिए जन्म लेते हैं, जिससे कि हम अपनी दैवी प्रकृति को पुनः पहचान लें और हमें अपनी मानवता-शक्ति को फिर एक बार जगाने का प्रोत्साहन मिले एवं अपने लक्ष्य के ऊँचे शिखर तक चढ़ने का दृढ़ निश्चय और साहस हममें पैदा हो?

ऑलिव श्रीनर ने अपने एक गद्यकाव्य में 'सत्यरूपी पक्षी' की खोज में प्रयत्नशील साधक का एक चित्र खींचा है। उसे उस पक्षी की झलक एक बार दिखाई दी। उसकी तलाश में वह पर्वत-शिखर पर पहुँचता है, जहाँ जाकर उसका शरीर छूट जाता है। उसके हाथ में उस पक्षी का गिरा हुआ एक पर है जिसे वह छाती पर लिपटाये हुए सोया है। गांधीजी अपने सतहत्तर साल में जो सत्य हमारे लिए छोड़ गये हैं वह हमारे लिए ऐसा ही एक पर सिद्ध हो, और हम सचमुच भाग्यशाली होंगे अगर अपनी मृत्यु के समय उसे अपनी छाती से लगाये और अपनाये रहें।

आजकल उधर बम-वर्षक वायुयानों से लोग मशीनगनों (मशीनगन) से आग संसार को भस्म देते हैं और जल-सेनाएँ विनाश तथा जहरीली गैस छोड़कर अपने आदेश को विनाश देते हैं। वे इसके राष्ट्रों पर हुई अपनी विजय की डींगें बघारते फिरते हैं और आज़ादी के नारों में आनन्द मनाते हैं। और लोग एक ओर उस इस अभिमान के मारे मरते हैं जो इतनी और ऐसी हिंसा के शिकार। यहाँ एक ओर वहाँ इस भारतीय संत की धीमी वाणी, उसका आत्मिक शक्तियों पर दिया हुआ ज़ोर और शान्ति, प्रेम तथा करुणा के प्राचीन सन्देश का पुनःस्मरण। सदा की तरह अब भी तारुण्य का यह सन्देश हमको पूर्व से मिला है। क्या हममें उसे सुनने की अक्ल और उसे सीखने की समझदारी है? गांधीजी यह ढोंग नहीं करते कि उनका सन्देश मौलिक है। अपनी 'आत्म-कथा' में वह कहते हैं—"जिन ऋषि ने सत्य का साक्षात्कार किया है उनने अपने चारों ओर व्याप्त हिंसा में से अहिंसा ढूंढ निकाली है और गाया है—हिंसा असत् है और अहिंसा सत् है।"

नवयुवक लोगों में एक पीढ़ी या उससे कुछ पहले जैसी हवा बही थी वैसी अब भी वह चली है। वे धर्म का मजाक उड़ाते हैं और यह कहकर उससे इन्कार करते हैं कि यह, इससे भी अधिक हीनकोटि का नहीं तो कम-से-कम मानवीय अज्ञान और मूर्खता का अन्धविश्वासपूर्ण अवशिष्ट-मात्र है। निःसन्देह हिन्दुस्तान में भी एक ऐसा ही मिथ्या दर्शन फैल रहा है और बहुत-से नवयुवक और नवयुवतियाँ भूसी के साथ गेहूँ को भी फेंक देने की कोशिश कर रहे हैं।

क्या ही अच्छा हो कि वे अपने महान् ऋषि-मुनियों के वचनों का मनन करें और उन प्राचीन ज्ञान के वास्तविक अर्थ को नये सिरे से ढूंढने का प्रयत्न करें। परन्तु यदि वे अपने प्राचीन पूर्वजों के विद्या और ज्ञान से लाभ नहीं उठाना चाहते तो, कम-से-कम उन्हें, अपने ही समय के, इन महान् राष्ट्रीय नेता के ज्ञान और शिक्षा पर तो अवश्य ध्यान देना चाहिए, जबकि वह अधिकारयुक्त वाणी से कहते हैं

"धर्म हम लोगों के लिए कोई बेगानी चीज़ नहीं है। हमी में से उसका विकास होना है। हमेशा वह हमारे भीतर विद्यमान है। कुछ के अन्दर जाग्रत रहता है, कुछ के अंदर बिलकुल सुप्त, मगर है हरेक में ज़रूर। और यह धार्मिक भाव जो कि हमारे अंदर है, उसे चाहे हम बाहरी साधनों की सहायता से, चाहे आन्तरिक विकास क्रिया द्वारा जाग्रत करें, बात एक ही है। पर हाँ, उसे जाग्रत किये बिना गति नहीं है—यदि हम किसी काम को सही तरीके से करना चाहते हों या किसी स्थायी चीज़ को पाना चाहते हों।" इसी तरह वह और कहते हैं—"अहिंसा सत्य की रूह है और अहिंसा ही परमधर्म है।" आगे वह और भी कहते हैं—हम चाहे इसे मान सकें या न मान सकें—"यदि तुम अपने प्रेम का—अहिंसा का—परिचय अपने तथाकथित शत्रु को इस तरह से देते हो, जिसकी अमिट छाप उसपर बैठ जाय, तो वह अपने प्रेम का परिचय दिये

दूसरे प्राणियों को, चाहे वे कितने ही तुच्छ और नगण्य क्यों न हों, अपनी शरण में ले, उनकी हमेशा रक्षा करे और उनकी कभी हत्या न करे। गांधीजी का नीति-अनीति-सम्बन्धी विवेक कष्टसाध्य होता है, परन्तु वह उतना ही अचूक भी होता है। और पश्चिम की घोर नीति-हीनता की भर्त्सना में कभी उनके इतना जोर नहीं आता है जबकि वह जन्तुओं की चीरा-फाड़ी का जिक्र करते हैं तब उनकी वाणी में आजाता है। यह एक ऐसी घिनौनी प्रथा है जिसको, वे सरकारें स्वीकार किये हुए हैं, जो एक तरफ़ भावुक और दूसरी तरफ हृदय-हीन हैं, जो नैतिकता में वैसी ही अंधी हैं जैसी कि उदारता में हीन।

फिर भी इस 'अवतारी व्यक्ति' के प्रति यूरोपियनों ने जैसा व्यवहार किया है वह उनके लिए भारी-से-भारी शर्म की बात रहेगी। कभी अपमानित हुए, धक्के-मुक्के दिये गये, कभी धमकियां दी गईं, कभी पीटे गये और एकबार तो डर्बन में गोरों के एक गिरोह ने पत्थर मारते-मारते उनका दम-सा निकाल दिया। परन्तु वह कभी नहीं खीझे, बल्कि अपने अटल और दृढ़ कदमों से अपनी स्वर्गीय कल्पनाओं की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। इस नन्ही-सी जीर्ण-शीर्ण देह में कितनी शक्तिशालिनी आत्मा निवास करती है! चाहे दुनिया उनका जयघोष करे चाहे उनके प्रति घृणा करे, उनपर कुछ भी असर नहीं होता। उनका व्यक्तिगत गौरव इतना सर्वोपरि है कि वह प्राणघातक शारीरिक यातनाओं को भी बिना अशान्त और क्षुब्ध हुए सह सकते हैं। कभी यहां तो कभी वहां लाये जाने में, कभी खचाखच भरी रेलगाड़ी की खिड़की में खींचे जाने में, तो कभी रोग से कराहते हुए मज़दूरों का पाखाना साफ करने में और कभी 'अछूतों' की सेवा करने में मानो वे उनके निकट-से-निकट सम्बन्धी हों उनकी पूर्ण सरलता और पूर्ण सज्जनता में कभी कुछ भी फर्क नहीं आया। उनमें आध्यात्मिकता का वह मिथ्याभिमान नहीं पाया जाता जो हमारे यहांके [illegible] में पाया जाता है चाहे वे पारमार्थिक हों या दुनियवी [illegible] है और वह एक क्षणभर में अपने विचार [illegible]। वह ऐसे [illegible] स्वभाव से [illegible] है [illegible] हुए गांधीजी के [illegible] में यही [illegible] विरुद्ध अनेक प्रकार के [illegible] है [illegible] और [illegible] के बीच में वह [illegible]

अगर कभी किसीने ईसा का [illegible] व्यवहार [illegible] है [illegible] ऋषि ने किया है। सम्भवतः यही कारण है कि ईसा के [illegible]

जवान पर रहते है, हालाकि वह इतने अधिक स्पष्ट विचारक ह, इतने अविरुग्ने और ईमानदार मनवाले है कि हमारे पश्चिम के नीति-नियमो और ब्रह्मविद्या के आविष्कारो के कायल होने को तैयार नही है। "मेरी बुद्धि इस बात पर विश्वास नही करती कि ईसा ने अपनी मृत्यु और अपने रक्त से दुनिया के पापो का प्रायश्चित्त कर लिया है। रूपक में कहे तो इसमें कुछ सचाई हो सकती है।" वह ईसाई मत के आत्मबलिदान के आदर्श के प्रति बहुत आकर्षित हुए है और ईसा के 'गिरि-प्रवचन' और उसके अनगिनती निष्कर्षो ने उनपर गहरी छाप छोडी है। नीत्से की एक मर्मवेधी विरोधाभास-मूलक उक्ति है—"दुनिया मे ईसाई तो केवल एक ही पैदा हुआ है और वह तो क्रूस पर लटका दिया गया।" यदि यह सनकी दार्शनिक इस दूसरे गुरु के जीवन-कार्यो को देखने के लिए जीवित रहता तो सभवत उसने अपने इस प्रत्याग व्यग में कुछ सशोधन कर दिया होता।

अत्यन्त सज्जनोचित कोमलता और दृढ लगन के साथ गाधी ने जुलू-बलवे के नाम से पुकारे जानेवाले उस अक्षम्य 'नरमेध' मे घायलो और बीमारो की सेवा-सुश्रूषा की थी और जब वह अफ्रीका के 'उन गभीर निर्जन स्थानो' में चल रहे थे, उन्होंने ब्रह्मचर्य-पालन का व्रत लिया। क्या गाधीजी की तरह ईसामसीह भी अपना घर-बार छोड कर इस विश्वास पर नही चले गये थे कि—"जो परमात्मा से मित्रता करना चाहता है उसे अकेला ही रहना चाहिए?" एक साहसपूर्ण उद्‌गार और सुनिए—"ईश्वर हमारी तभी मदद करता है जब हम अपने पैरो के नीचे दबी धूल से भी तुच्छ अपने आपको समझने लगें। कमज़ोर और असहाय को ही ईश्वरीय सहायता की आशा करनी चाहिए।"

इस पृथिवी पर कौन-कौनसे प्रभाव हमारे मानवीय भाग्य का निर्माण करेंगे, यह अभीसे कह देना कठिन है। 'रूपक में कहे तो' निष्पाप और पाप-भीरु इन दोनों प्रकार पुत्रो को दैव से ही मानो कुछ भेद प्राप्त हुआ, जिससे पाताल-लोक के असुर कीलित हो रहे हैं। अगर कही हम जान जायें कि उनकी जादूभरी वाणी और देवताओ जैसे स्वभाव से सतयुग फिर से आ सकता है तो जाने कबसे लाछित और क्षुब्ध हमारी मानव-जाति के सौभाग्य का दिन खिल जाय। गाधीजी ने अपने चार हिन्दुस्तानी कार्यकर्त्ताओ से जब पूछा कि क्या वे मृत्यु के समान भीषण और काले प्लेग से पीडित ।द।मध। की सेवा-सुश्रूषा करने चलेगे, तो उन्होने सीधा-सा जवाब दिया—"जहाँ ।प जायँगे, हम भी साथ चलेगे।"

जनरल डायर के द्वारा अमृतसर में जो नृशस और रोमाचकारी कृत्य—एक भीषण युद्ध का भीषण परिणाम—किया गया, उस पर यदि गाधीजी का ईश्वर-प्रेरित सौजन्यमात्र हम अग्रेजो के हृदयो को दु खी और टुकडे-टुकडे कर सकता है तो उन्होंने हमारे देश में पैदा होकर न जाने क्या-क्या अमूल्य सेवायें की होती। उन्होने एक बार

...न यह साबित कर दिखाया होता कि तलवार पर 'नय' शासन नहीं कर सकता और तलवार की रक्त-रंजित विजय से भी अधिक शक्ति दुनिया में मौजूद है।

× × × ×

यह हमें कैसे सहन हो सकता है कि हमारी अंग्रेज जाति का उज्ज्वल नाम "हिंसक मनुष्यों की बर्बर और पाशविक शक्ति के कारण उच्चता से गिराया जाकर धूल में मिला दिया जाय। मगर भगवान् के नेत्र से गांधीजी आर-पार देखते हैं। हमारी पश्चिमी सभ्यता का चापल्य, धनों पर उसका अवलम्बन, द्रव्य का उसका लालच, अधिकार की उसकी तृष्णा, जिन्दगी की बाहरी और थोथी बातों का उसका मोह—मानो उन आँखों ने इन सबको भेद कर देखते हैं। निर्दोष जंगली जानवरों को मारते-मारते उनके प्रतिफल में जो हमारी आदत भी तदनुकूल बन गई है, गांधी उसे देखते हैं। वह देखते हैं हमारी यह संस्कृति जो भक्ति-उपासना को नहीं जानती, जो चतुर्दिक् व्याप्त जीवन की कविता को गिराकर धूल कर देती है और खेत की घास की मानिंद मूल्यहीन बना देती है।

सन् १९२२ में हिन्दुस्तान में चौरीचौरा में जनता की एक सामूहिक हिंसा का मर्मान्तक नमूना पेश होगया। गांधीजी ने उसी दम अपना सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द कर दिया और अनशन का एक भीष्म व्रत ले लिया। यह आचरण महात्माजी की उस महान् आत्मा के योग्य ही था। चौदहवीं शताब्दी की एक छोटी-सी किन्तु ठोस धार्मिक राजनैतिक पुस्तक 'पियर्स प्लोमैन' में एक वाक्य आया है जिसे मैं अर्से से अपने साहित्य का एक अनमोल रत्न मानता आया हूँ। अपने जिलरते जी की सराहना के इस लेख के अन्त में उसे रखना अनुचित न होगा—

"जब उसे सुई की नोक जैसी तीक्ष्ण या मार्मिकता के साथ तड़पते हुए मानव के रक्त और मांस का हरण किया तब मेरा प्रेम पीपल-पत्र से भी हल्का था'।

: ३६ :

चीन से श्रद्धांजलि

एन क्युओ ते-ची

[चीनी राजदूत लन्दन]

मूल अंग्रेजी इस प्रकार है —

ज़बान पर रहते हैं, हालाकि वह इतने अधिक स्पष्ट विचारक है, इतने अधिक सच्चे और ईमानदार मनवाले है कि हमारे पश्चिम के नीति-नियमो और ब्रह्मविद्या के आविष्कारो के कायल होने को तैयार नही है। "मेरी बुद्धि इस बात पर विश्वास नहीं करती कि ईसा ने अपनी मृत्यु और अपने रक्त से दुनिया के पापो का प्रायश्चित्त कर लिया है। रूपक में कहे तो इसमें कुछ सचाई हो सकती है।" वह ईसाई मत के आत्मबलिदान के आदर्श के प्रति बहुत आकर्पित हुए है और ईसा के 'गिरि-प्रवचन' और उसके अनगिनती निष्कर्षो ने उनपर गहरी छाप छोडी है। नीत्शे की एक मर्मभेदी विरोधाभास-मूलक उक्ति है—"दुनिया मे ईसाई तो केवल एक ही पैदा हुआ है और वह तो क्रूस पर लटका दिया गया।" यदि यह सनकी दार्शनिक इस दूसरे गुरु के जीवन-कार्यो को देखने के लिए जीवित रहता तो सभवत उसने अपने इन प्रख्यात व्यग मे कुछ सशोधन कर दिया होता।

अत्यन्त सज्जनोचित कोमलता और दृढ लगन के साथ गाधी ने जुलू-बलवे के नाम से पुकारे जानेवाले उस अक्षम्य 'नरमेध' में घायलो और बीमारो की सेवा-सुश्रूषा की थी और जब वह अफ्रीका के 'उन गभीर निर्जन स्थानो' में चल रहे थे, उन्होंने ब्रह्मचर्य-पालन का व्रत लिया। क्या गाधीजी की तरह ईसामसीह भी अपना घर-बार छोड कर इस विश्वास पर नही चले गये थे कि—"जो परमात्मा से मित्रता करना चाहता है उसे अकेला ही रहना चाहिए?" एक साहसपूर्ण उद्गार और सुनिए—"ईश्वर हमारी तभी मदद करता है जब हम अपने पैरो के नीचे दबी धूल से भी तुच्छ अपने आपको समझने लगें। कमज़ोर और असहाय को ही ईश्वरीय सहायता की आशा करनी चाहिए।"

इस पृथिवी पर कौन-कौनसे प्रभाव हमारे मानवीय भाग्य का निर्माण करेंगे, यह अभीसे कह देना कठिन है। 'रूपक में कहे तो' निष्पाप और पाप-भीरु इन दोनो प्रकाश-पुत्रो को दैव से ही मानो कुछ भेद प्राप्त हुआ, जिससे पाताल-लोक के असुर कीलित हो रहे हैं। अगर कही हम जान जायँ कि उनकी जादूभरी वाणी और देवताओ जैसे स्वभाव से सतयुग फिर से आ सकता है तो जाने कबसे लाछित और क्षुब्ध हमारी मानव-जाति के सौभाग्य का दिन खिल जाय। गाधीजी ने अपने चार हिन्दुस्तानी कार्यकर्त्ताओ से जब पूछा कि क्या वे मृत्यु के समान भीषण और काले प्लेग से पीडित आदमियो की सेवा-सुश्रूषा करने चलेगे, तो उन्होने सीधा-सा जवाब दिया—"जहा आप जायँगे, हम भी साथ चलेगे।"

जनरल डायर के द्वारा अमृतसर में जो नृशस और रोमाचकारी कृत्य—एक भीषण युद्ध का भीषण परिणाम—किया गया, उस पर यदि गाधीजी का ईश्वर-प्रेरित सौजन्यमात्र हम अग्रेजो के हृदयो को दुखी और टुकडे-टुकडे कर सकता है तो उन्होंने हमारे देश में पैदा होकर न जाने क्या-क्या अमूल्य सेवाएँ की होती। उन्होने एक बार

पुन यह साबित कर दिखाया होता कि संसार पर 'भय' शासन नहीं कर सकता और तलवार की रक्त-रंजित विजय से भी अधिक शक्ति दुनिया में मौजूद है।

× × × ×

यह हमें कैसे सहन हो सकता है कि हमारी अंग्रेज जाति का उज्ज्वल नाम "हिंसक मनुष्यों की बर्बर और पाशविक शक्ति के कारण" उच्चता से गिराया जाकर धूल में मिला दिया जाय। मगर भगवान् के नेत्र से गांधीजी आर-पार देखते हैं। हमारी पश्चिमी सभ्यता का चापल्य, यंत्रों पर उसका अवलम्बन, द्रव्य का उसका लालच, अधिकार की उसकी तृष्णा, जिन्दगी की बाहरी और थोथी बातों का उसका मोह—गांधी उन आंखों से इन सबको भेद कर देखते हैं। निर्दोष जंगली जानवरों को मारते-मारते उनके प्रतिफल में जो हमारी आदत भी तदनुकूल बन गई है, गांधी उसे देखते हैं। वह देखते हैं हमारी वह संस्कृति जो भक्ति-उपासना को नहीं जानती, जो चतुर्दिक् व्याप्त जीवन की कविता को गिराकर धूल कर देती है और खेत की घास की मानिंद मूल्यहीन बना देती है।

सन् १९२२ में हिन्दुस्तान में चौरीचौरा में जनता की एक सामूहिक हिंसा का शर्मनाक नमूना पेश हो गया। गांधीजी ने उसी दम अपना सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द कर दिया और अनशन का एक भीष्म संकल्प लिया। यह आचरण महात्माजी की उस महान् आत्मा के योग्य ही था। चौदहवीं शताब्दी की एक छोटी-सी किन्तु ठोस धार्मिक राजनैतिक पुस्तक 'पियर्स प्लौमैन' में एक वाक्य आया है जिसे मैं अर्से से अपने साहित्य का एक अनमोल रत्न मानता आया हूँ। अपने मित्र ... जी की सराहना के इस लेख के अन्त में उसे रखना अनुचित न होगा—

"जब तूने सुई की नोक जैसी तीक्ष्ण मार्मिकता के साथ तड़पते हुए मानव के रक्त और मांस का हरण किया तब तेरा प्रेम पीपल-पत्र से भी हल्का था।"[1]

: ३६ :

चीन से श्रद्धांजलि

एस क्युओ तै-शी

[चीनी राजदूत, लन्दन]

हमारे इस जमाने में सारे चीन में जो सामाजिक राजनैतिक नवजागरण की प्रवृत्तियाँ हो रही हैं वे एशिया के और सब देशों में भी हैं और इनका संचालन और

१. मूल अंग्रेजी इस प्रकार है :—

'Never lighter was a leaf upon a linden tree than thy love was, when it took flesh and blood of man, fluttering piercing as a needle-point.'

संचालन करने के लिए कुछ नेताओं का समूह निश्चित रूप से तैयार होगया है। हमारे महादेश की सबसे बड़ी आवश्यकता ऐसे दो नेताओं में मूर्तिमान हुई है। वह आवश्यकता यह है कि राष्ट्रीय नवनिर्माण की पद्धतियाँ चाहे जो और विविध हों, राजनैतिक बुद्धि क्षमता के ऊपर प्रभाव नैतिकता का ही रहेगा। सनयात सेन के परमअनुयायी होते हुए मुझे इसे अपना सौभाग्य समझना चाहिए कि मैं महात्मा गांधी की ७५वीं जन्म-तिथि के अवसर पर उन्हें श्रद्धांजलि के रूप में कुछ कह रहा हूं।

: ४० :

राजनेता : भिखारी के वेष में

सर अब्दुल क़ादिर

[भारत-मन्त्री के सलाहकार]

कुछ वर्षों पहले मैं वीयना—आस्ट्रिया और जर्मनी के एक हो जाने के पूर्व के प्राचीन और सुन्दर वीयना—को देखने जा रहा था। दोपहर को खाना खाने के लिए मैं एक बड़े भोजनालय में गया। वह कामकाज का वक्त था और वहां काफी भीड़ थी, इसलिए अपने लिए खाली मेज तलाश करने में कठिनाई हुई। एक नौकर मेरे पास आया और मुझसे यह तो नहीं पूछा कि मैं क्या लाऊँ, बल्कि बोला, "आप गांधीजी के देश से आये हैं ?"

"हां, मैं हिन्दुस्तान से आया हूँ। मैंने गांधीजी को देखा है और एक-दो बार उनसे बातचीत भी की है।"

यह सुनते ही उसे आनन्द हुआ और वह कहने लगा—"मुझे तो बड़ी खुशी हुई। अब मैं यह कह सकूँगा कि मैं ऐसे आदमी से मुलाकात कर चुका हूँ जिसने गांधीजी से मुलाकात की है।"

हालांकि मैं यह जानता था कि गांधीजी की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैल चुकी है, मगर मुझे इस बात का पता नहीं था कि ऐसे मुल्कों के बाजार का मामूली आदमी भी उन्हें जानने और इज्जत करने लगा है, जो हिन्दुस्तान से कोई ताल्लुक नहीं रखते, बल्कि स्थल और जल से उससे जुदा हैं।

इस बात से मेरा ध्यान पीछे सन् १९३१ की ओर गया। तब मैं लन्दन में था और महात्मा गांधी दूसरी गोलमेज परिषद् में शरीक होने वहाँ आये थे हिन्दुस्तान के कुछ लोगों का खयाल था कि उनके इग्लैण्ड जाने से उनकी शान को बट्टा लगा और परिषद् में शरीक होकर उन्होंने गलती की। मगर मैं इस राय से सहमत नहीं हूँ। मेरा तो खयाल है कि हालांकि लन्दन में जनता के सामने प्रकट किये हरेक उद्गार में

उन्होंने इस बात को छिपा नहीं रक्खा कि वह अपने देश के लिए पूरी-पूरी आजादी चाहते हैं, तो भी उन्होंने इंग्लैण्ड के राजनैतिक विचारशील लोगों पर बड़ा असर डाला और इस देश में अपने लिए अनुकूल वातावरण बना लिया।

कुछ क्षेत्रों में उनकी पोशाक पर कुछ हलकी आलोचना भी हुई, लेकिन ऐसी आलोचनाओं से गांधीजी को क्या? उनके व्यक्तित्व ने और परिषद् में उनके भाग लेने का जो महत्व था उसने उसपर विजय प्राप्त करली।

गांधीजी के चरित्र की एक प्रभावक विशेषता यह है कि एकबार उनकी बुद्धि को संतोष देनेवाले कारणों से जब वह अपने आचरण का कोई मार्ग निश्चित कर लेते हैं, तब फिर लोग उनके बारे में कुछ भी कहते रहें वह उसकी नितांत अवहेलना करते हैं। इसलिए जो पोशाक वह पिछले बरसों से पहनते आये थे, अपनी इंग्लैण्ड की यात्रा में भी पहनते रहे। कमर में एक लंगोटी, टांगें खुली हुईं और कंधों के ऊपर मौसम के अनुसार खादी की चादर या कंबल। यही उनकी अब पोशाक है। और लन्दन में सफर करते हुए, जहां कि उनका हार्दिक स्वागत हुआ, या लन्दन के बड़े-बड़े जलसों में शरीक होते हुए यहांतक कि खुद गोलमेज परिषद् की बैठकों तक में उन्होंने इस पोशाक को नहीं छोड़ा। परिषद् की बैठकें आम लोगों के लिए नहीं थीं, क्योंकि सेंट जेम्स के महल का वह हॉल जहां परिषद् हुई थी इतना बड़ा नहीं था कि दर्शक भी आते। मगर मुझे मालूम हुआ कि कभी-कभी किसी-किसीको थोड़ी देर के लिए खास तौर पर मन्त्री की जगह बैठने की इजाजत दी जाती थी। मैं एक दिन वहां जा पहुंचा। लार्ड सैंकी अध्यक्ष थे। उनके दाहिनी ओर भारत-मन्त्री सर सेम्युअल होर और पार्लमेण्ट के प्रतिनिधिगण बैठे थे। उनके बाईं ओर सबसे पहली जगह गांधीजी को दी गई थी और उनके बाद दूसरे हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों को, जिनमें से कुछ अध्यक्ष की कुर्सी के सामने भी बैठे थे। लार्ड सैंकी ने गांधीजी के प्रति जो आदर प्रदर्शित किया, वह उल्लेखनीय था।

गांधीजी ने पोशाक के मामले में प्रचलित पद्धति से जो स्वतन्त्रता ली थी, उसकी सीमा तो तब देखने को मिली जब मैंने उन्हें कांग्रेस के प्रतिनिधियों और दूसरे प्रतिनिधियों के सम्मान में दिये गये शाही भोज के समय बादशाह और मलका के अभिवादन के लिए अपने कंधों पर कम्बल ओढ़े हुए बकिंघम-पैलेस की उन बनात से ढकी हुई सीढ़ियों पर चढ़ते देखा। मैं नहीं समझता कि पहले कभी ऐसे लिबास में कोई मेहमान उस महल में आया होगा और यह धारणा करना भी कठिन है कि किसी दूसरे आदमी को इतनी ही आजादी के साथ वहां जाने भी दिया जाता।

इस सिलसिले में दो मजेदार सवाल उठते हैं। पहला यह कि गांधीजी ने यह पोशाक क्यों धारण की, और दूसरा यह कि वह चीज क्या है जिसने उनको इतना बढ़ा दिया है कि जिससे उनके द्वारा की गई प्रचलित प्रणालियों की उपेक्षा को दर-

गुज़र कर दिया जाता है ?

जिन्होने गाधीजी की आत्मकथा को, जिसे उन्होंने 'सत्य के प्रयोग' नाम दिया है, पढा है, वे जानते हैं कि जब वह बैरिस्टरी पढने के लिए पहले-पहल इंग्लैण्ड आये तब वह फैशनेबुल आदमी के जीवन से परिचित थे और वेस्ट एण्ड के दर्जी के द्वारा सिले सूट ही पहनते थे। बैरिस्टर होने और हिन्दुस्तान लौट आने के बाद वह एक कानूनी मुक़दमे के सिलसिले में दक्षिण अफ्रीका गये और वहीं रहने का उन्होंने निश्चय कर लिया। इसी समय उनके जीवन का गम्भीरपूर्ण उद्देश्य तैयार हुआ। वहींपर उन्होने अपने प्रवासी देशवासियो के हित के लिए त्याग और बलिदान करने का श्रीगणेश किया। उनके दु ख और दर्द में सहानुभूति रखने से उनके जीवन में एक परिवर्तन होगया। उन्होने वहाँ जो उपयोगी कार्य कर दिखाये उनकी कथा इतनी अधिक प्रसिद्ध होगई है कि उसकी यहाँ फिर से दोहराने की ज़रूरत नहीं है। जब वह लौटकर हिन्दुस्तान आये और हिन्दुस्तान की आज़ादी की कशमकश में हिस्सा बँटाने लगे, तो उन्होने वकालत करने के तमाम इरादे को छोड दिया और स्वय को राजनैतिक तथा सामाजिक सुधारो के लिए समर्पित कर दिया। इसी समय से उन्होंने अपरिग्रह के रूप में लँगोटी पहनना शुरु किया और अपने रहन-सहन को कम-से-कम खर्चीला कर लिया। गरीब-से-गरीब लोगो के वेश में और गाधीजी के वेश में फ़र्क ही क्या है ? उन्होने अपनी 'आत्मकथा' में कहा है कि जबसे वह लन्दन में विद्यार्थी-जीवन व्यतीत करते थे तभीसे धर्म के सर्वोच्च स्वरूप—त्याग की भावना उन्हें अत्यन्त प्रिय रही है। उनके मन में प्रविष्ट यह बीज आज एक वृक्ष बन चुका है और उसमें फल भी लग गये हैं।

गाधीजी की वेशभूषा के विषय मे उठनेवाले पहले प्रश्न के उत्तर मे दूसरे प्रश्न का भी उत्तर मिल ही जाता है। उनका बल अपने खुद के लिए किसी भी वस्तु की कामना न करने मे ही है। अपने बहुअगी जीवन-विभाग में, जहाँ कठिनाइयाँ, नज़रबन्दी और कारावास के पश्चात् विजयोपलक्ष्य में निकलनेवाले जुलूसो तथा सम्मान के लिए किये जानेवाले उत्साहपूर्ण जयघोषो का क्रम आता है, वहाँ 'स्व', पदलोभ, प्रतिष्ठा, प्रभाव अथवा अर्थलाभ की कामना का कोई प्रश्न ही नहीं रहा है। यही उनके जीवन का एक अग है, जिसने क्या मित्र और क्या विरोधी सबके हृदयो पर समान रूप से असर डाला है।

गवर्नरो और वायसरायो ने हमारे देश (हिन्दुस्तान) के भविष्य पर असर डालनेवाले मसलो पर साफ-साफ चर्चा करने के लिए उन्हे बुलाया है। राजाओं ने मशविरे किये है और मत्रियो ने उनसे परामर्श मांगा है। हमारे सुप्रसिद्ध हिन्दुस्तानी शायर स्वर्गीय सर मुहम्मद इकबाल की एक मशहूर ग़ज़ल उनके विषय में बिलकुल उचित ठहरती है—"दिल-ए-शाह लरज़ा गिरद-जे गदा-ए-बेनियाज़" (अर्थात्—

भिखारी को देखकर कि जो भीख नहीं मांगता, सम्राट् का भी हृदय कांप उठता है)। यही है वह भीख न मांगना और शारीरिक आवश्यकताओं और कामनाओं से ऊपर उठना, जिससे गांधीजी को प्रभावशाली और आश्चर्यजनक महत्व मिल सका है।

जबतक महात्मा गांधी इंग्लैण्ड में रहे, वह लन्दन के पूर्वी सिरे में किंग्सले हाल में ठहरे। गोलमेज परिषद् के काम से जो कुछ वक्त उनके पास बचता था, उसे वह गरीब लोगों में बिताते थे। जब वह उनसे मिलते हैं तो सर्वदा सुखी रहते हैं, एवं उनकी और स्वयं की आत्मा में अभिन्नता के अनुभव का आनन्द उठाते हैं। वह चाहते तो लन्दन के किसी भी शाही होटल में टिक सकते थे। वह अपने किसी मित्र के सजे-सजाये आरामदेह घर में ठहर सकते थे, मगर उन्हें तो बो से किंग्सले हाल की कुमारी म्यूरियल लिस्टर का निमन्त्रण वहीं अच्छा लगा। इस बस्ती में श्रमजीवियों के लिए एक क्लब है जो उनके लिए एक सामाजिक और बौद्धिक विकास का केन्द्र है और यहीं उनका सम्मेलन हुआ करता है। कुछ रहने के लिए स्थान भी यहीं है, जहां कोई भी रहने और खाने-पीने पर एक पौण्ड प्रति सप्ताह से भी कम खर्च पर मौजमजे से रह सकता है। जब गांधीजी गोलमेज परिषद् में हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व कर रहे थे तब उन्होंने इसी घर में एक छोटा कमरा लिया था। मैंने वह कमरा देखा है। उस जगह के व्यवस्थापक गांधीजी से अपना सम्बन्ध स्थापित होजाने पर गर्व करते हैं और बड़ी खुशी जाहिर करते हुए दर्शकों को वह कमरा दिखाते हैं, जो अब गांधीजी के ही नाम पर पुकारा जाता है।

गांधीजी जहां भी रहे वहीं प्रेम और स्नेह पैदा करने की शक्ति का उन्हें विलक्षण वरदान है। जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी थी, तब उन्होंने अपने आसपास भक्त पुरुष और स्त्री एकत्र कर लिये थे, जिनमें कुछ यूरोपियन भी थे। जब उन्होंने अपने उस कार्यक्षेत्र को छोड़कर हिन्दुस्तान के विशाल कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया तब और भी ज्यादा मात्रा में उन्हें ही [illegible]

[illegible]

कार्य-योजनायें हाथ में लीं, जो नितान्त राजनैतिक नहीं थीं, बल्कि जनता के एक बड़े हिस्से के जीवन में बहुत घुली-मिली थीं। एक शताब्दी या इससे अधिक काल से गोरों के लाभ के लिए जबरन् नील पैदा करने की अन्यायपूर्ण प्रणाली से कष्ट उठाते आ रहे निलहे खेतिहरों और मजदूरों की ओर से चम्पारन में किये गये उनके सफल सत्याग्रह से कांग्रेस की हलचल एक जन-आन्दोलन की सीमा तक जा पहुँची। अन्याय समझे जानेवाले लगानबन्दी के हुक्म की दुबारा जाँच करने के लिए किये गये खेड़ा के उनके उतने ही सफल सत्याग्रह ने भी उस ज़िले की जनता पर वैसा ही असर डाला। अब कांग्रेस की राजनीति, देश की ऊँची-ऊँची पब्लिक सर्विसों में अधिक हिस्सा या गवर्नरों की शासन-समितियों में ज्यादा जगहें दिये जाने की माँगों तक ही सीमित नहीं रह गई। अब वह [illegible] जनता की तकलीफ़ों से अभिज्ञ होकर ही नहीं रही, बल्कि उनको दूर कराने में भी सफल हो सकी। इन सब प्रारम्भिक (१९१७ और १९१८ के) आन्दोलनों से लेकर अबतक अनेक आन्दोलन ऐसे चले हैं और उन सब में ध्येय यही रहा है कि किसी एक श्रेणी या समूह को ही न पहुँचकर व्यापकरूप से समस्त जनता को उसका फ़ायदा पहुँचे। कष्ट-निवारण के लिए सिर्फ़ ब्रिटिश हितों अथवा ब्रिटिश सल्तनत के ही ख़िलाफ़ लड़ाई नहीं छेड़ी गई, बल्कि उसने बिना हिचकिचाहट के हिन्दुस्तानी हितों और [illegible] स्वार्थों को भी उतनी ही ताक़त से धक्का पहुँचाया है। इस प्रकार उसकी जाग्रत आँखों से हिन्दुस्तान के कारख़ानों में काम करनेवाले मजदूरों की असन्तोषप्रद हालत छिपी नहीं रह सकी और सबसे पहले जो काम उन्होंने उठाये, उनमें से एक अपने लिए अच्छी स्थिति प्राप्त करने के वास्ते लड़ने में अहमदाबाद के मजदूरों को मदद करना भी था। दलित जातियों की दुखभरी किस्मत ने अनिवार्य रूप से हिन्दुओं की अस्पृश्यता जैसी दूषित और दुष्टतापूर्ण प्रथा को निष्ठुरतापूर्वक मिटा डालने के आन्दोलन को जन्म दिया और महात्मा गांधी ने अपने प्राणों तक की बाजी लगा-लगाकर उसका सञ्चालन किया। कांग्रेस-संगठन का विस्तार भी इतना हुआ कि इस विशाल देश के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक वह व्याप्त हो गया और आज लाखों व्यक्ति उसके सदस्य हैं। [illegible] है उससे कहीं अधिक [illegible] हुआ है। [illegible] की परीक्षा इतनी हो चुकी है कि [illegible] की भीषण आँच से [illegible] सकी है।

परन्तु महात्मा गांधी की सबसे [illegible] है कि उन्होंने हिन्दुस्तान की जनता में राजनैतिक चेतना उत्पन्न [illegible] किया। मेरी समझ में हिन्दुस्तान [illegible] मानवजाति को उनकी [illegible] सबसे बड़ी [illegible] है [illegible] वह बेजोड़ तरीक़ा—जिसे उन्होंने प्रचलित और [illegible] उन्होंने इस [illegible]

है कि बिना हथियार के शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से सफलता के साथ किस प्रकार लडा जा सकता है। उन्होंने हमे और ससार को युद्ध का नैतिक स्थान ग्रहण कर सकनेवाली वस्तु दी है। उन्होने राजनीति को, जो कि धोखाधडी और अन्दर से सडी हुई थी, जो गिरी-से-गिरी हालत में नीच षड्यत्रो की स्थिति में पहुँच गई थी और ऊँची-से-ऊँची स्थिति में कूटनीतिपूर्ण दुमानी गोल-गोल भाषा और गुप्त चालो से ऊँची न उठ सकती थी, ऊपर उठाकर एक ऐसे ऊँचे आदर्श पर पहुँचा दिया है जिसमें कि कितने ऊँचे उद्देश्य के लिए किसी स्थिति में भी, दोषपूर्ण और अपवित्र साधनों का उपयोग नही किया जा सकता। उन्होंने राजनीति में भी सचाई को गौरव के उच्च मंच पर आसीन किया है, फिर चाहे उसका तात्कालिक परिणाम कितना ही हानिकर क्यो न लगता हो? हमारी कमजोरियो और बुराइयो को भी स्पष्टरूप से जानबूझकर तथाकथित शत्रुओ के सामने खोलकर रख देने की उनकी आदत ने पक्षियो और विपक्षियो दोनो को हैरान कर दिया है। लेकिन उनके मत में हमारी शक्ति अपनी कमजोरियो को छिपाने में नहीं, बल्कि उन्हे समझकर उनसे लडने में निहित है। यह बात अनुभव से सिद्ध होचुकी है कि जहाँ अहिंसा की थोड़ी-सी अवहेलना या अपूर्णता भले ही अस्थायी लाभ लासके, वहाँ भी अहिंसा का कठोर पालन सबसे सीधा रास्ता ही नही है, वरन् सबसे अधिक चतुराई की नीति भी है। उनकी शिक्षाओ के भीतर नैतिक और आध्यात्मिक स्फूर्ति थी, जिसने लोगो की कल्पना को प्रभावित किया। लोगो ने देखा और समझ लिया कि जब चारो ओर घना अन्धकार है, ऐसी स्थिति में हमारी गरीबी और गुलामी में से छुटकारे का रास्ता दिखलानेवाले वही हैं। जब हम अपनी निपट बेबसी महसूस कर रहे थे तब उन्होंने सत्य और अहिंसा के द्वारा अपनी शक्ति को पहचानने की हमे प्रेरणा की। मनुष्य आखिर अस्त्र और शस्त्र के साथ नहीं जन्मा। न उसके चीते केन्से पजे ही हैं और न जगली भैसे केन्से सीग। वह तो ज्ञान और भावना लेकर उत्पन्न हुआ है। फिर वह अपनी रक्षा और उन्नति के लिए बाहरी वस्तुओ पर क्यो अवलम्बित रहे? महात्मा गाधी ने हमें सिखाया है कि जब हम भोग और विनाश पर भरोसा रक्खेंगे तो वे हमारी बाट देखते रहेंगे। उन्होंने हमें सिखाया है कि अगर हम अपनी अन्तरात्मा को जाग्रत करले तो जीवन और स्वतन्त्रता हमारे होकर रहते। दुनिया में कोई ताकत ऐसी नहीं है कि एक बार हम अन्तरात्मा के जाग पडने पर, एक बार इन बाह्य वस्तुओ और परिस्थितियो का अवलम्बन छोड देने पर और एक बार आत्मविश्वास और आत्म-निर्भरता प्राप्त कर लेने पर वह हम गुलामी म रख सके। हिन्दुस्तान शनै. शनै किन्तु उतनी ही दृढता और निश्चय के साथ उस आत्मिक बल को प्राप्त कर रहा है और उस आत्मिक बल के साथ अदम्य भी बनता जा रहा है। परमात्मा करे कि वह सत्य और अहिंसा से इस सकडे किन्तु सीधे मार्ग से विचलित न हो, जो उसने महात्मा गांधी के नेतृत्व में ग्रहण

लिया है। यही है महात्माजी का भारतीय राजनीति पर सबसे बड़ा ऋण, और यही होगी दुनिया की मुक्ति में हिन्दुस्तान की एक अमर देन।

: ४२ :

ईश्वर का दीवाना

रेजिनॉल्ड रेनाल्ड्स

[लन्दन]

ईश्वर ने अपने दीवानों को अजीब वेशों में दुनिया को जाँचने के लिए भेज दिया और कह दिया कि "जाओ, तुम ऐसे ज्ञान का प्रचार करो जो समय के पूर्व हो। सब दुःख झेल झेलकर कहो और परिवर्तन का मार्ग साफ करो।' १

ये उद्गार श्री होल्ट की 'दी फूल्स ऑव गॉड' (ईश्वर के दीवाने) शीर्षक कविता के प्रारम्भ के शब्द हैं। इस कविता को मैंने १९२९ ई० में हिन्दुस्तान जाने के कुछ महीनों पहले 'विश्ववाणी' त्रैमासिक पत्रिका में देखा था। यह कविता बहुत प्रसिद्ध तो नहीं है, पर मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि मेरी पढ़ी किसी कविता ने मेरे मन पर इतना गहरा और स्थायी प्रभाव डाला हो जितना उक्त कविता ने। इसका कारण उनके पदों में साहित्यिक खूबी का होना नहीं था, बल्कि यह था कि वे भविष्यवाणी के रूप में सिद्ध हुए।

कविता में यह वर्णन किया गया है कि ईश्वर अपने प्यारे दीवानों को [illegible] देता है '[illegible]' [illegible]। और दुनिया की बुद्धिमानी के [illegible]

[illegible]

अपनी भावना के दक्षिणांश से हमसे कहते हैं "मनुष्यों की स्वीकृति और प्रशंसा के सुविधा-पूर्ण मार्ग को।"¹

लेकिन 'खुदा के दीवाने', वे याचना करते हैं "उस प्रकाश के देखने का, जो मनुष्यों के भालों को चमका देता है, उन्हें बादशाह बना देता है और उन्हें धार्मिक कार्य करने की शक्ति दे देता है।"²

इस कविता को पढ़ने के बाद कुछ ही महीनों के अन्दर—मैं उसे आदर के साथ कहूँगा—दुनिया के सबसे बड़े दीवाने महात्मा गांधी से मिला। शीघ्र ही मैंने यह पता लगा लिया कि मुझे प्रभावित और प्रेरित करनेवाली उन पंक्तियों का आदर्श वर्णन इस पुरुष पर अक्षरशः घटित होता था।

चाहे विरोध में किसीने कुछ भी दलीलें दी हों, मेरा तो खयाल ऐसा नहीं है कि गांधीजी कोई चालाक आदमी हैं। दस साल पहले से, जबसे मेरा उनसे पहले-पहल परिचय हुआ, मैंने सदा अपनेआपको उनके शब्दों और कार्यों की अत्यन्त बेहद प्रशंसा करनेवाला महसूस किया है। मैं उन अन्धश्रद्धालुओं में से नहीं हूँ, जिनके मत में महात्माजी कभी भूल ही नहीं कर सकते। न तो मैं उन्हें एक 'मसीहा' समझता हूँ और न 'अवतार' ही मानता हूँ। अगर वह महान् होने का दावा करें और उसके लिए अपनी राजनैतिक बुद्धिमत्ता पर निर्भर रहें तो मेरी समझ में उनका यह दावा कच्चा होगा। उनकी जांच तो दूसरी ही कसौटी द्वारा करनी होगी।

अगर गांधीजी की पूरी-पूरी और सच्ची महत्ता को समझाने चलें तो हिन्दू-धर्म के इतिहास का उसकी प्रारम्भिक अवस्था से अध्ययन करना होगा और उन सब अनगिनती सुधार-आन्दोलनों पर जोर देना होगा जिनका प्रत्येक धर्म के विकास में एक स्थान होता है। कारण यह है कि प्रत्येक संगठित धर्म जर्जर होकर नष्ट होता है और अपने नाश की ओर जाते हुए वह जीवन के नये बीज जिनमें चैतन्य निवास करता है, निरन्तर फेंकता रहता है, पुराना चोला नष्ट हो जाता है और निर्जीव शाखायें सूख जाती हैं।

मैंने एक बार एक शक्तिशाली अमरीकन ईसाई का गांधीजी के किसी शिष्य के साथ प्रश्नोत्तर करते सुना। उसने पूछा कि महात्माजी पर सबसे गहरा प्रभाव किस पुस्तक का पड़ा है? पेंसिल और नोटबुक तैयार थी और हम सब जानते थे कि वह किस उत्तर की आशा कर रहा था। परन्तु उसे उत्तर मिला 'गीता का।' न्यू टेस्टामेन्ट

१. The comfortable way
Of men's consent and praise

२ To see the light that rings
Men's brows and makes them kings
With power to do the things
Of righteousness

और टॉल्स्टॉय तथा रस्किन की रचनाओं ने भी काम किया है। पर मूलतः गांधीजी एक हिन्दू सुधारक हैं।

पर फिर भी गांधीजी हिन्दू-मात्र ही नहीं हैं। उनके तो असली पूर्वरूप 'कबीर' थे। कबीर ने पहले एक सन्त के नाते हिन्दुओं और मुसलमानों में आदर प्राप्त किया। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के अग्रदूत थे। स्वयं मुस्लिम होकर वह हिन्दू सन्त रामानन्द के शिष्य थे। कबीर की एक साखी का आशय नीचे दिया जाता है, जिससे इस ऐतिहासिक परम्परा का सुन्दर दिग्दर्शन हो सकता है:

> "अपनी चालाकी छोड़। केवल शब्दों से तेरा—उसका संयोग नहीं हो सकता। शास्त्रों के प्रमाण से भी अपने को धोखे में न डाल। प्रेम तो इनसे भिन्न है। जिसने इसे सचमुच खोजने का यत्न किया है उसने वास्तव में पा लिया है।"

इन पंक्तियों में एक धार्मिक नेता के नाते गांधीजी के उपदेशों का सार निहित है, और इस क्षण तो मैं उन्हें एक धार्मिक नेता के ही रूप में लेकर विचार करना चाहता हूँ।

जब एक बार एक हिन्दुस्तानी विद्वान् ने "क्या गीता कट्टरता का समर्थन करती है?" शीर्षक लेख (बाद में 'दि आर्यन पाथ' के मार्च १९३३ के अंक में प्रकाशित) लिखा और उसे गांधीजी के पास उनके देखने के लिए भेजा तो महात्माजी ने यरवदा सेन्ट्रल जेल से ११ जनवरी १९३३ को जो उत्तर उन्हें लिखा, वह इस प्रकार है:

"अब मैंने गीता पर आपके दोनों लेख पढ़ लिये हैं। वे मुझे रोचक लगे हैं। मेरी धारणा है कि आप भी उसी निर्णय पर पहुँचे हैं जिसपर मैं, परन्तु प्रकारान्तर से। आपका मार्ग विद्वत्ता का है। मेरा ऐसा नहीं है।'

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उस विद्वान और उन ईश्वर के दीवाने दोनों का निर्णय यही था कि गीता कट्टरता का समर्थन नहीं करती। परन्तु गांधीजी [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

क्या आशा हो सकती है ? यह झूठा सपना है कि जीव शरीर छोड देने में उससे जा मिलेगा। यदि अब ईश्वर को प्राप्त कर लिया जायगा तो तब भी प्राप्त हो जायगा। यदि यह न हो सके तो हम नरक में जायँगे।"

ईसाई मत के कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदायो की परम्पराओ की समता अधिकतर धर्मों में खोजकर निकाली जा सकती है। हरेक प्रथा-प्रणाली में अपने विशिष्ट अवगुण होते है और ऊँचे-ऊँचे गुण भी। प्रोटेस्टैण्टवाद का पूर्ण विकास उसके उत्कृष्टतम प्यूरिटनो में मिलेगा। हमारे युग में हम प्यूरिटन में सिवाय उनके असहनीय निषेधो के और कुछ देखना ही नही चाहते। प्रारम्भ में प्यूरिटन मत को किन-किन विरोधो का सामना करना पडा, यह आज हम आसानी से भूल जा सकते है। अपने असली स्वरूप में प्यूरिटन केवल एक कठोर हकीम है जो अपने अजीर्ण के रोगी को खाने-पीने मे पथ्य-अपथ्य और सयम का आदेश देता है। हो सकता है प्यूरिटन का यह लक्ष्य वुद्धिपूर्वक न रहा हो, पर यह तो उसका इतिहास-सिद्ध कर्म था।

जहाँ कही भी समाज-सुधार आन्दोलन या क्रातियाँ होती है, वहाँ कट्टरतावाद का आग्रह पाया जा सकता है। यह तो उन पुरुषो और स्त्रियो के अनुशासन का एक अग-मात्र है जिन्हे अपनी शक्ति एक वस्तु पर केन्द्रित करने के लिए बहुतकुछ परित्याग करना पडे। इसलिए आधुनिक भारत के नेता कट्टरवादी (प्यूरिटन) हो और उन सब का प्रमुख एक निर्मम तपस्वी है, यह कोई आकस्मिक घटना ही नही है। जबतक हम उन जजीरो और बन्धनो को न तोड फेंकें जो हिन्दुस्तानियो को अशिक्षित, अकर्मण्य, जाति-पाँति के कट्टर भक्त और अन्ध-विश्वासी बनाये हुए है तबतक साम्राज्यवाद के खिलाफ होनेवाला उनका विद्रोह आगे नही बढ सकता। गाधीजी राजनैतिक आजादी के आन्दोलन के सचालन में समर्थ इसीलिए हो सके कि उन्होने पुजारियो की सत्ता का सामना लिया, कट्टरता के हिमायतियो द्वारा मान्य बुराइयाँ—अस्पृश्यता, महिलाओ की हीन स्थिति बाल-विवाह, सार्वजनिक स्वास्थ्य की अवहेलना, धार्मिक असहिष्णुता, शादी-विवाह की फिजूलखर्ची तथा अफीमखोरी, थोडे में, उनसब सामाजिक दुराचरणो—का उग्र विरोध किया, जिनमे देश में राजनैतिक जडता आ गई थी।

एक वार पुन विदित होगा कि हिन्दुस्तान में एक लम्बी परम्परा चली आ रही है जिसके बीच-बीच में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनायें घटती रहती है, जिसमे हिन्दुओ की कट्टरता की अनुदार धारा के विरोध में होनेवाली गाधीजी की प्रवृत्तियो का महत्त्व हमारी समझ में आ सकता है।

गाधीजी के बहुत पहले हिन्दुस्तान मे 'ईश्वर के दीवाने' थे, बगाल के 'बाउलो' में मुसलमान और हिन्दू, खासकर नीची जाति के, शामिल थे। कबीर साहब का आध्यात्मिक रग उनमें देख पडता है। उन्हे लिखित ग्रन्थों की महत्ता या मन्दिरो की पवित्रता की परवाह नही थी। उनका एक गीत यही बात कहता है

मन्दिर-मस्जिद से है तेरा
मार्ग छिपा मेरे भगवान !
मार्ग रोकते गुरु-पुजारी—
सुनता हूँ तेरा आह्वान ।[1]

उनकी अपरिग्रह में, आत्मसम्मान में, और आत्मसाक्षात्कार में श्रद्धा होती थी। उनका ईश्वर 'अन्तःस्थ गुरु' या 'अन्तर्यामी' होता था।

एक बाउल ने ही कहा था—मानो मुझे और उन लोगों को चेतावनी दी थी जो अपने थोड़े-से ज्ञान से उस अपरिमेय का मूल्यांकन करने चलते हैं—

स्वर्णकार उपवन में आया !
और कसौटी पर कस उसने
कमल-फूल का मूल्य बताया !![2]

अगर सुनार की कसौटी पर रक्खा जाय तो कमल का कोई मूल्य नहीं है। हमारे परिचित साधन भी प्रायः इसी प्रकार व्यर्थ सिद्ध हो सकते हैं, जब मानवी बुद्धिमत्ता ईश्वर के दीवानों के विषय में निर्णय करने चलती है।

: ४३ :

पश्चिम के एक मनुष्य की श्रद्धाञ्जलि

रोम्यां रोलां

[विला ओल्गा, स्वीटरलैण्ड]

गांधीजी केवल हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय इतिहास के ही नायक नहीं हैं कि जिनकी पुण्यस्मृति [illegible] प्रतिष्ठित रहेगी। उन्होंने केवल [illegible] जीवन का [illegible] उनकी [illegible] उनकी शक्ति और उनकी [illegible] [illegible] हो गया है।

१ [illegible]

२ [illegible]

यूरोप की [illegible]
[illegible] था। यूरोप [illegible]
[illegible] सर्वनाश, [illegible]
[illegible], और [illegible]
[illegible]
[illegible] थी। यूरोप [illegible]
था, जिसके गर्भ में [illegible] विनाश [illegible]। [illegible] रेखा
दृष्टिगत नहीं हो रही थी। ऐसे [illegible], जब [illegible] का आ-
गमन हुआ, जिसने [illegible]
थे, और [illegible] किन्तु [illegible] आध्यात्मिक [illegible]
प्राप्त की [illegible] था। ऐसे गांधी का [illegible] प्रतिक्रिया [illegible]
[illegible] विचारधारा तथा [illegible] की [illegible] पर एक [illegible] के रूप में
जान पड़ा। [illegible] आशा की एक किरण के रूप में भी [illegible], जो निराशा
के अन्धकार में [illegible] थी। [illegible] पर विश्वास होता ही नहीं था। और
इसलिए ऐसे महात्मा [illegible] अद्भुत शक्ति की वास्तविकता का विश्वास करने में कुछ समय
लगा...। मुझसे अधिक अच्छी तरह इस बात को और कौन जानता? क्योंकि मैं ही
पश्चिम के उन व्यक्तियों में से था जिन्होंने पहले-पहल महात्माजी के सन्देश को जाना
और उसे फैलाया।...परन्तु ज्यों-ज्यों भारत के इस आध्यात्मिक युद्ध में गांधी के
अस्तित्व और निरन्तर स्थिर प्रगति का विश्वास लोगों को होता गया, त्यों-त्यों
पश्चिम से प्रशंसा और श्रद्धा की बाढ़ उनकी ओर आने लगी। कुछ लोगों के मत में
उनका उदय ईसा का पुनरागमन था। दूसरे कुछ लोगों ने जो स्वतन्त्र विचारों के थे,
जो पश्चिमी सभ्यता की अव्यवस्थित गति से घबरा रहे थे, क्योंकि उनकी पश्चिमी
सभ्यता का आधार अब कोई नैतिक सिद्धान्त नहीं रहा था और जिसकी आविष्कार
और खोज-सम्बन्धी अद्भुत प्रतिभा अपने ही सर्वनाश की दिशा में जा रही थी, यह
देखा कि गाधीजी सभ्यता के पाखण्ड और अपराधो की निन्दा कर रहे है, और मानव-
जाति को प्रकृति की ओर, सरलता की ओर, स्वाभाविक स्वस्थ जीवन की ओर लौट
जाने का प्रचार कर रहे है, तो उन्होने समझा कि वह रूसो और टॉल्स्टॉय के ही दूसरे
अवतार हैं। सरकारो ने उनको उपेक्षा और तिरस्कार की निगाहो से देखने का ढोंग
किया। किन्तु सर्वसाधारण ने अनुभव किया कि गाधी उनका घनिष्टतम मित्र और
बन्धु है। मैंने यहाँ स्वीजरलैण्ड में देखा कि उन्होने गांवो और पहाड़ में बसे नम्र
किसानो में कैसे पवित्र प्रेम की प्रेरणा की है।

लेकिन यद्यपि ईसा के गिरि-प्रवचन की भाँति उनके न्याय और प्रेम के सन्देश
ने असख्य लोगो के हृदयो को स्पर्श किया है, तो भी स्वय युद्ध और विनाश की ओर

जाती हुई दुनिया की गति बदलने के लिए वह जिस प्रकार नैज़रथ के मसीह के सन्देश पर निर्भर नहीं थे, ठीक उसी प्रकार इस बात पर भी निर्भर नहीं रहे हैं। राजनीति में गांधीजी के अहिंसा-सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने के लिए आज यूरोप में जैसा विद्यमान है, उससे कहीं भिन्न नैतिक वातावरण होना चाहिए। उसके लिए अपेक्षा होगी [illegible] सर्वांगीण विपुल आत्म-बलिदान की। परन्तु आज भयंकर रूप से बढ़ते हुए साम्राज्यशाही राष्ट्रों के नये तरीक़ों के आगे, जिन्होंने दुनिया में आधिपत्य जमा रक्खा है और जिन्होंने लाखों मानवों के शोणित के रूप में अपने निर्दय चिह्न छोड़े हैं, इसमें सफलता की आशा नहीं है। जबतक जनता चिरकाल तक परीक्षाओं में से न निकल ले, तबतक ऐसे बलिदानों की ज्योति के अपना विजयी प्रभाव डालने की न तो सम्भावना ही है, न आशा। और जनता में तबतक स्वयं को शक्तिशाली बनाने की बहादुरी नहीं आ सकती, जबतक उसको पोषण देने और उदात्तता की ओर ले जाने के लिए गांधी की जैसी किसी निष्ठा की प्राप्ति न हो। पश्चिम के अधिकांश लोगों—क्या जनता और क्या उनके नेताओं—में इस ईश्वर-निष्ठा का अभाव है तथा नये-नये पन्थ, चाहे वे राष्ट्रवादी हों चाहे क्रान्तिवादी, सब हिंसा के जन्मदाता हैं। यूरोप-वासियों के लिए सबसे अधिक आवश्यक कार्य है अपनी स्वाधीनताओं, स्वतन्त्रताओं और अपने प्राणों तक की रक्षा करना जो आज फासिस्ट और आत्माभिमानी राष्ट्रों के सर्वग्राही साम्राज्यवाद से आतंकित है। उनके इस राजनैतिक उत्तरदायित्व को छोड़ देने का अनिवार्य परिणाम होगा, मानवता की गुलामी—सम्भवतः युगयुगान्तर तक। ऐसी परिस्थितियों में हम गांधीजी के सिद्धान्त को, चाहे उसे हम कितने ही आदर और श्रद्धा की निगाह से देखें, (यूरोप में) व्यवहृत किये जाने का आग्रह नहीं कर सकते।

ऐसा जान पड़ता है कि गांधीजी का सिद्धान्त दुनिया में वह काम कर दिखाने के लिए [illegible] है [illegible] उन महान् मध्ययुगीन ईसाई सन्तों ने किया था जिनमें नैतिक [illegible] और [illegible] धीरता और निश्चलता की [illegible] उमड़ते हुए सागर में [illegible]। [illegible] महान् [illegible] की भाँति [illegible]

और हम [illegible] [illegible] 'ईश्वरीय [illegible]' [illegible] है और [illegible] है [illegible] हृदय में

[illegible] कि [illegible] है, [illegible] का [illegible] है।

: ४४ :

एक अंग्रेज़ महिला की श्रद्धा

मिस मॉड रॉयडन, एम. ए., डी. डी.
[सेवीनोक्स, केण्ट, इंग्लैण्ड]

[illegible] कि आज भी [illegible] एक अंग्रेज़ महिला [illegible] गांधीजी के [illegible] और [illegible] उपदेश [illegible] हूँ [illegible]। मैं यह जानती हूँ कि अगर मैं [illegible] और कहूँ कि मुझे तो [illegible] पूर्णता [illegible] प्रतीत होती है, तो [illegible] मानेंगे। [illegible] है और यह मुझे कहना पड़ता है कि [illegible] आज कोई भी [illegible] है, जितने महात्मा गांधी।

प्रति सप्ताह जो 'हरिजन' के अंक मेरे पास आते रहे हैं वे मानो गरम और प्यासे देश में पवित्र पानी की बूंदों के समान हैं। शक्तिशाली राष्ट्रों की राजनीति ने अपनी झूठी आशाओं और थोथे दर्शन से आज यूरोप में शान्ति के लिए प्रयत्न करने-वालों को भी पथ-भ्रष्ट कर दिया है। बहुतों का ऐसा विश्वास है कि न्याय की जबरन प्रतिष्ठा करना संभव है और इससे शान्ति स्थापित हो सकेगी। वे उस पुराने व्यंगचित्र को भूल गये मालूम होते हैं कि जिसमें पाउण्ड का विच्छेद हो जाने के उपरान्त एक महिला का शरीर जकड़कर और मुँह बन्द करके ज़मीन पर लिटाया हुआ और सिर से छाती तक एक हथियारबन्द पुरुष को उसका पहरा लगाते हुए दिखाया गया था और कहा गया था कि "वारसा में शान्ति स्थापित हो गई।" वे भूल गये जान पड़ते हैं कि महायुद्ध के पश्चात् रूस पर जो हमले हुए उनसे बोल्शेविक सरकार और भी ज्यादा मजबूती से अपना आसन जमाती गई, और जर्मनी पर प्रहार किये जाने का परिणाम हिटलर का सिंहासन पर बैठना हुआ है एवं 'युद्ध का अन्त करने के उद्देश्य से किये जानेवाले युद्ध' के (जिसे हमने सफलतापूर्वक लड़ा है) बीस बरस बाद भी आज अपने आपको हम और भी अधिक युद्ध से आतंकित पाते हैं।

'हरिजन' में गांधीजी के शब्दों का पढ़ना इस निरर्थक शोरगुल और गोलमाल की दुनिया से उठकर अधिक पवित्र और अधिक शुद्ध वातावरण में जाना है—अधिक

युद्ध इसलिए कि वह हमें युद्ध की भूल से ऊपर देखने का सामर्थ्य देता है और अधिक पवित्र इसलिए कि वह सत्य की परमनिष्ठा से प्रेरित होता है।

अनेक लोगों ने कभी-कभी गांधीजी को गूढ़बुद्धि होने का दोषी ठहराया है। 'दोषी' इसलिए कहती हूँ कि यद्यपि गूढ़बुद्धि होना स्वतः कोई आवश्यक रूप से बुरी वस्तु नहीं है, परन्तु यहाँ उनका उपयोग तिरस्कार के रूप में—सत्यनिष्ठ न होने के अपराध के रूप में—किया गया है। मैं तो इतना ही कह सकती हूँ कि पहले तो मैं महात्माजी से किये गये प्रश्नों और उनके द्वारा दिये गये उनके उत्तरों को 'हरिजन' में कुछ चिंता और आशंका से पढ़ा करती थी, परन्तु अब तो पढ़ते हुए मुझे आनन्द के साथ-साथ यह विश्वास रहता है कि वह किसी भी कठिनाई से बचने की या उसे टालने की कोशिश कतई नहीं करेंगे। चाहे वे प्रश्न डॉ० जे० हार मॉट के हों, चाहे वे कागवा के हों और चाहे वे पेरी मेरीसोल के हों, सबका उत्तर वह नितान्त सच्चाई के साथ देंगे।

इस मुल्क के राजनैतिक और धार्मिक जगत् के अनेक वर्षों के अनुभव के बाद ऐसी ईमानदारी (सत्यनिष्ठा) का पाया जाना ईश्वरीय आश्चर्य ही है।

गोलमेज परिषद के वक्त जब गांधीजी इंग्लैण्ड में थे तो वह 'अन्तःप्रेरणा पर' भाषण देने गिल्डहाउस में आये थे। हॉल खचाखच भरा था और सैकड़ों लोग बाहर खड़े थे। हम बड़े ध्यान से यह सुन रहे थे कि एक ऐसे व्यक्ति को, जो अन्तःप्रेरणा के बारे में बातें-ही-बातें नहीं करता था, बल्कि जिसे उसका यथार्थ अनुभव भी था, कहना क्या है? उन से बहुत से सवाल किये गये। कभी-कभी महात्मा को उत्तर देने से पहले रुकना पड़ता था। बाद में मुझे मालूम हुआ कि वह सिर्फ इसलिए रुकते थे कि वह मानवी भाषा में अधिक-से-अधिक [illegible]

[illegible]

जिन-जिन बातों से बहुत-से अंग्रेज़ों को आह्लाद हुआ, उनमें एक बात यह भी थी कि उन्हें यह पता लगा कि उस महान् आत्मा में भी उन सब बातों पर विनोद करने और हँसने की प्रवृत्ति है, जिन पर हम सब की रहती है। मुझे अपनी कार में थोड़ी दूर उन्हें ले जाने का सौभाग्य मिला था। मार्ग में मुझसे उन्होंने मुझे सम्मानार्थ मिली हुई उपाधि के विषय में प्रश्न किया। यह तुम्हारे आगे 'डी० डी०' क्या लगता है? मैंने कहा कि ग्लासगो यूनिवर्सिटी ने मुझे सम्मानार्थ 'डॉक्टर ऑव डिविनिटी' (ब्रह्मविद्या की आचार्या) की उपाधि दी है। "अरे", वह बोले, "तब तो तुम 'ब्रह्म' के सम्बन्ध में सबकुछ जानती हो!"

थोड़ी देर तक मोटर में बिठला कर ले जाने की शुरुआत कैसे हुई, यह मुझे अच्छी तरह याद है। गांधीजी ने वचन दिया था कि वह मेरी मोटर में अपनी दूसरी मुलाक़ात की जगह जायँगे। लेकिन जब हम गिल्डहाउस के बाहर आये तो देखा कि लोगों की भीड़ उमड़ती आ रही है और मैं अपनी गाडी फ़ौरन् नहीं खोज सकी। लन्दन की हर एक गाड़ी बगल में होकर धीरे-धीरे निकलती मालूम होती थी, इस आशा में कि उसके ड्राइवर को उन्हें ले जाने का सौभाग्य मिल जाय। मौसम ठंडा और नम था और महात्माजी के शरीर पर काफ़ी कपड़े नहीं थे। दुखपूर्वक मैंने निर्णय किया कि मुझे उन्हें नहीं रोकना चाहिए और मैं बोली, "अगली गाड़ी में बैठ जाइये, मेरी गाड़ी की प्रतीक्षा न करें।" पर उन्होंने उत्तर दिया—"तुम्हारी गाड़ी के लिए ठहरा रहूँगा।" मैंने अनुभव किया कि जैसे मुझे राजमुकुट मिल गया है! एकदम ईसा के एक अनुयायी के शब्द मुझे सूझे कि "पास कुछ न होकर भी सबकुछ" उनका है। गांधीजी के पास मोटरगाड़ी कहाँ थी? लेकिन बीसों गाड़ियाँ उन्हें घेरे खड़ी थीं, इस उम्मीद में कि वह किसी एक को चुन लें।

आज के संसार में महात्माजी का सबसे अधिक आग्रह अहिंसात्मक अविरोध पर है। यह ज्ञान है जो उन्होंने, और उन्होंने ही, जीवन के सत्तर बरसों के अनुभव के उपरान्त पाया है और उनका इसमें विश्वासमात्र ही नहीं है, बल्कि वह दिन-प्रतिदिन दृढ से दृढतर होता जा रहा है कि वह हिन्दुस्तान भर ही की नहीं, समस्त संसार की रक्षा कर सकता है। जब इस विषय पर उनसे प्रश्न किये जाते हैं तो मैं यूरोप के घृणा और हिंसा के वातावरण से घबराकर उत्कट उत्कण्ठा के साथ उनके विचार पढ़ती हूँ।

इन सबसे बढ़कर, एक महिला के नाते मैं उस महात्मा से अधिक-से-अधिक आशा रखती हूँ।

हरिजन के हाल के किसी अंक में वही महत्वपूर्ण प्रश्न, जो प्राय यहाँ के स्त्री-पुरुषों से पूछा जाता है गांधीजी से भी पूछा गया था कि अगर किसी महिला के सतीत्व पर हमला हो तो उसे क्या करना चाहिए? अब महात्मा का उत्तर क्या होगा? क्या वह प्रश्न को उड़ा जायँगे? या कहेंगे कि मैं महिला थोड़े ही हूँ जो

उनको इस प्रश्न का उत्तर दूं ? तो फिर क्या कहेंगे ? क्या जवाब देंगे ?

उन्होंने उत्तर दिया कि महिला को इसका विरोध करना चाहिए, चाहे फिर उस विरोध में उसे मरना भी पड़े, किन्तु किसी भी प्रकार से हिंसा का आश्रय नहीं लेना चाहिए। स्त्री-जाति के नाम पर मैं उन्हें प्रणाम करती हूँ। अपनी इज्जत और लज्जा की दृष्टि से महिला की स्थिति पुरुष से नितान्त भिन्न है, क्योंकि उसकी इच्छा के विपरीत उसकी गिरावट की जासकती है, यह भयकर धारणा जो आज दुनियाभर में, आमतौर पर, फैलाई जाती है, उनके इस उत्तर से नष्ट हो जाती है। वास्तव में यह सच नहीं है—अर्थात् किसी भी व्यक्ति, स्त्री या पुरुष, का दूसरे के द्वारा की गई किसी भी चीज से पतन नहीं हो सकता। हम स्वय ही अपना पतन स्वतः कर सकते हैं। अवश्य ही ऐसी बातें भी हैं जो "मृत्यु से भी बुरी" हैं और पतन या अपमान उनमें से एक है। किन्तु इसका अस्तित्व हमारे अपने कार्य या इच्छा को छोडकर किसी भी दूसरे के कार्य या इच्छा में नहीं है। गाधी के सिवाय क्या किसी ने यह उत्तर देने का साहस किया है? उसके लिए वह हम सब महिलाओं के आदर के पात्र हैं।

क्या दुनिया को वह समझा सकेंगे ? इस बात की कल्पना करते भय लगता है कि आज पश्चिम में जो पशुबल या सैन्यसग्रह में इतनी श्रद्धा बढती जा रही है, वह कदाचित् महात्माजी के अपने देशवासियों पर पड़े असर को दबा दे और उन्हें यह यकीन दिला सके कि पशुबल ही पशुबल का मुक़ाबिला कर सकता है। यह तो न केवल हिन्दुस्तान ही, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य और तमाम दुनिया के लिए एक दुखदायी घटना होगी। अकेले यूरोप में ही नहीं, पश्चिम के दोनों अमेरिका महाद्वीपों में ही नहीं, बल्कि पूर्व में भी जापान में, कनफ्यूशियस के शांतिवादी चीन तक में, हिंसा में विश्वास जड पकडता जा रहा है। क्या हिन्दुस्तान इस अहिंसा-सिद्धांत को सुरक्षित रक्खेगा? सघर्षशील ससार में क्या एक हिन्दुस्तान ही सत्य पर डटा रहेगा और हमें प्रकाश दिखाता रहेगा? अगर हाँ, तो ससार सुरक्षित है। अगर नहीं, तो..?

ओ भारत हमें निराश न करना।

: ४५ :

सच्चे नेतृत्व के परिणाम

वाइकाउण्ट सेम्युअल, जी. सी बी., जी सी ई., डी सी एल

[लन्दन]

समय-समय पर गांधीजी ऐसे काम कर रहे हैं और ऐसी बातें कह रहे हैं जिनसे मेरा जी खीझ उठता है। वे बातें मुझे अव्यावहारिक और दुराग्रहपूर्ण मालूम

होती है। मैं प्राय अपनेआपको उनका समर्थक नही वरन् विरोधी समझने लगता हूँ। फिर भी, यह सब होते हुए भी, मुझे विश्वास है कि गाधीजी एक ऐसे पुरुष है जो नितान्त सचाई और सर्वांगीण आत्मबलिदान की लगन के साथ, कभी इस मार्ग से, तो कभी उस मार्ग से, श्रेष्ठ ध्येय की ओर प्रगतिशील है।

दुनिया को चाहिए कि अपने महापुरुषो को पहचाने। ससार अपने महान सेवको के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करे। यद्यपि यह व्यग ही मे कहा जाता है कि "मृत पर जब फूल चढते है तो जीवित को काटे ही मिलते है।" पर हमें कभी जीवित पर भी, यदि वह इसके योग्य है तो फूल चढाने चाहिए।

अपने लम्बे जीवन मे गाधीजी ने हिन्दुस्तान की, और हिन्दुस्तान के द्वारा समस्त मानव-जाति की, असंख्य सेवाये की है। उनमे से तीन मुख्य है।

उनको ऐसा जन-समाज मिला, जिसकी अपनी विशेषता थी "पूर्वीय दब्बूपन।" शत्रु से हारना, शासित होना, पिछडे हुए, अशिक्षित, अन्धविश्वासी और दरिद्र बने रहना, यही हो गया था हिन्दुस्तान के असख्य लोगो के भाग्य का—अतीत के इतिहास से अनुशासित और वर्तमान की अनिवार्य परिस्थितियो से बाध्य—एकमात्र निपटारा। इस सबको बदल डालने के लिए गाधी उस आन्दोलन का नेता बनकर आगे आया, जो उस समय साधारण और डाँवाडोल हालत में था। अपने गुणो के बल से उसे शीघ्र ही प्रधानता मिल गई। उसके पास थी वह आत्मिक तेजस्विता और उसके साथ व्यवहार-क्षम कठोर निर्धारण शक्ति, जो जब कभी सयोगवश प्रकट होती है तब जनता को आन्दोलित कर देती है और जिन्हे विजयघोष से प्रतिध्वनित सफलताये वरण करती हैं।

गाधी ने हिन्दुस्तान को अपनी कमर सीधी करना सिखाया, अपनी आखें ऊपर उठाना सिखाया और सिखाया अविचल दृष्टि से परिस्थितियो का सामना करना। कहा गया है—"जीवन को समझने के लिए भूतकाल की ओर और उसे सफल बनाने के लिए भविष्य की ओर देखना चाहिए।" गाधी ने अपने देशवासियो को उसमें आत्मविस्मृत होने के लिए नही, वरन् उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिए, अपने भूतकाल का अध्ययन करना सिखाया। गाधी ने उन्हे अपने वर्तमान को अपने जबर्दस्त हाथो से पकडने की प्रेरणा दी, जिससे वे जाग्रत रहकर अपने भविष्य का निर्माण कर सकें। गाधी ने उन्हे "भविष्य की ओर देखना" सिखाया और इस गौरवपूर्ण जीवन की प्राप्ति की दिशा मे किये जानेवाले भगीरथ प्रयत्न मे उन्होने इस बात को प्रधानता दी कि हिन्दुस्तान की महिलाओ को पुरुषो का हाथ बँटाना चाहिए।

अग्रेज जाति आत्मसम्मान-प्रिय होती। इसी कारण हम दूसरो के आत्मसम्मान की भी इज्जत करते है। मुझे यह कहने हिचकिचाहट नही होती कि—पिछले वर्षों के तमाम वादविवाद और तमाम कशमकश के होते हुए—अग्रेज लोगो मे आज हिन्दुस्तानी [illegible] के लिए इतना अधिक सच्चा आदर है जितना उन दोनो के पारस्परिक सबन्धो

की शताब्दियों में कभी नहीं हुआ।

हिन्दुस्तान में मनुष्य-जाति का छठा भाग बसा हुआ है। किसी भी एक व्यक्ति से कहीं बढ़कर गांधी ने मानवजाति के इस बड़े हिस्से को अपने जीवन का दर्जा ऊँचा उठाने और आत्मा का उत्थान करने में योग दिया है। हिन्दुस्तान इसके लिए उनका कृतज्ञ क्यों न हो? और ब्रिटेन को कृतज्ञ क्यों न होना चाहिए? और समस्त संसार को भी कृतज्ञ क्यों नहीं होना चाहिए, जो प्रकारान्तर से तथा अततः इस लाभ का उपभोग करता है?

यद्यपि इस आन्दोलन में कुछ भीषण अपराध और अत्याचार के काले धब्बे अवश्य हैं, परन्तु वे गांधी की प्रेरणा से कब हुए? वे तो उनके द्वारा किये गये हार्दिक आग्रहों के स्पष्ट उल्लंघन में ही घटित हुए थे।

दूसरा महान् कार्य जिसने उनका नाम रौशन कर दिया यह है कि उन्होंने स्वतन्त्रता-साध्य और अहिंसा-साधन का सफल और अभूतपूर्व सामञ्जस्य कर दिखाया। रोष-प्रकाश, अनुनय-विनय, आवश्यकता पड़े तो आज्ञाभंग किन्तु बल-प्रयोग नहीं, विरोधी की हत्या नहीं, बलात्कार नहीं, बलवा नहीं—यही उनका संदेश था और है।

हिन्दुस्तान में ऐसी नीति जनता के चारित्र्य के अनुकूल ही है। वह अधिक आत्म-बलिदान की अपेक्षा रखती है जिसके लिए वह सर्वदा सन्नद्ध है। साथ ही इसका उनकी विवेक-बुद्धि से अच्छा मेल बैठ जाता है। यह एक ऐसा आचरण है जो प्रमुख रूप से, उस प्रायः दुरुपयुक्त शब्द के अच्छे-से-अच्छे अर्थ में, धार्मिक है। इसका परिणाम भी शुभ हुआ है। विशाल जन-समुदाय के बलिष्ठ प्रयत्न और अहिंसा दोनों ने मिल-कर अदूरदर्शी किन्तु स्वाभाविक रूप से होनेवाले विरोध पर किसी भी प्रतिघाती नीति से कहीं अधिक शीघ्रता और पूर्णता से विजय पाली है।

गांधीजी का तीसरा महान् कार्य यह हुआ है कि उन्होंने शक्ति और लगन के साथ दलित वर्गों का प्रश्न हाथ में लिया और उसे भारतीय राजनीति में आगे लाकर सफलता के पथ पर बिठला दिया है।

जो हिन्दुस्तान के सच्चे हितैषी हैं उन्हें यह साफ-साफ कहना चाहिए कि दलित जातियों के प्रति उनका यह व्यवहार [illegible] और धार्मिक इतिहास का एक काला धब्बा है। [illegible] जिसने अपने [illegible] के अपराध के [illegible] है [illegible] और फिर [illegible] पद-दलित करता है [illegible] मानवीय आत्मा का दमन करना ही नहीं [illegible] देना है।

गांधीजी ने अपनी सूक्ष्म और [illegible] से यह सब देख लिया है और इसका उनपर मार्मिक प्रभाव हुआ है। निरन्तर विरोध होते हुए भी उन्होंने इन बातों

पीड़ित मानवों को ऊँचा उठाने का और इस कलंक से देश को छुड़ाकर उसे मानवता के ऊँचे आसन की ओर ले जाने का अविराम और अथक प्रयत्न किया है। और अब हम देख सकते हैं कि यह आन्दोलन धीरे गति से जड़ पकड़ता जा रहा है, और अनुभव कर सकते हैं कि उसकी अंतिम सफलता अवश्यंभावी है।

× × ×

सत्तर वर्षों के अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए क्या कोई दूसरा जीवित पुरुष इतने महान् कार्यों को देख सकेगा? उन्होंने एक विशाल राष्ट्र की आत्मा का उत्थान करने और गौरव को बढ़ाने में नेतृत्व किया, उन्होंने आज की तथा कल की दुनिया को यह दिखाने में नेतृत्व किया कि सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में केवल मानव आत्मा की शक्ति-मात्र से ही, पाशविक शक्ति का आश्रय लिये बिना बड़े-बड़े शुभ परिणाम निकाले जा सकते हैं; और उन्होंने करोड़ों अन्याय-पीड़ितों का सदियों से चली आई अपनी पतितावस्था से उद्धार करने में नेतृत्व किया।

सिंहावलोकन के इस क्षण में गांधीजी अपने इस निरीक्षण से पूर्ण संतुष्ट हो सकते हैं। दूसरे लोग भी उनको अपनी-अपनी श्रद्धांजलियां अर्पण करें। उन्हें अक्सर तीखे-तीखे कांटे चुभाये गये हैं। आइए, अब हम उन्हें कृतज्ञता के फूल अर्पण करें।

: ४६ :

गोलमेज़ परिषद् के संस्मरण

लार्ड सैंकी, एम. ए., डी. सी. एल.

[लंदन]

इस लेख में मैं गांधीजी के जीवन की विवेचना या उनके सामाजिक और राजनैतिक विचारों की आलोचना नहीं करना चाहता। उनके चरित्र की शक्ति इस बात से काफी सिद्ध है कि उनके अनुयायी उनकी अमर्यादित प्रशंसा करते हैं और उनके विरोधी तीव्र निंदा। प्रस्तुत लेख व्यक्तिगत है और एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा लिखा गया है, जो उनके सब विचारों से पूर्णतः सहमत नहीं है।

मैं गांधीजी से पहली बार १३ सितम्बर १९३१ को मिला। हम गोलमेज परिषद् की संघ-योजना कमेटी में कुछ महीनों तक रोज घंटों एक-दूसरे के बराबर बैठते रहे। उसके बाद वह भारत लौट गये और फिर मुझे उनसे मिलने का मौका नहीं मिला। अत्यन्त कठिन विवाद के समय और अनेक चिन्तायुक्त क्षणों में एक आदमी के नजदीक बैठने के बाद या तो उसे आपको पसन्द करना होगा या नापसन्द, और मैं आशा करता कि मेरी गणना गांधीजी के मित्रों में की जा सकती है।

वह संघ-योजना कमेटी की बैठकों में उपस्थित होने के लिए इंग्लैण्ड आये थे, और मेरा परिचय उनसे लन्दन के डॉरचेस्टर होटल में एक मुलाकात के समय हुआ। यह अफवाह फैल चुकी थी कि वह आनेवाले हैं, इसलिए बाहर बड़ी भीड़ जमा थी। उनका क़द छोटा था, वह सफ़ेद कपड़े पहने थे, किन्तु वह इस तरह चलते थे मानो उन्हें अपने गौरव और ख्याति का भान हो। उनका बाह्य रूप चित्ताकर्षक था, किन्तु मुझपर सबसे ज्यादा असर डाला उनकी बड़ी-बड़ी और चमकीली आँखों ने, जिनसे आप कभी-कभी उनके भीतरी विचारों और विश्वासों का पता लगा सकते हैं।

मैं संघ-योजना कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसलिए कहा गया कि उनके साथ कमरे में अलग एक तरफ़ एकान्त में स्थिति-चर्चा करलें। वहाँ उन्होंने मेरे सामने विस्तार के साथ अपने विचार रक्खे। उन्होंने भारत को नीचा दर्जा मिलने की शिकायत की, किन्तु उनकी मुख्य चिन्ता का विषय सरकार का वह विशाल खर्चीलापन प्रतीत होता था जिसके कारण, उन्होंने कहा, ग़रीबों पर भारी कर लद गये हैं। सारी बातचीत के दौरान में ग़रीबों के लिए उनकी चिन्ता ही उनका प्रधान विषय था। वह भारत के देहातों में रहनेवालों के भाग्य के बारे में विशेष रूप से चिन्तित थे और इस बात से सहमत थे कि अति उद्योगीकरण एक बुराई है। उन्होंने मुझे सत्याग्रह का अपना मर्म समझाया और जब भारत की रक्षा का सवाल उठा तो उन्होंने हिन्दुओं के अहिंसा-सिद्धान्त पर खास तौर पर ज़ोर दिया।

ऐसी लम्बी मुलाक़ात के अन्त में उनके बारे में बहुत निश्चित विचार न बना लेना असम्भव था। शुरू में, आख़ीर में और हर घड़ी उनकी धार्मिक भाव-प्रवणता स्पष्ट थी।

मुझे अनुभव हुआ कि टॉल्स्टॉय के लेखों का उनपर असर पड़ा है। उनके खयाल में सामाजिक बुराइयों का इलाज था सादे जीवन को लौट जाना। दूसरे वह महान् हिन्दू देशभक्त प्रतीत हुए। उनके हृदय में अपने देश का प्रेम प्रज्ज्वलित था और थी उनकी प्रतिष्ठा और ख्याति को बढ़ाने की कामना एवं ग़रीबों और पीड़ितों को सहायता पहुँचाने की [illegible] यह है कि वह निर्विवाद रूप से एक महान् [illegible] थे [illegible] न केवल अहिंसा ध्येय के बारे में, बल्कि उसके सिद्ध करनेवाले साधनों के बारे में भी उनका विश्वास सच्चा और दृढ़ था।

कमेटी की पहली बैठक लन्दन के सेंट जेम्स पैलेस में १४ सितम्बर को हुई। वह गांधीजी का मौन-दिवस था [illegible] सितम्बर १५ [illegible] को उन्होंने अपना पहला भाषण दिया और उस समय [illegible] [illegible] प्रतीत हुए — [illegible] धर्म और [illegible] में ४० [illegible] बिना किसी नोट के वह करीब एक घंटे तक बोलते रहे। [illegible] करने से पूर्व उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़े और ऐसा मालूम पड़ा कि जैसे वह प्रार्थना कर रहे हैं। वह

पीड़ित मानवो को ऊँचा उठाने का और इस कलक से देश को छुड़ाकर उसे सभ्यता के ऊँचे आसन की ओर ले जाने का अविराम और अथक प्रयत्न किया है। और अब हम देख सकते है कि वह आन्दोलन धीर गति से जड पकड़ता जारहा है, और अनुभव कर सकते है कि उसकी अतिम सफलता अवश्यंभावी है।

× × ×

सत्तर वर्षो के अपनें जीवन का सिंहावलोकन करते हुए क्या कोई दूसरा जीवित पुरुष इतने महान् कार्यों को देख सकेगा ? उन्होंने एक विशाल राष्ट्र की आत्मा का उत्थान करने और गौरव को बढ़ाने में नेतृत्व किया, उन्होंनें आज की तथा कल की दुनिया को यह दिखानें मे नेतृत्व किया कि सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में केवल मानव आत्मा की शक्ति-मात्र से ही, पाशविक शक्ति का आश्रय लिये विना बड़े-बड़े शुभ परिणाम निकाले जा सकते है, और उन्होने करोडो अन्याय-पीड़ितो का सदियो से चली आरही अपनी पतितावस्था से उद्धार करने में नेतृत्व किया।

सिंहावलोकन के इस क्षण में गाधीजी अपने इस निरीक्षण से पूर्ण सतुष्ट हो सकते है। दूसरे लोग भी उनको अपनी-अपनी श्रद्धाजलियाँ अर्पण करे। उन्हें अक्सर तीखे-तीखे कांटे चुभाये गये है। आइए, अब हम उन्हे कृतज्ञता के फूल अर्पण करें।

: ४६ :

गोलमेज़ परिषद् के संस्मरण

लार्ड सैंकी, एम. ए., डी. सी. एल.

[लंदन]

इस लेख में मैं गाधीजी के जीवन की विवेचना या उनके सामाजिक और राजनैतिक विचारो की आलोचना नही करना चाहता। उनके चरित्र की शक्ति इस बात से काफी सिद्ध है कि उनके अनुयायी उनकी अमर्यादित प्रशसा करते है और उनके विरोधी तीव्र निंदा। प्रस्तुत लेख व्यक्तिगत है और एक ऐसे प्रशसक के द्वारा लिखा गया है, जो उनके सब विचारो से पूर्णत सहमत नही है।

मैं गाधीजी से पहली वार १३ सितम्बर १९३१ को मिला। हम गोलमेज परिषद् की सघ-योजना कमेटी में कुछ महीनो तक रोज घटो एक-दूसरे के बराबर बैठते रहे। इसके बाद वह भारत लौट गये और फिर मुझे उनसे मिलने का मौक़ा नहीं मिला। अत्यन्त कठिन विवाद के समय और अनेक चिन्तायुक्त क्षणो में एक आदमी के नजदीक बैठने के बाद या तो उसे आपको पसन्द करना होगा या नापसन्द, और मैं आशा करता हूँ कि मेरी गणना गाधीजी के मित्रो में की जा सकती है।

वह उपयोजना कमेटी की बैठकों में उपस्थित होने के लिए इंग्लैंड आये थे, और मेरा परिचय उनसे लन्दन के डोरचेस्टर होटल में एक मुलाक़ात के समय हुआ। यह अफ़वाह फैल चुकी थी कि वह आनेवाले हैं, इसलिए बाहर बड़ी भीड़ जमा थी। उनका क़द छोटा था, वह सफ़ेद कपड़े पहने थे, किन्तु वह इस तरह चलते थे मानो उन्हें अपने गौरव और ख्याति का भान हो। उनका बाहरी रूप चित्ताकर्षक था, किन्तु मुझपर सबसे ज्यादा असर डाला उनकी बड़ी-बड़ी और चमकीली आँखों ने, जिनसे आप कभी-कभी उनके भीतरी विचारों और विश्वासों का पता लगा सकते हैं।

मैं उपयोजना कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसलिए कहा गया कि उनके साथ कमरे में अलग एक तरफ़ एकान्त में स्थिति-चर्चा करलें। वहाँ उन्होंने मेरे सामने विस्तार के साथ अपने विचार रक्खे। उन्होंने भारत को नीचा दर्जा मिलने की शिकायत की किन्तु उनकी मुख्य चिन्ता का विषय सरकार का वह विशाल खर्चीला-पन प्रतीत होता था जिसके कारण, उन्होंने कहा, ग़रीबों पर भारी कर लद गये हैं। सारी बातचीत के दौरान में ग़रीबों के लिए उनकी चिन्ता ही उनका प्रधान विषय था। वह भारत के देहातों में रहनेवालों के भाग्य के बारे में विशेष रूप से चिन्तित थे और इस बात से सहमत थे कि अति उद्योगीकरण एक बुराई है। उन्होंने मुझे सत्याग्रह का अपना मर्म समझाया और जब भारत की रक्षा का सवाल उठा तो उन्होंने हिन्दुओं के अहिंसा-सिद्धांत पर ख़ास तौर पर ज़ोर दिया।

ऐसी लम्बी मुलाक़ात के अन्त में उनके बारे में बहुत निश्चित विचार न बना लेना असम्भव था। शुरू में, अखीर में और हर घड़ी उनकी धार्मिक भाव-प्रवणता स्पष्ट थी।

मुझे अनुभव हुआ कि टॉल्स्टॉय के लेखों का उनपर असर पड़ा है। उनके खयाल से सामाजिक बुराइयों का इलाज था सादे जीवन को लौट जाना। दूसरे वह महान् हिन्दू देशभक्त प्रतीत हुए। उनके हृदय में अपने देश का प्रेम प्रज्ज्वलित था और थी उनकी प्रतिष्ठा और ख्याति को बढ़ाने की कामना एवं ग़रीबों और पीड़ितों को सहायता पहुँचाने की लगन। अन्तिम बात यह है कि वह निर्विवाद रूप से एक महान् राजनैतिक नेता थे क्योंकि यह स्पष्ट था कि न केवल अन्तिम ध्येय के बारे में, बल्कि उनका नेतृत्व करनेवाले साधनों के बारे में भी उनका विश्वास मज़बूत और दृढ़ था।

कमेटी की पहली बैठक लन्दन के सेंट जेम्स पैलेस में १४ सितम्बर को हुई। वह गांधीजी का मौन-दिवस था, अतः वह एक शब्द भी नहीं बोले। [illegible] १५ मा० को उन्होंने अपना पहला भाषण दिया और उस समय दिया हुआ उनका यह भाषण सबसे मनोरंजक प्रदर्शन होगा — वह बहुत धीमे और विचारपूर्वक बोले। एक मिनिट में ७० शब्द बिना किसी नोट के वह करीब एक घंटे तक बोलते रहे। शुरू करने से पूर्व उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़े और ऐसा मालूम पड़ा कि जैसे वह प्रार्थना कर रहे हैं। वह

मेरी बगल में बैठे थे। पैरों में चप्पल, घुटनों के ऊपर तक की धोती, और एक सफ़ेद शाल ओढ़े हुए थे।' उन्होंने भारत को आज़ादी और मेरा ख़याल [illegible] भारतवर्ष को [illegible] देने की मांग की। इस परिषद के शारीरिक और मानसिक बोझ को गांधीजी ने कैसे सहन किया, यह सदा मुझे आश्चर्य रहा है। वह [illegible] दिन शुरू से [illegible] रहते थे। उस समय जो नोट लिया गया था, उससे पता लगता है कि कभी-कभी दिन [illegible] हज़ार शब्द [illegible] जाते थे।

किन्तु गांधीजी का असली काम तब शुरू हुआ जब परिषद् स्थगित हो गई। रात को बहुत देर तक और सवेरे बड़े तड़के वह प्रायः विभिन्न हितों के प्रतिनिधियों के साथ बातचीत और मुलाकात करते और उन्हें अपने विचारों का बनाने का भरसक प्रयत्न करते। प्रधान मंत्रियों और अधिनायकों के पास तो अपने लोगों पर अपने विचार थोपने के साधन और अवसर होते हैं, किन्तु गांधीजी के अतिरिक्त कभी कोई ऐसा आदमी हुआ हो, जिसने लाखों आदमियों को अपने जीवन और प्रयत्नों के उदाहरण से अपने पक्ष में कर लिया हो, इसमें मुझे सन्देह है।

यह मेरा सौभाग्य था कि परिषद् के दौरान में मुझे भारतवर्ष के अनेक विशिष्ट पुरुषों, बूढ़ों और जवानों तथा सभी सम्प्रदायों और श्रेणियों के लोगों से मिलने का अवसर मिला। वे सब गांधीजी से सहमत रहे हों या न रहे हों, पर उनके असाधारण व्यक्तित्व से सभी प्रभावित थे।

समय-समय पर वह अन्दर की आवाज़ से प्रेरित होते प्रतीत होते थे। संसार के इतिहास के विभिन्न समयों में अन्य महान् पुरुषों को भी ऐसा ही अनुभव हुआ है। उदाहरण के लिए सुकरात और संत पॉल के नाम लिये जा सकते हैं। कौन जाने ऐसे व्यक्ति पागलों के स्वप्न देखते हैं अथवा अलौकिक बुद्धिमानी के अधिकारी होते हैं, किन्तु कम-से-कम वह उन लोगों पर, जो उनके सम्पर्क में आते हैं, आदेशात्मक प्रभाव रखते प्रतीत होते हैं। गांधीजी राजनैतिक योगी हैं, कभी असम्भव किन्तु हमेशा धार्मिक, और इस बात के लिए सदा उत्सुक कि भारतवर्ष और गरीबों के लिए उनसे क्या किया जा सकता है।

उनके राजनैतिक जीवन के बारे में कुछ कहना मेरा काम नहीं है। राजनीतिज्ञों के साथ कभी-कभी कठोरता का व्यवहार किया जाता है। अपने 'सीसेम एण्ड लिलीज़' ('Sesame and Lilies') नामक ग्रंथ में एक प्रसिद्ध स्थल पर जॉन रस्किन कहते हैं—"हम यदि किसी मंत्री से दस मिनिट के लिए बात करें तो हमें ऐसे शब्दों में उत्तर मिलेगा जो भ्रामक होने के कारण मौन से भी बदतर होंगे।" यदि रस्किन स्वयं राजनैतिक नेता हुए होते तो उन्होंने इससे कुछ अच्छा व्यवहार किया होता, इसमें शक है। और जब पश्चिमी राजनीतिज्ञ गांधीजी के राजनैतिक जीवन की कुछ कटु आलोचना करते हैं तो उन्हें यह अनुभव करना चाहिए कि जो लोग कांच के मकान में रहते हैं

उनका दूसरों पर पत्थर फेंकना कहांतक ठीक हो सकता है ?

इसमें सन्देह नहीं कि गांधीजी के आदर्श उच्च हैं, किन्तु कभी-कभी मैं आश्चर्य करता हूँ कि यदि उनको न केवल अपने लोगों में, बल्कि भारतवर्ष की विशाल जन-संख्या पर जिसमें अनेक धर्म और जातियां हैं, सत्ता प्राप्त होती और उनकी जिम्मेदारी उनके सिर पर होती तो वह क्या करते ? ऐसी परिस्थिति में राजनीतिज्ञ को उपायों और साधनों का विचार करना पड़ता है। किन्तु उपाय और साधन दैवी पुरुषों के लिए नहीं होते और अन्त में आमतौर पर राजनीतिज्ञों पर दैवी पुरुष विजयी हो जाते हैं।

यदि मेरा विचार पूछा जाय तो जब गांधीजी का जीवन पूर्ण हो जायगा तो यह आमतौर पर माना जायगा कि अपने प्रयत्नों के फलस्वरूप वह दुनिया को उससे अच्छी अवस्था में छोड़ गये, जो कि उनके आगमन के समय थी।

: ४७ :

हिन्दुत्व का महान अवतार

डी. एस. शर्मा, एम ए.

[पचियप्पा कालेज, मदरास]

एक अमेरिकन यात्री ने एक बार कहा कि वह हिन्दुस्तान में तीन चीजें देखने आया है—हिमालय, ताजमहल और महात्मा गांधी। हम इस देश में महात्मा गांधी के इतने निकट हैं कि उनके व्यक्तित्व को वास्तविक रूप में नहीं देख सकते और न यही समझ सकते हैं कि जिन्हें वह अपने 'सत्य के प्रयोग' कहते हैं, उनका मानव-इतिहास में क्या महत्त्व है। उन्होंने खुद कहा है कि उनका सन्देश सार्वभौम है, भले ही वह भारत में और भारतीय राजनीति के क्षेत्र में दिया गया है। किन्तु जिस मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य मानव-जाति को उच्च नैतिक और आध्यात्मिक सतह पर ले जाना हो, उसके लिए राजनीति तो गौण या आकस्मिक प्रवृत्ति है।

हमने इस युग में [illegible] का [illegible] है [illegible] स्त्री-पुरुष की [illegible] ही करते सुनते हैं [illegible] खतरे का [illegible] और उल्लेख किये बिना [illegible] जल पर हजारों मील उड़कर एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को जाते हैं जैसा कि हम सब जानते हैं वायुयान के आविष्कार ने और युद्ध तथा शान्ति के कामों के लिए राष्ट्रों द्वारा उसको [illegible] अपनाने से इतिहास का नया पृष्ठ खोल दिया है। किन्तु महात्मा गांधी का आविष्कार मनुष्य-जाति के लिए वायुयान से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है और उसके भाग्य पर शताब्दियों तक अमिट प्रभाव डालेगा। उनका

सत्याग्रह आध्यात्मिक आकाश-शिक्षा के अलावा और कुछ नही है। जब हम उसे ठीक रूप मे समझ लेगे और उसपर सही-सही आचरण करेगे तो वह न केवल व्यक्तियों को, बल्कि राष्ट्रों को मनुष्यो में वास करनेवाले सिंह और बन्दर के स्वभाव से उठाकर उस रहस्यमयी आध्यात्मिक पूर्णता की ओर ले जायगा, जिसे हम ईश्वर कहते है। कुछ लोग उनके अहिंसा के सिद्धान्त पर, जिसे वह आत्म-शक्ति कहते है, हँस सकते है और पूछ सकते है कि जब उसे मशीनगन या विध्वसक बम का सामना करना पडेगा तो उसका क्या होगा ? स्पष्ट है कि उन्होने ईसाइयत की गाथा को नही समझा है। वह हमको पार्लमेण्ट के उस सदस्य की याद दिलाते है—वह शायद नरम दल का प्रतिनिधि था—जिसने नव-आविष्कृत रेल्वे एंजिन के बारे में बहस करते हुए कहा था कि यदि प्रस्तावित पटरी पर किसी क्रुद्ध गाय ने उस पर हमला किया तो क्या होगा ? किन्तु सौ वर्ष बाद, अथवा सम्भवत. हजार वर्ष बाद, क्योकि मनुष्य आध्यात्मिक जगत में अभी निरा शिशु है, जब यूरोप के आज के तमाम सैनिक अधिनायक अपने जैसे विचार वालो के साथ अपनी कब्रों में मिट्टी हो चुकेगे, और वह बर्बर शस्त्रास्त्रो का ढेर भी जिसे वे बढ़ाये जा रहे है, नष्ट हो चुका होगा, तब इस कृशकाय हिन्दू द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक शस्त्र जगद्व्यापी बन जायगा और दुनिया के राष्ट्र उसे आशीर्वाद देंगे कि उसने उन्हे श्रेष्ठतर मार्ग बताया—ऐसा मार्ग जो मानव-प्राणियो के लिए वस्तुत उपयुक्त है। उस समय उसको सब लोग परमात्मा का सच्चा दूत मानेंगे, जिसका सन्देश बुद्ध, ईसा अथवा मुहम्मद की भाति एक देश या जाति के लिए सीमित नही है।

हिन्दू-धर्म दुनिया का सबसे पुराना धर्म है। उसके पीछे चालीस शताब्दियो का अटूट इतिहास है। उसके दर्शन और उपनिषद् अभी बन्द नही हुए है। वह सदा नवीन सिद्धान्तो की घोषणा, नये नियमो के प्रचार और नये ऋषियो और अवतारो के आगमन की कल्पना करता है। एक शब्द में वह सत्य की उत्तरोत्तर सिद्धि है, और वह पुनर्जीवन के युग मे से होकर गुजर रहा है और उसके इतिहास में एक स्मरणीय अध्याय जोडा जा रहा है। क्योकि महात्मा गाधी, जो हिन्दू आध्यात्मिकता के सच्चे अवतार है और प्राचीन ऋषियो की शृखला की प्रत्यक्ष कडी है, हिन्दू-धर्म के शाश्वत सत्यो की पुनर्व्याख्या कर रहे है और उनको मौजूदा दुनिया की परिस्थितियो पर आश्चर्यजनक मौलिक रूप में घटित कर रहे है। उनका सत्याग्रह का सन्देश, जैसाकि वह स्वय कहते है, हिन्दूधर्म के 'अहिसा' सिद्धान्त का केवल विस्तार है और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ पर लागू किया गया है। भारतवर्ष के अलावा आवश्यक धार्मिक पृष्ठ-भूमि रखनेवाला कोई देश नही है, जहांकि इस महान् सिद्धान्त को जिसका उद्देश्य मानव में देवत्व जगाना है, विस्तृत और परिपूर्ण बनाया जा सके। उनका स्वराज्य, जो अहिंसा द्वारा प्राप्त किया जायगा और जिसमें सब धर्मों के साथ समान व्यवहार किया जायगा और सब समाजो को समान अधिकार और सुविधायें

प्राप्त होगी, 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' इस हिन्दू-सिद्धान्त की राजनैतिक व्याख्या-मात्र है। उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण और आधुनिक जाति-पाँति की असमानताओं को दूर करने के लिए जो महान आन्दोलन शुरू किया है, उसका उद्देश्य वर्णाश्रमधर्म-भावना की मौलिक पवित्रता को पुनः स्थापित करना है, जो उनके विचार में पृथ्वी का सबसे बड़ा साम्यवाद है। उन्होंने भारत के देहातों में चर्खे और करघे के पुनरुद्धार की हार्दिक अपील की है और इस देश में सम्पूर्ण मद्य-निषेध के लिए जो दलीलें दी हैं वे हमको भारतीय सभ्यता के उस स्वरूप की याद दिलाती हैं, जिसे हमको हर हालत में कायम रखना है। और सबसे अधिक, वह जिस प्रकार सब राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं को धार्मिक दृष्टिकोण से देखते हैं, जीवन के हर क्षेत्र में सत्य और अहिंसा पर जोर देते हैं और दैनिक जीवन की हर प्रवृत्ति में मनुष्यमात्र की आध्यात्मिक एकता को स्वीकार करते हैं, ये सब हिन्दू-धर्म के उत्कृष्ट पहलू हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने साधु-तुल्य आचरणों, उपवास, तप और त्यागमय जीवन के द्वारा आधुनिक जगत में जहाँ हमारी इन्द्रियों को पथ-भ्रष्ट करने के अनेक साधन उपलब्ध हैं, हिन्दू-धर्म के ब्रह्मचर्य, तपस्या और वैराग्य के प्राचीन आदर्शों को प्रस्थापित किया है। इस प्रकार महात्मा गांधी, वचन और कर्म दोनों के द्वारा, हिन्दुत्व के उस भविष्य की ओर इंगित कर रहे हैं जो उसके भूतकाल के समान ही उज्ज्वल होगा। निस्सन्देह हिन्दू-धर्म के इतिहास में महात्मा गांधी महान् रचनाशील महापुरुषों में से एक हैं और उनके भाषण और लेख हिन्दुओं के पवित्र धर्म-ग्रन्थों के अंग बनकर रहेंगे।

: ४८ :

महात्मा : छोटा पर महान्

फ्लेयर शेरीडन

लन्दन]

[illegible]

[illegible]

शिक्षाप्रद होती—स्पष्ट स्पष्टीकरण, आदर्श सयत विचार, घृणा-द्वेप का नाम नहीं और न हिंसा की धमकी।

मुझे स्मरण है कि जब लार्ड लण्डनडेरी ने मुझसे पूछा था कि "क्या गाधी हमसे बहुत द्वेप करता है ?" तो मुझे कितना आश्चर्य हुआ था।

गाधीजी व्यक्तिश. या सामूहिक रूप में घृणा या द्वेप भी कर सकते है, यह कल्पना ही प्रकट करती है कि हमने उनकी प्रकृति को समझने में गहरी भूल की है।

मुझे गोलमेज परिषद् के दिनो उन्हे बहुत नजदीक से देखने का सुअवसर मिला है। मेरी मित्र सरोजनी नायडू के द्वारा महात्माजी से इस बात की स्वीकृति लीगई कि मैं उनकी प्रस्तर मूर्ति बना सकती हूँ।

यह काम आसान न था। वह मेरी इच्छानुसार बैठने को तैयार न थे। इसका कारण या तो उनकी विनम्रता हो, या कार्याधिक्य हो अथवा उनको कला मे दिलचस्पी ही न हो। सम्भवत तीनो ही कारण हो।

मुझे याद है कि लेनिन ने भी ऐसी ही शर्तें लगाई थी, जबकि मुझे सन् १९२० मे क्रेमलिन मे उनके काम करने के कमरे में प्रविष्ट होने की आज्ञा मिली थी। इन दोनो मे एक विचित्र समानता है। दोनों ही तीव्र आदर्शवादी हैं, हालाकि हिंसा के महत्व के सम्बन्ध में वे अलग-अलग मत रखते हैं।

जब पहली मर्तबा महात्मा के दर्शन हुए तो उन्होने ठीक वही कहा जो लेनिन ने कहा था—"मैं रुक कर नही बैठ सकता। आप मुझे अपना काम करते रहने दें और फिर जितना सम्भव हो उतना अपना काम कर ले।"

गाधीजी फर्श पर बैठकर कातने लगे। लेनिन अपने दफ्तर मे कुर्सी पर बैठ-कर पढते रहे थे।

दोनो अवसरो पर मुझे मौन अवज्ञा का भान हुआ, किन्तु दोनो ही उदाहरणो में, अत पारस्परिक घनिष्ट मित्रता मे परिणत होगया। एक दिन गाधीजी ने लेनिन की ही भाँति प्राय उन्ही शब्दो और उसी व्यगयुक्त मुस्कराहट के साथ कहा—

"हाँ, तो तुम मि० विन्स्टन चर्चिल की भतीजी हो।"

यह वही पुराना विनोद था—विन्स्टन की एक सम्बन्धी उसके कट्टर शत्रु से मित्रता (हा ?) कर रही है। और गाधीजी ने बात आगे चलाई—

'तुम्हे मालूम है न, वह मुझसे मिलना नही चाहते ? किन्तु तुम उनसे मेरी ओर से कहना —कहोगी न ?— कि मैं तुमसे मिलकर कितना प्रसन्न हुआ हूँ।"

लेनिन ने करीब-करीब इसी तरह कहा था—'तुम अपने चचा से कहना. ." आदि।

जब मैंने उन दोनो के सिर पूरे बना लिये तो मैंने दोनो से यही प्रश्न किया—'आपका इस मूर्ति के बारे मे क्या ख्याल है ?' और दोनो ने एक-सा उत्तर दिया—

"मैं नहीं जानता। मैं अपने ही चेहरे के बारे में क्या कह सकता हूँ, और मैं तो कला के विषय में कुछ जानता भी नहीं। किन्तु तुमने काम अच्छा किया है।"

मैं कभी-कभी निर्णय नहीं कर सकती कि इन दोनों व्यक्तियों में से दुनिया पर कौन अधिक असर छोड़ जायगा।

जहाँ रूस का सम्बन्ध है, प्रतीत होता है कि लेनिन का सिवाय इसके, वहाँ कोई चिन्ह नहीं छूटा है, कि उनका शरीर काँच के सन्दूक में सुरक्षित रक्खा है। किन्तु अभी निर्णय करना बहुत जल्दी होगा। ईसाइयत को पैरों पर खड़े होने में दो सौ वर्ष लगे थे।

गांधीजी अभी क्रियाशील हैं। उनके काम का फल निकलना शुरू हुआ है। मेरी मान्यता है कि दोनों व्यक्तियों ने संसार को एक अजर-अमर सन्देश दिया है। वह ऐसा सन्देश है जो तिरस्कृतों और पददलितों को साहस प्रदान करता है। यह वह सन्देश है जिसने झुके हुओं का सिर ऊँचा करने का सामर्थ्य दिया है और इस दुनिया में उन्हें अपने स्थान का ज्ञान कराया है।

गांधीजी के सन्देश में आध्यात्मिकता की मात्रा है जो उसे दैवी स्तर पर पहुँचा देता है।

जो लोग लेनिन के उद्देश्य के लिए मरे, वे वीर मालूम होते हैं किन्तु जो गांधी के नाम पर मरेंगे वे बहादुर और शहीद दोनों ही प्रतीत होंगे।

मुझे अमेरिकन मूर्तिकार जो डेविडसन के साथ अपने विचारों को मिलाने का अवसर मिला था। उन्होंने भी गांधीजी की प्रस्तर मूर्ति बनाई थी। वह इस युग के अनेक प्रमुख व्यक्तियों की मूर्तियाँ बना चुके हैं, और हम एकमत थे कि उन लोगों से मिलने पर निराश होकर लौटना पड़ता है। [illegible], यदि उन्हें मन्त्रियों की सुरक्षित मसनद और छीने हुए राजसत्ता की भूमिका की दृष्टि से न देखा जाय, तो शायद ही कोई अपना असर छोड़ता है। किन्तु गांधी इन सबसे ऊपर उठे हुए हैं। [illegible]

[illegible]

[illegible]

कि यो छोटी होनेपर भी विविधता की दृष्टि मे बडी दुनिया जैसी ही बडी थी।

प्रतिदिन प्रात काल दस से बारह बजेतक उनसे कोई भी मिल सकता था, जो उनकी सलाह लेना या उनके प्रति अपना आदर-भाव ही प्रकट करना चाहता हो। वह हरेक का बन्धुभाव और सहिष्णुता के साथ स्वागत करते, पर अपने कातने के काम में बाधा न पड़ने देते। केवल एक बार एक आगन्तुक का अभिवादन करने के लिए वह उठकर खड़े हुए। मै नहीं मानता कि वह किसी राजघराने के व्यक्ति के लिए भी उठते, किंतु चर्च ऑव् इंग्लैण्ड के पादरी के लिए उठे। वह एक किताब लेकर आये थे। उन्होंने गाधीजी से अनुरोध किया कि "यह इसमें लिख दीजिए, कि हमको अच्छे ईसाई बननें के लिए क्या करना चाहिए।"

मुझपर इस बात का बडा असर पडा कि जो लोग बहुत देरतक ठहरे रहते अथवा जिनके प्रश्न फिजूल या ऊटपटांग प्रतीत होते, उनको गाधीजी किस दृढता पर मृदुल ढंग से विदा कर देते थे।

एक सज्जन आये जो यह दावा करते थे कि वह उन्हे दक्षिण अफ्रीका से जानते है और उन्होने गाधीजी को अपनी याद दिलाने की निष्फल कोशिश की—

"गाधीजी, क्या आपको हमारी दक्षिण अफ्रीका की बातें याद नहीं है ?"

"मुझे याद है दक्षिण अफ्रीका…।"

"क्या आपको डरबन के होटल का बगीचा याद नहीं है ?"

"मुझे याद है कि मुझे होटल में इस शर्त पर दाखिल किया गया था कि मैं बगीचे में न जाऊँ—होटलवाले एक हिन्दू को उसी दशा में टिका सकते थे जबकि वह अपने कमरे में पडा रहे—किन्तु इस सबमें कोई सार नही। मि० 'अ' मुझे आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई। किन्तु यदि आपको जल्दी हो तो मैं आपको रोके रखना पसन्द न करूँगा।..."

मुझे मि० 'अ' की बेबसी पर रज हुआ। किन्तु मैं नही मानता कि गाधीजी ने बात काटने के लिए असावधान से काम लिया। शायद उनको 'दक्षिण अफ्रीका की कुछ बातें' सचमुच याद थीं।

दूसरे आगन्तुक (ये एकके बाद एक आते रहते थे और गांधीजी का शिष्य-मत्री उनकी सूचना देता रहता था) थे एक सुवेशभूषित नमूने के अंग्रेज, जिनका महात्मा गाधी ने बडे मित्रभाव से स्वागत किया। किन्तु बातचीत मौसम की हालत और इंग्लैण्ड की हरियाली के आगे न बढी। यह आगन्तुक एक डाक्टर थे, जिन्होंने मोमबत्ती के प्रकाश में अनडिया (के फोडे अपेंडिसाइटिस) का आपरेशन करके गाधीजी की जान बचाई थी।

डाक्टर के बाद एक फ्रांसीसी वकील महिला आई। महात्माजी ने प्रश्न किया— "क्या फ़्रास में अब भी युद्ध की भावना विद्यमान है ?" महिला विरोध प्रकट करती

हुई बोली—'मोशिये गांधी, हमने युद्ध शुरू नहीं किया था। हमने तो केवल आत्मरक्षा की थी।' इस पर 'मोशिये गांधी' सहिष्णुतापूर्वक हँस दिये।

इनके बाद एक वामपक्षी साप्ताहिक के सम्पादक आये। जो प्रश्न मेरे भी मन में थे, वे सब चर्चा के लिए पेश हुए। सम्पादक के पास बहुत निश्चित दलीलें थीं। गांधीजी के पास भी हर दलील का उत्तर था। उनके उत्तर अकाट्य और सन्तोषकारक थे।

सम्पादक महाशय की भेंट पूरी होने के पश्चात् पॉल रॉबसन की धर्मपत्नी गांधीजी के पैरों के पास फर्श पर आकर धम-से बैठ गई और अमरीका की हब्शी समस्या के बारे में उनकी राय पूछने लगी। स्पष्टतः यह ऐसी समस्या थी, जिसपर विचार करने का गांधीजी को मौका न मिला था। किन्तु श्रीमती रॉबसन ने तर्क सामने रक्खे और पूछा—"क्या आप समझते हैं कि किसी दिन हब्शियों का प्राधान्य होजायगा?"

गांधीजी का ऐसा ख़याल 'नहीं' था। वह आगे बढ़ी।

"क्या आप समझते हैं कि हम हज़म कर लिये जायेंगे?"

"शायद..."

"और तब?..."

'ठीक, तो उस समय वह 'हब्शी' समस्या ही न रहेगी।"

अचानक एक नौजवान जर्मन महिला बिना सूचना दिये ही आ धमकी। वह महात्माजी से इतनी भलीभांति परिचित प्रतीत होती थी कि उन्होंने शिष्टाचार के पालन की आवश्यकता न समझी। गांधीजी कातते हुए रुक गये और अपना सूखा किन्तु कोमल हाथ आगे बढ़ा दिया। उन्होंने अपने दोनों हाथों में उसे थाम लिया और इस तरह पकड़े रही मानो वह किसी पवित्र अवशेष को थामे हो।

गांधीजी ने पूछा—"क्या तुम जर्मनी जा रही हो?"

उसने अपना सिर झुकाया, उसके ओठ कांपे, किन्तु उत्तर नहीं दे सकी। उसकी आंखों में आंसू छलछला आये।

"नमस्कार..."

उसने एक क़दम पीछे हटाया। उसके हाथ अब भी आगे बढ़े हुए थे, और आंखें गांधीजी पर जमी हुई एक प्रकार से आनन्द-मग्न थीं। उसने एक सिसकी ली और ग़ायब होगई।

आगाखाँ के पास से पगड़ी बांधे हुए एक दूत आया—'बहुत ज़रूरी, हिज़ हाईनेस उम्मीद करते हैं कि आप पचादन की बात मंजूर कर लेंगे...।'

इसके बाद एक हिन्दू विद्यार्थी अपनी अमरीकन धर्मपत्नी को मिलाने के लिए लाया। गांधीजी ने एक निगाह से पत्नी की ओर देखा और युवक से पूछा—

"क्या तुम अपनी धर्मपत्नी को भारत लेजाने का विचार रखते हो ?"

उसके स्वीकारात्मक उत्तर मे मुझे कुछ घबराहट-सी प्रतीत हुई। दुलहन निष्कपट, उल्लास और उमग से भरी थी। "महात्माजी, आप अमरीका कब आ रहे है ?" उसने पूछा।

"अभी नही,. ."

"वहाँ तो आपके लिए सब कोई पागल है।"

महात्माजी ने आख टिमकारते हुए कहा—"मेरे जानकार मित्रो का तो कहना है कि मुझे वहाँ चिडियाघर में रख देगे।" (विरोध और हसी)

इसके बाद महात्माजी के जीवनी-लेखक सी. एफ एण्ड्रूज सप्ताहान्त का कार्यक्रम स्थिर करने के लिए आये।

"हाँ, हाँ।" गाधीजी ने कहा। वह टूटे हुए धागे को जोड़ने में तल्लीन थे।

"और बापू, आज शाम को पन्द्रह अग्रेज पादरी स्वागत करेगे, यह न भूलिएगा। लन्दन के लाट पादरी सात बजे जरूरी काम से आपसे मिलने आनेवाले है।"

गाधीजी ने तीव्र दृष्टि से ऊपर देखा—"सात बजे की प्रार्थना का क्या होगा ?"

श्री एण्डरूज ने कहा कि आगे पीछे कर लेगे। गाधीजी ने फैसला किया—"मोटर मे, रास्ते में ही कर लेगे।"

कोई भी समझ सकता है कि पश्चिम की अशान्ति में पूर्वी सन्यासी का जीवन विताना कितना कठिन होगा। सोमवार के मौन-दिवस पर सतत आक्रमण होता रहता था और अत्यन्त दृढ प्रयत्न के द्वारा उसकी रक्षा करनी पडती थी। भोजन भी सदा चिन्ता का विषय बना रहता था।

सायकाल की सात बजे की प्रार्थना मे सम्मिलित होने की अनुमति मिलने पर जब मैने अपना आभार प्रदर्शित किया, तो महात्माजी ने कहा—"वह तो सबके लिए खुली है। किन्तु यदि सुबह तीन बजे की प्रार्थना मे उपस्थित रहना चाहो तो मै अपने मित्रो को कहूँ कि किंग्सले हॉल मे रात के लिए बन्दोबस्त करदें—पर अपना कम्बल साथ लेती आना, क्योकि वह हम गरीबो की बस्ती है।"

'किंग्सले हाल' कारखाने के मजदूरो मे सेवा-कार्य करनेवाली संस्था है। उसके लिए कुमारी लिस्टर ने अपना जीवन और सपदा उत्सर्ग कर दी है। कुमारी लिस्टर और उनके काम के प्रति अपनी पसन्दगी प्रकट करने के लिए ही महात्माजी ने अपनी इंग्लैण्ड की राजकीय यात्रा के समय किंग्सले हाल का आतिथ्य स्वीकार किया था।

मै कुहरभरी कडकडाती रात मे वहाँ पहुँची। मुझे एक कमरे में लेजाया गया। वह एक छोटा-सा सफेद सादा निराला कमरा था। उसमे छत पर खुली बारादरी में से होकर जाना पडता था। शुभ्रवसना मूर्ति थी मीराबाई। दीवार के सहारे झुकी खडी वह एक प्राचीन सन्त जैसी दीखती थीं। उन्होने मुझे ठीक तीन बजे से कुछ

पहले जगा देने का वादा किया।

मैं उस रात्रि को कभी न भूलूंगी—अजीब रहस्यमयी सुन्दरता थी उसकी। अर्द्धनिद्रा में और बालोंवाला कोट पहने मैं मीराबाई के पीछे-पीछे महात्माजी की कोठरी में गई। वह छोटी धवल और ठण्डी थी। वह फर्श पर एक पतली चटाई पर बैठे हुए थे। चद्दर ओढ़े हुए वह बहुत दुबले-पतले दिखाई देते थे।

हमारे साथ महात्माजी के हिन्दू साथी भी आ सम्मिलित हुए। दीपक बुझा दिया गया और खुले हुए दरवाजे में से धुंधला, शीतल, गीला कुहरा आरहा था। दो हिन्दू और एक अंग्रेज सन्त ने प्रार्थना के मन्त्रों का उच्चार किया। मुझे लगा कि मैं स्वप्न देख रही हूँ।

पाँच बजे से कुछ पहले मीराबाई ने मुझे फिर जगाया। यह महात्माजी के घूमने जाने का समय था और उनके साथ बात करने का सबसे उत्तम अवसर समझा जाता था।

यह बिल्कुल स्पष्ट था कि और किसी प्रदेश में तो यह जीवन सुन्दर लग सकता है या इस बड़े कार्यक्रम के अनुकूल तो वह हो सकता है। पर महात्माजी अपनी लन्दन की राजनैतिक और दूसरी तमाम कार्य-प्रवृत्तियों के साथ-साथ अपने धार्मिक सम्पन्न जीवन को किस भाँति निभा सके, मेरी कल्पना में तो इसका उत्तर उनका आध्यात्मिक अनुशासन ही है। किन्तु मैं, जिसने रत्तीभर अनुशासन का अभ्यास नहीं किया था, शीत, कुहरे और अनिद्रा के मारे मानसिक शारीरिक और आध्यात्मिक तीनों तरह से बिल्कुल शिथिल होगई थी। मैं महात्माजी के प्रातःकालीन भ्रमण में उनका पीछा करके उनका लाभ न उठा सकी। मैंने 'पीछा करना' शब्द का जानबूझकर उपयोग किया है क्योंकि चद्दर अपने चारों ओर लपेटकर महात्माजी इतनी तेजी के साथ चलते हैं कि वह कुहरे में कहीं गायब न होजावें इस डर से हमें करीब-करीब दौड़ना पड़ता था। [illegible]

[illegible]

बातो द्वारा प्राप्त करने की नहीं। उनके वातावरण में रहमात्र से मनुष्य आते-जाते उच्चतर सतह पर पहुँचता हुआ अनुभव करता है। उनके पास मौन रहकर चिन्तन करने से काफी लाभ उठाया जा सकता है।

सात साल बाद, जबकि भारतमाता आज़ाद हो चुकी है और स्मृति एक स्वप्न रह गई है, मैं यह बिलकुल सही-सही कह सकती हूँ कि गांधीजी से परिचय होने के बाद मुझमें कुछ परिवर्तन होगया है। जीवन में किसी कदर पहले से रस आगया है कुछ नई वस्तु, उसकी आभा, मिली है जिसे दूसरे अधिक उपयुक्त शब्द के अभाव में हम 'प्रेरणा' कहते हैं।

: ४६ :

गांधीजी की राजनीति-पद्धति

जनरल जे. सी स्मट्स, एम. ए., एल एल. डी., डी. सी. एल

[प्रधान मन्त्री, दक्षिण अफ्रीका]

यह उपयुक्त ही है कि मै, जो एक पीढी पहले गांधीजी का विरोधी था, आज तीन वीसी और दस वर्ष की आयु की शास्त्रोक्त सीमा पर पहुँचने पर उस भुक्तभोगी बूढे योद्धा को प्रणाम कर रहा हूँ। सामुद्रिक शास्त्री उस सीमा से आगे कृपा कम करते है, पर परमात्मा करे उनकी आयु लम्बी हो और आनेवाले उनके वर्ष ससार के लिए सफल सेवामय और उनके लिए मानसिक शान्ति से परिपूर्ण हो। मै इस पुस्तक के अन्य लेखको के साथ उनकी महान् सार्वजनिक सेवाओ को स्वीकार करने और उनके उच्च व्यक्तिगत गुणो की प्रशसा करने मे हृदय से शामिल होता हूँ। उनके जैसे मनुष्य हम सबको साधारण स्थिति और निरर्थकता की भावना से ऊँचा उठाते है और हमें प्रेरणा देते है कि सत्कार्य करने मे हमे कभी शिथिल न होना चाहिए।

दक्षिण अफीका यूनियन के प्रारम्भिक दिनो मे हमारी जो लडाई हुई, उसका गांधीजी ने स्वय वर्णन किया है और वह सर्वविदित है। ऐसे व्यक्ति का विरोधी होना मेरे भाग्य मे लिखा था, जिसके प्रति उस समय भी मेरे दिल मे अत्यधिक आदर भाव था। दक्षिण अफीका के लघु मच पर जो सघर्ष हुआ, वह गांधीजी के चरित्र की उन विशेषताओ को प्रकाश मे लाया, जो भारतवर्ष की बडे पैमाने पर लडी गई लडाइयो मे और भी प्रमुख रूप मे प्रकट हो चुकी है, और उनसे यह प्रकट होता है कि जिन उद्देश्यो के लिए वह लडते है, उनके लिए यद्यपि वह सर्वस्व उत्सर्ग करने को तैयार रहते है, किन्तु परिस्थिति की मानव भूमिका नही भुलाते, अपने मस्तिष्क का सतुलन कभी नही खाते, न द्वेष के वशीभूत ही होते है और अत्यन्त कठिन प्रसगो में भी

अपना मृदु-मधुर विनोद कायम रखते हैं। उस समय भी और उसके बाद भी उनका व्यवहार और उनकी भावना आज की निष्ठुर और नग्न पाशविकता से बिलकुल भिन्न थी।

मुझे खुले दिल से यह स्वीकार करना चाहिए कि उस समय की उनकी प्रवृत्तियां मेरे लिए अत्यन्त परेशान करनेवाली थीं। दक्षिण अफ्रीका के अन्य नेताओं के साथ उस समय मैं पुराने उपनिवेशों को एक संयुक्त राष्ट्र में समाविष्ट करने, नवीन राष्ट्रीय तंत्र का शासन चलाने और बोअर-युद्ध के बाद जो-कुछ शेष बचा था, उसमें से नये नये राष्ट्र का निर्माण करने में व्यस्त था। यह पहाड़ के समान भारी कार्य था और उसके लिए मुझे अपना हर क्षण लगाना पड रहा था। यकायक इस गहरी कार्यव्यस्तता के बीच गांधीजी ने एक अत्यन्त उलझनभरा प्रश्न खड़ा कर दिया।

हमारी अलमारी में एक कंकाल पड़ा था। वह था दक्षिण अफ्रीका का भारतीय प्रश्न। ट्रान्सवाल ने भारतीयों के आगमन को मर्यादित करने का प्रयत्न किया था। नेटाल में भारतीयों पर एक टैक्स लगता था, जिसका उद्देश्य था कि गन्ने के खेतों पर काम करनेवाले भारतीय अपने काम करने की मियाद पूरी होने के बाद अपने देश को लौट जायें। गांधीजी ने इस प्रश्न को हाथ में लिया और ऐसा करते हुए नई पद्धति का उदय किया। इस पद्धति को उन्होंने आगे चलकर अपने भारतीय आन्दोलनों से संसार-प्रसिद्ध बना दिया है। उनका उपाय यह था कि जानबूझकर क़ानून को तोड़ा जाय और अपने अनुयायियों को आपत्तिजनक क़ानून के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध करने के लिए सामूहिक रूप से संगठित किया जाय। दोनों प्रान्तों में घोर और विनाशजनक अशान्ति पैदा हो गई, ग़ैरक़ानूनी आचरण के लिए भारतीयों को बडी तादाद में क़ैद करना पड़ा और गांधीजी को जेल में थोडे काल के लिए वह आराम और शान्ति मिल गई, जिसकी निस्सन्देह उन्हें इच्छा थी। उनकी दृष्टि से सब बातें योजनानुसार हुईं। मेरे लिए, जिसे क़ानून और अमन की रक्षा करनी थी, परिस्थिति कठिनाईपूर्ण थी। मेरे सिर पर ऐसे क़ानून पर अमल करवाने का बोझा था जिसकी पीठ पर दृढ लोकमत न था और जिसमें अन्त में जब कि उस क़ानून को रद्द कर देना पड़ा निराशा मिली। उनके लिए विजयी मौका था। व्यक्तिगत लिहाज की भी कमी न थी क्योंकि गांधीजी के तरीके में ऐसी कोई बात नहीं है जिसमें एक विशेष व्यक्तिगत स्पर्श या लिहाज न हो। जेल में उन्होंने मेरे लिए चप्पलों का एक जोड़ा [illegible] तैयार किया और छूटने पर मुझे भेंट किया। उसके पश्चात् मैंने कितनी ही गर्मियों में उन चप्पलों को पहना है। हालांकि आज भी मैं यह अनुभव कर सकता हूँ कि ऐसे महापुरुष के बनाये जूतों को पहनने के भी मैं योग्य नहीं हूँ। जो भी हो, यह थी वह भावना जिससे हमने दक्षिण अफ्रीका में अपनी लड़ाई लड़ी थी। उसमें घृणा, द्वेष या व्यक्तिगत दुर्भावना को कोई स्थान न था। मानवता की भावना हमेशा विद्यमान थी। और जब लड़ाई खत्म हुई तो

एसा वातावरण था कि जिसमे अच्छी सधि सम्भव थी। गांधीजी और मेरे बीच एक समझौता हुआ, जिसे पार्लमेण्ट ने मजूर किया और जिसके कारण दोनो कौमो में वर्षों शान्ति बनी रही। यह भारत का भगीरथ कार्य हाथ मे लेने और अपनी भावना और व्यक्तित्व को, जिसका आधुनिक भारतीय इतिहास में दूसरा कोई उदाहरण नही है, उस देश के जन-साधारण पर अकित करने के लिए दक्षिण अफीका मे भारत के लिए रवाना होगये। और इस सारे अर्से मे वह अधिकाश मे उन्ही उपायो को काम में ला रहे है, जिनको कि उन्होने भारतीय प्रश्न पर हमारे साथ हुए सघर्षों मे सीखा था। वस्तुत दक्षिण अफ्रीका उनके लिए एक बडा भारी शिक्षणस्थल सिद्ध हुआ, जैसाकि उन अन्य प्रमुख व्यक्तियो के लिए, जोकि समय-समय पर इस विचित्र आकर्षक और उत्तेजक महाद्वीप में हमारे जीवन के भागीदार हुए है।

मैने 'अधिकाश में' कहा है, सम्पूर्णत नही। निष्क्रिय प्रतिरोध के पुराने तरीके के अलावा, जिसका नाम अब 'असहयोग' रख दिया गया है, उन्होने भारतवर्ष में एक नवीन विशिष्ट युक्ति ईजाद की है, जो बडी परेशानी मे डालनेवाली किन्तु प्रभावशाली है। सुधार की यह युक्ति अनशन द्वारा प्रतिपक्षी को सहमत करने का प्रयत्न करती है। सौभाग्यवश दक्षिण अफ्रीका में, जहाँ लोग अनावश्यक प्राण-हानि को भय की दृष्टि से देखते है, हमको इस युक्ति का सामना नही करना पडा। भारतवर्ष में उसने आश्चर्यजनक कार्य सम्पादित किये है और गाधीजी को ऐसी सफलतायें प्रदान की है जो सम्भवत अन्य उपायो द्वारा असभव थी।

इस अपूर्व युक्ति पर—खासकर राजनैतिक युद्ध मे तो यह नई ही है—निकट से विचार करना दिलचस्प होगा। मै कल्पना नही कर सकता कि ग्रेटब्रिटेन मे विरोधी दल का नेता अधिकारारूढ सरकार को उसकी नीति की त्रुटि अनुभव कराने के लिए आमरण अनशन करेगा। हम यहाँ विचित्र प्रदेश में जनतन्त्र की पद्धति और पश्चिमी सभ्यता से भी दूर रहते है। मेरे विचार से युद्ध के इस रूप पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। मै यहाँ इसपर केवल विहगावलोकन ही कर सकता हूँ।

भारतीय आचार-विचार के लिए यह बिल्कुल नया नही है। भारत में यह स्वीकृत पद्धति मालूम होती है कि लेनदार अनिच्छुक देनदार पर दबाव डालने के लिए देनदार पर नही, बल्कि स्वय अपनपर कष्टो को निमन्त्रित करे। देनदार को, जो कर्ज अदा न करना चाहता हो, हवालात मे रखवाना पश्चिमी तरीका है या रहा है। किन्तु भारत मे ऐसी बात नही होती। वहाँ लेनदार खुद जेलखाने चला जायगा या देनदार के दर्वाजे पर अनशन करके बैठ जायगा, ताकि देनदार का हृदय पिघल जाय और उसकी या उसके मित्र की थैली का मुह खुल जाय। गाधीजी ने इस भारतीय पद्धति को अपना लिया है और केवल उसका प्रयोग और परिणाम बदल दिया है। वह सरकार के या किसी पक्ष या वर्ग के दरवाजे पर अनशन करके, आवश्यक हो तो आमरण

अनशन करके, बैठ जावेंगे ताकि वह उसको समझा सके अथवा दूसरे शब्दों में, ठीक रास्ते पर आने के लिए उनपर दबाव डाल सके। वह देनदार की भांति सफल होते हैं, दलील देकर या समझाकर नहीं, बल्कि अन्तस्तल में छिपे हुए भय, लज्जा, पश्चात्ताप, सहानुभूति और मानवता की भावनाओं को जगाकर—उन भावनाओं को भी जो मानस में गहरी छिपी रहती हैं और जो दलील अथवा समझाहट से सामूहिक रूप में कहीं अधिक प्रभावशाली होती हैं। देनदार अर्थात् विपक्षी सरकार या जाति नैतिक दृष्टि से खोखली होजाती है और अन्त में इन भावनापूर्ण सामूहिक असर के आगे झुक जाती है।

कुछ दृष्टियों से यह युक्ति आधुनिक युग के विशाल परिमाण पर किये गये प्रचार के तरीक़ों से ज्यादा भिन्न नहीं है। वह लोकमत पर दलील के द्वारा नहीं, बल्कि भावनाओं के बल पर जिनमें से कई बुद्धि-संगत नहीं भी होतीं, विजय प्राप्त करने में वैसी ही कारगर होती है। कोई भी यह भलीभांति कह सकता है कि यह युक्ति भयावह है और इसका दुरुपयोग हो सकता है। यह ठीक उसी तरह की है जिस तरह कि पश्चिमी दुनिया में लोकमत को भ्रष्ट और विषाक्त करने के लिए प्रचार को साधन बनाया जा रहा है। उद्देश्य चाहे योग्य हो अथवा घृणित, तरीक़ा खतरनाक है; कारण कि वह तर्क और वैयक्तिक उत्तरदायित्व को जड़ से काटता है और व्यक्ति की आन्तरिक पुण्य-प्रतिष्ठा पर जोकि समस्त मानव-स्वभाव का अन्तिम गढ़ है, प्रहार करता है।

किन्तु गांधीजी की अनशन की कला एक बहुत महत्त्वपूर्ण रूप में पश्चिमी प्रचार से भिन्न है। इस कला का दर्शन करनेवाला (यदि मैं इस शब्द का प्रयोग कर सकूं तो) अपने कष्ट-सहन के विचार और हृदय से समाज के अन्तःकरण को जाग्रत करने की कोशिश करता है। इस युक्ति का आधार कष्ट-सहन का सिद्धान्त है। निःस्वार्थ कष्ट-सहन दुनिया की भावनाओं को शुद्ध करता है। उसका वैसा ही शुद्ध करनेवाला ऊंचा उठानेवाला असर पड़ता है जैसा कि अरस्तू की परिभाषा के अनुसार अति गम्भीर घटना का पड़ता है।

यहां हम केवल यूनानी [illegible] की भावना का ही नहीं बल्कि [illegible] धार्मिक [illegible] है। [illegible] ईसाई-धर्म [illegible] कष्ट-सहन का ही [illegible] है। [illegible] इतिहास में [illegible] महत्त्व-पूर्ण [illegible] है। [illegible] और [illegible] ने [illegible] है कि उनकी [illegible] के पीछे छोड़ जाती हैं। कष्ट-सहन की [illegible] शाली है और रहेगी। प्रारम्भिक रोमन साम्राज्य में धर्म के समूह ने ईसाई धर्म कष्ट-

सहन और बलिदान द्वारा ही विजयी हुआ था, न कि उनके समर्थकों की दलीलों ने और न ही उस उन्नत युग के आधुनिक दर्शनशास्त्रों ने उसकी प्रगति को रोका। इस प्रकार आज यूरोप में निर्दय और नग्न अमानुषता अपने से भिन्न जाति, धर्म व विश्वास रखनेवालों पर बड़े पैमाने पर जो सितम बरसा रही है, हो सकता है कि वह उन महान् प्रणालियों का ही विध्वंस करदे, जिनका कि हमने इतने गर्व के साथ पोषण किया है।

इसी कष्ट-सहन के शक्तिशाली सिद्धान्त पर गांधीजी ने सुधार की अपनी नई युक्ति का आधार रक्खा है। जो उद्देश्य उनके हृदय को प्रिय है उसके प्रति दूसरों की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करने लिए वह स्वयं कष्ट-सहन करते हैं। जहां दलील और अपील के सामान्य राजनैतिक अस्त्र विफल होजाते हैं, वहीं वह इस नई युक्ति का आश्रय लेते हैं, जोकि भारत और पूर्व की परम्परा पर आधारित है। जैसाकि मैं कह चुका हूं इस पद्धति पर राजनैतिक विचारकों को ध्यान देना चाहिए। राजनैतिक उपायों में गांधीजी की यह विशिष्ट देन है।

एक विचार और कहकर मैं इसे पूरा कर दूंगा। बहुत-से लोग और कुछ वे भी जो सच्चे दिल से उनके प्रशंसक हैं, उनके कुछ विचारों से और उनकी कुछ कार्य-पद्धतियों से असहमत होंगे। उनके काम करने का ढंग उनका अपना मौलिक है और महापुरुषों की भांति सामान्य मापदण्ड से मेल नहीं रखता। किन्तु हम उनसे चाहे कितनी बार असहमत हों, हमको सदा उनकी सच्चाई, उनकी निःस्वार्थता और सर्वोपरि उनकी मूलभूत और सार्वभौम मानवता का भान रहता ही है। वह हमेशा महा-मानव की भांति कार्य करते हैं। सभी वर्गों और कौमों के लिए और विशेषकर कुचले हुओं के लिए उनके हृदय में गहरी सहानुभूति रहती है, उनके दृष्टिकोण में वर्गीयता तनिक भी नहीं है, बल्कि वह उस सार्वभौम और शाश्वत मानवी भाव से अलकृत है जोकि आत्मा की महानता का परीक्षा चिन्ह है।

यह एक विचित्र बात है कि यूरोपीय अशान्ति और भ्रम के दिनों में एशिया किस प्रकार धीरे-धीरे आगे आ रहा है। वर्तमान विश्व के सार्वजनिक रंगमंच पर विद्यमान सबसे बड़े महापुरुषों में दो एशियावादी हैं—गांधी और च्यांगकाई शेक। दोनों ही विराट जनसमूह को उच्च मार्ग पर ऐसे लक्ष्य की ओर लेजा रहे हैं जो मूलतः ईसाई आदर्श से मिलता है और जिसे पश्चिम ने प्राप्त तो किया है किन्तु अब वह हार्दिकतापूर्वक आचरण नहीं कर रहा है।

मेरे हृदय मे बेचैनी उत्पन्न करदी है। सौभाग्यवश उनके अबतक के कार्यों ने ही कुछ इतिहास का निर्माण कर दिया है और अपनी 'आत्मकथा' में उन्होने स्वयं अद्‌भुत स्पष्टवादिता के साथ अपने चरित्र और उद्देश्य की गवेषणा करने का मसा प्रस्तुत कर दिया है।

वह गुजराती है, अर्थात् ऐसी जाति मे उत्पन्न हुए है जो युद्धप्रिय नही रही और जो, विशेषतया मराठो द्वारा बहुधा पददलित की गई और लूटी गई है। पश्चिम में उनकी जाति का बहुत ही कम ज़िक्र किया जाता है क्योकि पश्चिमवाले इसके महत्व को समझते ही नही, परन्तु भारत मे इन बातो को बहुत कम भुलाया जाता है। उन्होंने अपने आपको इस व्यग का शिकार बना लिया है (यह उनके नैतिक साहस का एक अग है कि वह इस बात को जानते है, लेकिन जानते हुए भी उससे विचलित नही होते) कि वह अहिंसा को जो इतना महत्व देते है वह उनके एक शान्तिप्रिय जाति मे जन्म लेने का लक्षण है। मेरा विचार है कि मराठे कभी इस बात को नही भूलते कि वे मराठे है और गाधी गुजराती है, गाँधी के प्रति इन लोगो की भावनायें उतरती-चढती और डावाडोल-सी रहती आई है। राजपूतो के बारे में भी यही बात कही जा सकती है, क्योकि वह भी एक युद्धप्रिय जाति है। मध्यभारत के एक राजा ने मुझसे कहा था—"एक राजपूत की हैसियत से मैं अहिंसा के सिद्धान्त को तो विचार में ही नही ला सकता। मारना और युद्धप्रिय होना तो राजपूत का 'धर्म' है।" इतने पर भी अहिंसा गाधी के उपदेशो का तत्त्व है और हालाकि उन्हे इसे कितने ही नये अनुयाइयो पर उनकी अनिच्छा रहते हुए भी लादना पडा है, परन्तु यही उनकी अनूठी विजयो का साधन हुआ है। मैं आगे चलकर फिर इसका वर्णन करूँगा और बतलाऊँगा कि यह बात सही है।

कोई भी व्यक्ति अपने वश और सस्कारो के प्रभाव से पूर्णरूपेण नही बच सकता और कभी-कभी यह बात उस मनुष्य के प्रतिकूल भी पडती है कि उसका जन्म ऐसे राष्ट्र मे हुआ हो जिसमें राजनैतिकता और सैनिकता की भावना न हो, और फिर उस राष्ट्र की भी एक छोटी और महत्वहीन रियासत में। यह आदर्श भारतवर्ष में सदा से चला आया है कि जब प्रजा पर अत्याचार हो तब राजा स्वय उसकी शिकायतो को सुनें। लेकिन जबतक कि ससार की सरकारो में और उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रणालियो में आमूल परिवर्त्तन न हो तबतक यह आदर्श व्यावहारिक रूप में एक लुप्त युग की वस्तु है। यह तो पैरिक्लीज के एथेन्स मे सम्भव होसकता था, जहाँ हरेक प्रमुख व्यक्ति को लोग शक्ल से पहचानते थे और स्वतन्त्र जनसमुदाय बहुत कम था या गाधी के बचपन के पोरबन्दर (गुजरात की छोटी रियासत) में। गाधीजी की राजनीति उन प्रश्नो का हल करने के लिए अपर्याप्त है, जो घरेलू या देहाती अर्थनीति से परे के है—जैसे एकसत्तात्मक शक्तियो से भरे ससार में भारत की

रंग का प्रश्न। वह तो सिर्फ छोटी और आदिम इकाइयों का ही विचार करते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक संसार की जटिलता को नहीं देखते (देखते हैं तो कुछ ऐसा मानकर कि उससे सदैव बचते और डरते रहना चाहिए—काश कि यह सम्भव होता !) वह सदा व्यक्ति का ही चिन्तन करते हैं। और यद्यपि, यदि आप चरमसीमा पर ही पहुँचना चाहें, यह उस प्रतिकूल प्रवृत्ति से कहीं अच्छा है जो मनुष्यों को एक समुदाय के रूप में या ऐसे पैसों के रूप में जिनसे कर (टैक्स) झाड़े जा सकते हों, या तोपों के भोजन के रूप में, या 'जनशक्ति के भंडार' के रूप में (जिसमें से कुछ हजार या कुछ लाख "आर्थिक कारणों" के लिए गोली से उड़ा दिये जावें या मार डाले जावें) देखती है, तो भी, अगर भारत की भलाई करना हो तो, इस खंड-खंड पृथक् प्रक्रिया के स्थान पर बड़े पैमानेवाली योजनाओं और कार्यों को अपनाना होगा।

परमात्मा की भारत पर बड़ी कृपा है कि उसने गांधी के बाद नेहरू को भी जन्म दिया। इस युवक से यह आशा की जा सकती है कि वह अपने पूर्वगामी के कार्य में जो कुछ महान और प्रभावशाली है, उसे कायम भी रक्खे और साथ-ही-साथ उस कार्य को उस दुनिया में भी ले जाने का साहस करे जिस पर उस वयोवृद्ध का विश्वास नहीं है।

कुछ-तो इसी संकुचित दृष्टिकोण के कारण गोलमेज परिषद में गांधीजी थोड़े अनमने जान पड़े और अपने विरोधियों की तरह तक कभी न पहुँच सके, जो मनुष्यों को दलों और समुदायों के रूप में देखते थे। आज की इस दुनिया में भी उन्हें कठिनाई पेश आरही है जहाँ कि एक के बाद एक गुट्ट बनाकर राष्ट्र दूसरे देशों पर टूट पड़ने के लिए तुले बैठे हैं। उनका अहिंसा का अस्त्र जो उनके हाथ में इतना तीक्ष्ण और बलशाली था कुंद हो चुका है। मेरे घर में एक बातचीत के दौरान में यह उपमा दी गई थी कि वह एक कैंची की तरह है जिसमें दो फल आवश्यक हैं एक विरोधी का और एक उनका। भारत में यह इस कारण सफल हुआ कि वह ऐसी सरकार के विरुद्ध प्रयुक्त हुआ जिसने—चाहे अनुत्साह से ही सही—इस बात को स्वीकार कर लिया कि विद्रोह और दमन के मध्य में भी कुछ नियम हुआ करते हैं [illegible] गांधीजी के [illegible] के हृदय में [illegible] और [illegible] का कुछ [illegible] राष्ट्रीय सेवक की [illegible] दृष्टि की [illegible] [illegible] अबीसीनिया के [illegible] के लिए [illegible]। यह ऐसी परिस्थिति थी कि यदि [illegible] सकता था।

वह सब परिस्थिति निकल गई और यह विश्वास करना कठिन है कि वास्तव में हमने ऐसा होते देखा था। गांधीजी ने कहा है कि अगर अबीसीनिया-निवासी [illegible]

मेरे हृदय में बेचैनी उत्पन्न करदी है। सौभाग्यवश उनके अबतक के कार्यों ने ही बहु-कुछ इतिहास का निर्माण कर दिया है और अपनी 'आत्मकथा' में उन्होंने स्वयं ही अद्भुत स्पष्टवादिता के साथ अपने चरित्र और उद्देश्य की गवेषणा करने का मसाला प्रस्तुत कर दिया है।

वह गुजराती है, अर्थात् ऐसी जाति में उत्पन्न हुए है जो युद्धप्रिय नहीं रही है और जो, विशेषतया मराठो द्वारा बहुधा. पददलित की गई और लूटी गई है। पश्चिम में उनकी जाति का बहुत ही कम जिक्र किया जाता है क्योकि पश्चिमवाले इसके महत्त्व को समझते ही नही, परन्तु भारत में इन बातो को बहुत कम भुलाया जाता है। उन्होंने अपने आपको इस व्यंग का शिकार बना लिया है (यह उनके नैतिक साहस का एक अंग है कि वह इस बात को जानते है, लेकिन जानते हुए भी उससे विचलित नही होते) कि वह अहिंसा को जो इतना महत्त्व देते है वह उनके एक शान्तिप्रिय जाति में जन्म लेने का लक्षण है। मेरा विचार है कि मराठे कभी इस बात को नहीं भूलते कि वे मराठे है और गांधी गुजराती है; गाँधी के प्रति इन लोगो की भावनायें उतरती-चढ़ती और डावाडोल-सी रहती आई है। राजपूतो के बारे में भी यही बात कही जा सकती है, क्योकि वह भी एक युद्धप्रिय जाति है। मध्यभारत के एक राजा ने मुझसे कहा था—"एक राजपूत की हैसियत से मैं अहिंसा के सिद्धान्त को तो विचार में ही नहीं ला सकता। मारना और युद्धप्रिय होना तो राजपूत का 'धर्म' है!" इतने पर भी अहिंसा गांधी के उपदेशो का तत्त्व है और हालांकि उन्हे इसे कितने ही नये अनुयाइयो पर उनकी अनिच्छा रहते हुए भी लादना पड़ा है, परन्तु यही उनकी अनूठी विजयो का साधन हुआ है। मैं आगे चलकर फिर इसका वर्णन करूँगा और बतलाऊँगा कि यह बात सही है।

कोई भी व्यक्ति अपने वंश और संस्कारो के प्रभाव से पूर्णरूपेण नहीं बच सकता और कभी-कभी यह बात उस मनुष्य के प्रतिकूल भी पड़ती है कि उसका जन्म ऐसे राष्ट्र मे हुआ हो जिसमें राजनैतिकता और नैतिकता की भावना न हो, और फिर उस राष्ट्र की भी एक छोटी और महत्त्वहीन रियासत में। यह आदर्श भारतवर्ष में सदा से चला आया है कि जब प्रजा पर अत्याचार हो तब राजा स्वयं उसकी शिकायतो को सुने। लेकिन जबतक कि समाज की सरकारो में और उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रणालियो मे आमूल परिवर्तन न हो तबतक यह आदर्श व्यावहारिक रूप मे एक स्वप्न मात्र की वस्तु है। यह तो [illegible] के [illegible] मे सम्भव हो सकता था जहां हरएक [illegible] व्यक्ति के [illegible] शासन मे [illegible] थे और स्वतन्त्र जनसमुदाय बहुत कम था जो गांधी के बचपन के पोरबन्दर (गुजरात की छोटी रियासत) मे। गांधीजी की राजनीति उन प्रश्नो को हल करने के लिए अपर्याप्त है, जो [illegible] [illegible] [illegible] हैं—जैसे एकमात्र [illegible] शक्तियो से भरे संसार में भारत की

रक्षा का प्रश्न। वह तो सिर्फ छोटी और आदिम इकाइयों का ही विचार करते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक संसार की जटिलता को नहीं देखते (देखते हैं तो कुछ ऐसा मानकर कि उस सबसे बचते और डरते रहना चाहिए—काश कि यह सम्भव होता !) वह सदा व्यक्ति का ही चिन्तन करते हैं। और यद्यपि, यदि आप चरमसीमा पर ही पहुँचना चाहें, यह उस प्रतिकूल प्रवृत्ति से कहीं अच्छा है जो मनुष्यों को एक समुदाय के रूप में या ऐसे पेटों के रूप में जिनसे कर (टैक्स) झाड़े जा सकते हों, या तोपों के भोजन के रूप में, या 'जनशक्ति के भंडार' के रूप में (जिसमें से कुछ हजार या कुछ लाख "आर्थिक कारणों" के लिए गोली से उड़ा दिये जावें या मार डाले जावें) देखती है, तो भी, अगर भारत की भलाई करना हो तो, इस खंड-खंड पृथक् प्रक्रिया के स्थान पर बड़े पैमानेवाली योजनाओं और कार्यों को अपनाना होगा।

परमात्मा की भारत पर बड़ी कृपा है कि उसने गांधी के बाद नेहरू को भी जन्म दिया। इस युवक से यह आशा की जा सकती है कि वह अपने पूर्वगामी के कार्य में जो कुछ महान और प्रभावशाली है, उसे कायम भी रक्खे और साथ-ही-साथ उस कार्य को उस दुनिया में भी ले जाने का साहस करे जिस पर उस वयोवृद्ध का विश्वास नहीं है।

कुछ-तो इसी संकुचित दृष्टिकोण के कारण गोलमेज परिषद में गांधीजी थोड़े असफल जान पड़े और अपने विरोधियों की सतह तक कभी न पहुँच सके, जो मनुष्यों को दलों और समुदायों के रूप में देखते थे। आज की इस दुनिया में भी उन्हें कठिनाई पेश आ रही है जहाँ कि एक के बाद एक गुट्ट बनाकर राष्ट्र दूसरे देशों पर टूट पड़ने के लिए तुल बैठे हैं। उनका अहिंसा का अस्त्र जो उनके हाथ में इतना तीक्ष्ण और बलशाली था कुंद हो चुका है। मेरे घर में एक बातचीत के दौरान में यह उपमा दी गई थी कि वह एक कैंची की तरह है जिसमें दो फल आवश्यक हैं, एक विरोधी का तो एक उनका। भारत में यह इस कारण सफल हुआ कि वह ऐसी सरकार के विरुद्ध प्रयुक्त हुआ जिसने—चाहे अनुपात में ही सही—इस बात को स्वीकार कर लिया कि विद्रोह और दमन के क्षेत्र में भी कुछ नियम होते हैं [illegible]। गांधीजी के शत्रु के हृदय में सज्जनता और उदारता का कुछ अंश था। इसलिए जब राष्ट्रीय सरकार की [illegible] और उनके दुश्मन की [illegible] के [illegible] निश्चयपूर्वक [illegible] हो गई तो [illegible] अन्त में निश्चय हो गई और [illegible] अमेरिका के सहयोग [illegible] के लिए दौड़े। यह ऐसी परिस्थिति थी कि यदि [illegible] अवश्य अन्त में आप बचे भी रह सकते थे और आपका काम भी सिद्ध हो जा सकता था।

वह सब परिस्थिति निकल गई और यह विश्वास करना कठिन है कि वास्तव में हमने ऐसा होते देखा था। गांधीजी ने कहा है कि [illegible] अबीसीनिया-निवासी युद्ध

मेरे हृदय में बेचैनी पैदा करती है। [illegible] ने गांधी के [illegible] का [illegible] दिया है और गांधी [illegible] अद्भुत [illegible] के साथ [illegible] और [illegible] भी [illegible] प्रस्तुत कर दिया है।

यह सत्य है, [illegible] जाति में [illegible] हुए हैं जो [illegible] और जो, विशेषतया मराठों द्वारा [illegible], [illegible] की गई और [illegible] गई है। [illegible] में उनकी जाति का [illegible] किया जाता है क्योंकि यदि मराठे [illegible] को समझते ही नहीं, परन्तु भारत में इस बात को बहुत [illegible] जाता है। उन्होंने अपने [illegible] इस भाग का विचार [illegible] दिया है (यह उनके [illegible] का एक अंग है कि वह इस बात को जानते हैं, [illegible] जानते हुए भी उसे [illegible] नहीं देते) कि यह अहिंसा का जो इतना [illegible] है वह उनके एक शान्तिप्रिय जाति में जन्म लेने का प्रभाव है। मेरा विचार है कि मराठे कभी इस बात को नहीं भूलेंगे कि वे मराठे हैं और गांधी गुजराती हैं, गांधी के प्रति इन लोगों की भावनायें उखड़ी-उखड़ी और डांवाडोल-सी रहती आई हैं। राजपूतों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है, क्योंकि यह भी एक युद्धप्रिय जाति है। मध्यभारत के एक राजा ने मुझसे कहा था—'एक राजपूत की हैसियत से मैं अहिंसा के सिद्धान्त को तो विचार में ही नहीं ला सकता। मारना और युद्धप्रिय होना तो राजपूत का 'धर्म' है।" इतने पर भी अहिंसा गांधी के उपदेशों का तत्त्व है और हालांकि उन्हें इसे कितने ही नये अनुयायियों पर उनकी अनिच्छा रहते हुए भी लादना पड़ा है, परन्तु यही उनकी अनूठी विजयों का कारण हुआ है। मैं आगे चलकर फिर इसका वर्णन करूँगा और बतलाऊँगा कि यह बात सही है।

कोई भी व्यक्ति अपने वंश और संस्कारों के प्रभावों से पूर्णरूपेण नहीं बच सकता और कभी-कभी यह बात उस मनुष्य के प्रतिकूल भी पड़ती है कि उसका जन्म ऐसे राष्ट्र में हुआ हो जिसमें राजनैतिकता और सैनिकता की भावना न हो, और फिर उस राष्ट्र की भी एक छोटी और महत्वहीन रियासत में। यह आदर्श भारतवर्ष में सदा से चला आया है कि जब प्रजा पर अत्याचार हो तब राजा स्वयं उसकी शिकायतों को सुने। लेकिन जबतक कि संसार की सरकारों में और उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तन न हो तबतक यह आदर्श व्यावहारिक रूप में एक लुप्त युग की वस्तु है। यह तो पैरिक्लीज के एथेन्स में सम्भव होसकता था, जहां हरेक प्रमुख व्यक्ति को लोग शक्ल से पहचानते थे और स्वतन्त्र जनसमुदाय बहुत कम था या गांधी के बचपन के पोरबन्दर (गुजरात की छोटी रियासत) में। गांधीजी की राजनीति उन प्रश्नों का हल करने के लिए अपर्याप्त है, जो घरेलू या देहाती अर्थनीति से परे के हैं—जैसे एकसत्तात्मक शक्तियों से भरे संसार में भारत की

रक्षा का प्रश्न। यह तो सिर्फ छोटी और आदिम इकाइयों का ही विचार करते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक संसार की जटिलता को नहीं देखते (देखते हैं तो कुछ ऐसा मानकर कि उन सबसे बचते और डरते रहना चाहिए—काश कि यह सम्भव होता !) वह सदा व्यक्ति का ही चिन्तन करते हैं। और यद्यपि, यदि आप चरमसीमा पर ही पहुँचना चाहें, वह उस प्रतिकूल प्रवृत्ति से कहीं अच्छा है जो मनुष्यों को एक समुदाय के रूप में या ऐसे देशों के रूप में जिनसे कर (टैक्स) झाड़े जा सकते हों, या तोपों के भोजन के रूप में, या 'जनशक्ति के भंडार' के रूप में (जिसमें से कुछ हजार या कुछ लाख ''आर्थिक कारणों' के लिए गोली से उड़ा दिये जावें या मार डाले जावें) देखती है, तो भी, अगर भारत की भलाई करना हो तो, इस खंड-खंड पृथक् प्रक्रिया के स्थान पर बड़े पैमानेवाली योजनाओं और कार्यों को अपनाना होगा।

परमात्मा की भारत पर बड़ी कृपा है कि उसने गांधी के बाद नेहरू को भी जन्म दिया। इस युवक से यह आशा की जा सकती है कि वह अपने पूर्वगामी के कार्य में जो कुछ महान और प्रभावशाली है, उसे कायम भी रक्खे और साथ-ही-साथ उस कार्य को उस दुनिया में भी ले जाने का साहस करे जिस पर उस वयोवृद्ध का विश्वास नहीं है।

कुछ-तो इसी संकुचित दृष्टिकोण के कारण गोलमेज परिषद में गांधीजी थोड़े अलग-थलग जान पड़े और अपने विरोधियों की सतह तक कभी न पहुँच सके, जो मनुष्यों को दलों और समुदायों के रूप में देखते थे। आज की इस दुनिया में भी उन्हें कठिनाई पेश आ रही है जहाँ कि एक के बाद एक गुट्ट बनाकर राष्ट्र दूसरे देशों पर टूट पड़ने के लिए तुले बैठे हैं। उनका अहिंसा का अस्त्र जो उनके हाथ में इतना तीक्ष्ण और बलशाली था कुंद हो चुका है। मेरे घर में एक बातचीत के दौरान में यह उपमा दी गई थी कि वह एक कैंची की तरह है जिसमें दो फल आवश्यक हैं, एक विरोधी का तो एक उनका। भारत में वह इस कारण सफल हुआ कि वह ऐसी सरकार के विरुद्ध प्रयुक्त हुआ जिसने—चाहे अनुपात में ही नहीं—इस बात को स्वीकार कर लिया कि विद्रोह और दमन के संघर्ष में भी कुछ नियम होते हैं। उनके (गांधीजी के) शत्रु के हृदय में सद्भावना और उदारता का कुछ अंश था। इसलिए जब राष्ट्रीय नेताओं की [illegible] की [illegible] को मार जाने का निश्चयपूर्वक [illegible] अन्त में निरुपाय [illegible] और अंग्रेज [illegible] के [illegible] अपनी [illegible] और [illegible] के [illegible]। यह ऐसी [illegible] थी कि यदि आपके [illegible] भी रह सकते थे और आपका [illegible] सिद्ध [illegible]

वह सब [illegible] से निकल गई और यह [illegible] है कि [illegible] में हमने ऐसा होते देखा था। गांधीजी ने कहा है कि [illegible]

अहिंसा का पालन करते तो उनकी विजय होती और (जब एकाधिकार युग के पूर्व जब उन दानव-स्वभाव व्यक्तियो का किसीको स्वप्न में भी विचार न था जो आज हमारी आँखो के सामने घूम रहे है) उनको कॅनीसाली उपमा बतलाई गई तो उन्होंने इसे न माना। परन्तु निस्सन्देह पुराने धनुषो की तरह उनका अहिंसा का अस्त्र भी आज एक इतिहास की वस्तु बन गया है। यदि उनका मुकाबिला किसी फासिस्ट या नात्सी शक्ति से पडा होता, या हिन्दुस्तान पर ऐसी सेनाओ ने आक्रमण किया होता, जो वायुयानो के द्वारा निर्दयतापूर्वक नगर-के-नगर विध्वस कर देती है और युद्ध के बंदियो को गोली से उडवा देती है, तो क्या हमको इनकी (अहिंसा की) मर्यादाओ का पता नही लग जाता ? क्या यह आश्चर्य की बात है कि राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) में भी इसके सम्बन्ध में तीव्र मतभेद है तथा नवयुवकगण इसे प्राचीन काल के रॅकलो और तलवारों की भाति अजायबघर की वस्तु समझते है ?

परन्तु इस सबका अर्थ तो इतना ही है कि गाधीजी एक लगातार दृढ शान्तिवादी है, जो कि मैं नही हूँ। मैं जानता हूँ कि आज से सौ वर्ष बाद भी लोग इनके व्यक्तित्व पर चकराते रहेगे, हालाकि पुस्तक प्रकाशक "मो० क० गाधी की पहेली", "गाधीजी का रहस्य" "साम्राज्य से युद्ध करनेवाला मनुष्य", इत्यादि, पुस्तको को पढने की सिफारिश करते रहेंगे और समालोचकगण घोषणा करते रहेगे कि आखिर अमुक चरित्र लेखक ने इनके जीवन का "रहस्योद्घाटन" कर दिया है।

दस वर्ष पूर्व, जबकि वह अपनी ख्याति के उच्च शिखर पर थे, तब उनके दर्शनीय व्यक्तित्व के लिहाज से लोगो का ध्यान उनकी ओर बहुत अधिक आकर्षित हुआ था। इससे उनके कार्यो पर से तो लोगो की दृष्टि हट गई, परन्तु उनकी प्रीतिभाजनता और उनका सहज स्वभाव सामने आने में बहुत सहायता मिली। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन सब बातो में उन्होने खूब मजा उठाया, परन्तु वह कभी भी स्वय अपनी गाथाओ से प्रभावित नही हुए। एक बार जॉन विल्क्स ने तृतीय जार्ज से कहा था, "मैं स्वय कभी भी विल्क्साइट (विल्क्स का अनुयायी) नही रहा।" गाधी भी कभी गाधी-आइट (गाधी के अनुयायी) नही हुए। वह तो अपने भोले अनुयायियो के प्रति एक शान्त और कुछ उपेक्षापूर्ण रुख बनाये रहते है, और वह जानते है कि उनके बहुत से भक्तो ने उनके उद्देश्य को सहायता नही पहुँचाई है। चुलबुलापन उनमें एक आकृष्ट करनेवाला गुण है, और विनोद-प्रियता की भावना के कारण वह सदा प्रसन्न रहते है। यदि आप स्वाभिमान बनाये रक्खे तो वह आपसे अच्छी तरह बातें करते रहेगे और अगर आप मज़ाक करते रहे तो बुरा भी नही मानते। वह कभी बडप्पन नही जताते (हालाकि उनमे बडप्पन बहुत है)। वह आपका मजाक उडावेगे और यदि आप बदले में उनका भी मजाक उडावे, तो उसमें वह रस लेगे।

काल्पनिक और साहित्यिक व्यक्तियो को वह ज़रा शुष्क और सन्देह की दृष्टि से

देखते हैं। कोई सम्मति अगर उनको नापसन्द हो तो वह मुस्कराते हुए इन शब्दों के साथ उसे निपटा देंगे, "अच्छा, लेकिन आप जानते हैं आप कवि हैं!' उनके कहने के ढंग से यह स्पष्ट झलकता है कि वह कहना तो यह चाहते हैं, "अच्छा आप जानते हैं, आप झक्की हैं।" परन्तु शिष्टाचार उनको स्पष्ट कहने से रोकता है। उनके और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बीच जो सम्बन्ध है उसे देखने में बड़ा आनन्द आता है। इन दोनों व्यक्तियों की पारस्परिक श्रद्धा गम्भीर और अविचल है, यद्यपि ये दोनों एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न प्रकृति के हैं। भारत इसको वर्षों से देखता आ रहा है और यह दृश्य इस देश की सम्पन्न सार्वजनिक शिक्षा का बड़ा भारी अंग है। इसने इस गौरव की भावना को प्रोत्साहित किया है कि भारत में दो इतने महान् व्यक्ति हैं, यद्यपि ये दोनों एक-दूसरे से इतने भिन्न हैं और दोनों इस बात को इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि राष्ट्र-निर्माण का जो कार्य दोनों को हृदय से प्रिय है उसके लिए हरएक कितना आवश्यक है!

"वह शिकवा भी करते हैं। हममें से जिनका भी कभी उनसे वास्ता पड़ा है उनसे कभी-कभी यह बात कही है, और कही भी है तो बड़े प्रेम के साथ। यह तार भेजेंगे जिसमें हजारों मील दूर किसी मित्र या साथी को कदाचित् किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए आना पड़े, और चर्चा करते-करते वह एकदम सिलसिला तोड़कर जो कुछ समय बचा हो उसीमें बातचीत समाप्त कर देंगे, क्योंकि उनके रोगियों को दवा के लिए चिट्ठी देने का ठीक समय आ पहुँचा है। जो बात मैं कहना चाहता हूँ उनका यह एक मामूली उदाहरण है, क्योंकि उद्देश्य हमेशा यही होना चाहिए कि बात को बढ़ाकर नहीं, बल्कि घटाकर कहा जावे। उस वाद-विवाद के समय जिसका ज़िक्र मैं पहले कर चुका हूँ मैंने एक बार उनको देखा जब कि बैलियोल के मास्टर, गिल्बर्ट मरे, सर माल्कम हेली, [illegible] इत्यादि के दल ने, लगातार तीन घण्टे तक उनसे प्रश्नोत्तर और जिरह की। यह एक अच्छी-खासी थका देनेवाली परीक्षा थी [illegible] हृदय में [illegible] भी वह न तो झल्लाए और न [illegible] हुए। मैं [illegible]

[illegible]

कानो में गूंज रहे है। लिडने ने आगे चलकर कहा था, "गाधीजी, इसे सम्भव मानिये कि आप गलती कर रहे हो!" परन्तु गाधीजी ने इसे सम्भव नही माना, क्योकि सुक-रात की तरह उनके पास भी एक 'प्रेत' है और जब वह 'प्रेत' बोल चुकता है, तो भले ही मृत्यु महात्माजी के चेहरे मे अपने पजे घुसेड दे या सारा-का-सारा विश्वविद्या-लय अपना तर्क सामने लाकर रखदे, तो भी गाधी विचलित नही हो सकता।

अग्रेजी मुहाविरे पर उनका अद्वितीय अधिकार कुछ-कुछ इस कारण है कि उनको अपने मस्तिष्क पर पूरा काबू है। विदेशियो के लिए हमारी भाषा में सबसे कठिन वस्तु सम्बन्धबोधक अव्ययो का प्रयोग है। मुझे आजतक ऐसा कोई भारतवासी नही मिला जिसने गाधी के बराबर इनपर पूरा-पूरा अधिकार कर लिया हो। यह बात मुझे गोलमेज परिषद् के समय मालूम हुई जब उन्होने दो-तीन बार मुझसे अपने किसी वक्तव्य का मसविदा तैयार करने लिए कहा। यदि आप पेशेवर लेखक है तो आप सम्बन्धबोधक अव्ययो के विषय में सावधान रहने का प्रयत्न करे। और मै स्वीकार करता हूँ कि इन मसाविदो के बनाने में मैने बहुत परिश्रम किया। गाधीजी मेरे कार्य को देखते जाते थे और कभी-कभी इन अव्ययो का केवल एक सूक्ष्म परिवर्तन कर देते थे—(यदि आपका अग्रेजी का ज्ञान खूब गहरा न हो तो) आप शायद यह विचार करे कि वह परिवर्तन बहुत साधारण था परन्तु वह अपना काम कर दिखाता था। कदाचित् उससे कही कोई गुंजाइश निकल आती थी, (क्योकि राजनीतिज्ञों को शायद गुंजाइश रखना पसन्द होता है)। कुछ भी हो, उस परिवर्तन मे मेरा अर्थ बदलकर गाधीजी का अर्थ बन जाता था। और जब हमारी निगाहे मिलती थी तथा हम एक-दूसरे को देखकर मुस्कराते थे तो यह ज़ाहिर होता था कि हम दोनो इस बात को जान गये है।

हाँ, वह वकील है, और वकील लोग खूब खिझा सकते है। जैसाकि—जब उसमें इग्लैण्ड के वकीलो ने इग्लैण्ड का प्रतिनिधित्व किया, राष्ट्र-सघ को, (लीग-ऑव-नेशन्स) पता लगा! जब किसी देश में क्रान्ति होती है और वहाँका अधिकार अन्त में जनता के हाथ में आता है, तो सबसे पहला सुधार सदा यह होता कि वकीलो को यमघाट पहुँचा दिया जाता है। बहुधा यह ही ऐसा एक सुधार है जिसके लिए अगामी सन्तति को कभी पछताना नही पडता।

और भारत मे ब्रिटिश सरकार करती क्या जब उसका पाला एक ऐसे वकील के साथ पडा, जिसने उससे लडते-लडते धीरे-धीरे अग्रेजी शब्दो के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अर्थों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जिसे न केवल अपने लिए कोई भय या चिन्ता थी, बल्कि जो वाद-विवाद की धारा के बिलकुल अकल्पित स्वरूप धारण कर लेने पर भी पराजित किया जा सकता था? और इससे भी बुरी बात यह थी कि इस व्यक्ति की हास्यरस की भावना इस प्रकार की थी कि वह स्वय ही आपके सामने इच्छापूर्वक अपनी क्षुद्रता

स्वीकार कर लेता था और आपको यह मौक़ा नहीं देता था कि आप उसीके अस्त्र से उसपर वार कर सकें। और सबसे बुरी बात यह थी कि वह तो एक दूसरा एन्टीयस ही था जिसकी शक्ति पृथ्वी माता को छूते ही अजेय हो जाती थी। गांधी को सदा सहारा प्राप्त था पूर्व के असित धैर्य और वैराग्य और प्रतिरोध के परीक्षित उपायों का।

वास्तव में उन दिनों भारत का निस्तार अहिंसा अर्थात् "अहिंसात्मक अप्रतिरोध' के कठोर पालन में ही था, और जब गांधी ने दूसरों से पहले इसे अनुभव किया तो यह आन्तरिक प्रेरणा का ही प्रकाश था। "इस लक्षण से तेरी जीत होगी।" बेशक! जब आपको ऐसा प्रतिद्वन्द्वी मिल गया जो इस तरह के आक्रमण के लिए तैयार न था, जो इससे भौंचक हो गया हो, जो अस्पष्ट रूप से यह महसूस करे कि वह ऐसे शत्रु पर आघात नहीं कर सकता जो बदले में आघात करने से इन्कार करे, तो वास्तव में आपने एक अस्त्र पा लिया और दुर्बल और निरस्त्र भारत के पास दूसरा कोई अस्त्र था भी नहीं। अगर आपके पास केवल तीर-कमान हैं तो इनको लेकर मशीन-गनों का मुकाबिला करना मूर्खता है। आप केवल शत्रु को "आत्म-रक्षा के निमित्त' मशीन-गनों प्रयोग करने का मौक़ा दे सकते हैं, जब कि वह उनको दूसरे निमित्त से प्रयोग करने में लज्जा अनुभव करे। आज 'अहिंसा चाहे जितनी अप्रिय हो गई हो, अपने समय में इसने अपना काम कर दिखाया।

और लाचारी तथा निराशा के कारण उत्पन्न हुई इस आन्तरिक प्रेरणा के साथ एक दूसरी प्रेरणा और आई। भारत की आत्मा ने चुपके से कहा, "धरना दो"। मेरे विचार से शायद सबसे पहले रश्ब्रुक विलियम्स ने यह पता लगाया था कि गांधीजी की इस राजनैतिक चाल का सम्बन्ध धरना देने की पुरानी प्रथा से है। यह प्रथा, जो बाद [illegible] में एक आफ़त हो गई थी, ऐसी थी कि कर्ज़ देनेवाला किसी नादिहन्द [illegible] के द्वार पर [illegible] सताया हुआ व्यक्ति किसी अत्याचारी या शत्रु के द्वार पर अनशन [illegible]

जिस समारोह के साथ वे जाना गया वह भुलाया नही जायगा। विदेशी सरकार के साथ, भारतीय हथियारों से, आक्रमण शुरू किया जा रहा था। ये हथियार पश्चिम से भी पहुँच चुके थे और वहाँ सफल भी हुए थे। पहले नाम कम्युनिस्ट—निष्क्रिय प्रतिरोधी फिर इसी हथियार के पक्षपाती (जो मूल-कल्पना की सीमा से एक कदम और भी आगे बढ़ गये थे परन्तु जो पूर्णतया "अहिंसात्मक" नहीं थे) और उनके बाद आतंकवादी के रूप मे देखने मे आये। यह भी आक्रमण "अहिंसा!"

गांधीजी के विषय मे एक महान् भारतीय ने एकबार मुझसे कहा था, "वह नीतिवान् है परन्तु आध्यात्मिक नही है।" दूसरे भारतीय ने कहा—"वह पकड़ मे नही आते, परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि वह सबसे ऊँचे दर्जे के सत्य का पालन कर सकते है।" और मेरे देश मे यह हुआ। गोलमेज परिषद् के दिनो जो कुछ लोग उनसे मिले, उन्हे निराशा हुई। उन्होने आश्चर्य के साथ कहा—"यह तो सन्त नही है!" मै भी उनको सन्त नही समझता और स्पष्ट बात तो यह है कि मुझे इसकी चिन्ता भी नही कि वह सन्त है या नही। मै समझता हूँ कि वह इससे भी कठोर कोई वस्तु है, और ऐसी वस्तु है जिसकी सन्तो से अधिक इस निराशा के युग को, जिसमे हम रह चुके है, आवश्यकता है। "वह सबसे ऊँचे दर्जे के सत्य का पालन करने मे समर्थ है।" वह वास्तव मे समर्थ है, वह उदात्त चरित्रता की असाधारण ऊँचाई तक उठ सकते है। दक्षिण अफ्रीका का वह असहनीय अन्याय के विरुद्ध किया हुआ सारा हिन्दुस्तानियो का सघर्ष, जिसके वह केन्द्र (और सब कुछ थे) एक ऐसी महान् घटना है कि मै उसकी क्या प्रशसा करूँ? और केवल उनका साहस ही अपार न था, बल्कि उनकी उदारता भी अपार थी। भारतवासियो की विशाल हृदयता मुझे जीवन के प्रत्येक पल मे आश्चर्य से भर देती है। उन्होने व्यक्तिगत और जातिगत दोनो पहलुओ से यह बतला दिया है कि वह क्रोध से ऊपर उठ सकते है, जैसाकि मै, एक अँग्रेज, महसूस करता हूँ कि यदि उनकी जगह पर मै होता तो कभी न कर सकता। गाधीजी चाहते तो वह हरेक गोरे को जीवन-भर घृणा की दृष्टि से देखते, परन्तु उन्होने ऐसा नही किया। वास्तव मे, जैसाकि बहुत दिन हुए एडमण्ड कैन्डलर ने देखा था, वह अँग्रेजो से काफी प्रेम करते है। इसके बाद नेटाल मे जूलुओ का कथित विद्रोह हुआ, जिसका प्रारम्भ बारह जूलुओ की फासी से हुआ और जिसमे गोलियो से उडा देने का और चाबुको की मार का हृदयविदारक दौर-दौरा रहा। गाधीजी ने यह दिखलाने के लिए कि वह ब्रिटिश-विरोधी न थे और घोर सकट के समय वह तथा उनके साथी अपने हिस्से का कर्तव्य पूरा करने के लिए प्रस्तुत थे, आहतो के उपचार के लिए अपनी सेवाये अर्पित कर दी। सुसस्कृत मूर्खता (मै इसको इसी नाम से पुकारूँगा) के फलस्वरूप उनको उन जूलुओ के उपचार का कार्य सौपा गया जिनके शरीर फौजी कानून के मातहत दी गई कोडो की मार से क्षत-विक्षत हो गये थे। यह अच्छी शिक्षा थी, यदि इसका अर्थ यह हो कि भारतवासी

से (आगे सजा की बात तक मेरे लिए उनसे बड़ा-बड़ा आलोचक विशेषण देना तो शायद ठीक न होगा) उन्होंने देखी इस मनुष्य की विनय, सचाई, पूर्णतया सौजन्य और उच्चकोटि की अलौकिक तथा वीरतापूर्ण आत्मशक्ति। इसके अधिक उसने क्या-क्या देखा सो मैं नहीं कह सकता। मैं जो वकील का नमूना ही हूँ तो अपनी कह सकता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि उन्होंने ब्रिटिश राज्य को, जो ऐसी वस्तु थी जिसको हममें से बहुत से चुनौती देने का साहस करने की इच्छा रखते थे, उतनी चुनौती नहीं दी जितनी कि सम्पूर्ण आधुनिक संसार को चुनौती दी जिसने मनुष्य-जीवन को मशीन-मय बनाकर उसकी गति-बुद्धि को रोक दिया है। उनका हमारे साथ झगड़ा उससे कहीं अधिक गहरी और व्यापक वस्तु थी जितनी हम उसे समझते थे।

१२ जनवरी को अपेन्डिसाइटिस के आपरेशन के कारण उनको जल्दी मुक्त कर दिया गया। जेल के गवर्नर ने उनको छुट्टी दे दी कि वह चाहे तो अपने वैद्य का इलाज करा सकते हैं या अपनी पसन्द का कोई सर्जन बुला सकते हैं। शिष्टाचार में पीछे न रहने की इच्छा से गांधी ने अपने आपको गवर्नर के हाथों में सौंप दिया और कोई विशेष रियायत नहीं मांगी। सर्जन ने एक बिजली की टार्च का प्रयोग किया जो ऑपरेशन के मध्य में ही खतम होगई, नर्स ऑपरेशन के अन्त तक एक हरीकेन लालटेन पकड़े रही। यदि रोगी की मृत्यु होजाती तो हम जानते हैं कि भारत और ससार क्या कहता। मिस मेयो ने इस घटना का बड़ा उपहास से वर्णन किया है, परन्तु गाधीजी ने इसको 'पवित्र' अनुभव बतलाया है जो उनके जेलर के लिए 'और, मुझे विश्वास है, मेरे लिए' प्रशसा की बात थी। वास्तव में यह प्रशसा की बात थी और इस ससार मे जहां इतनी अप्रिय वस्तुयें हुआ करती है यह दूसरी ही तरह की वस्तु थी।

मुझे समय नही है कि मै चर्खे के सिद्धान्त के विषय मे कुछ कहूँ। मै अनुभव करने लगा हूँ कि यह विवेकपूर्ण और न्यायोचित था, यद्यपि इसे कभी-कभी निरर्थक चरम सीमा तक पहुँचा दिया गया। उदाहरणार्थ जब उन्होंने रवीन्द्र बाबू से प्रतिदिन कातने के लिए कहा। उनमे निर्दोष आत्मपीडन की जो झलक है, उसके विषय मे भी मै कुछ नही कहूँगा। जिसके कारण वह अपने देशवासियो द्वारा अछूतो अथवा दुधारू गायो के प्रति किये गये अत्याचारो के पश्चात्तापस्वरूप जानबूझ कर गन्दे-से-गन्दा भगी का काम जो उन्हे अपने रोगियो के अस्पतालो मे मिला, करते है, और (फूका की निर्दय क्रिया के द्वारा गायो से जितना दूध वे दे सकती है उससे अधिक निकालने के विरोधस्वरूप) केवल बकरियो का दूध पीते है।

वह दूसरे लोगो को बडी खूबी के साथ जांच सकते है। उनकी मानवता जिस गहरी-से-गहरी वस्तु से बनी हुई है उसका उदाहरण इतिहास मे नही है। उनके हृदय में प्रत्येक कौम के लिए और सबसे अधिक दीनो तथा दलितो के लिए दया और प्रेम

तरीके निकम्मे हो जावेगे। यह भारत के लिए तथा ससार के लिए उससे भी महान् आपद् की घटना होगी जो भारत के बुद्ध के सिद्धान्तो को त्याग देने के कारण हुई थी। वह त्यागना बुरा और हानिकारक था, परन्तु उसने भारतीय सस्कृति का नाश नही किया; हाँ उसने इसकी बढती हुई लहर के वेग को रोक दिया तथा भारत का ससार की सेवा उतने बडे पैमाने पर करने का मौका छीन लिया, जितनी वह कर सकता था।

गाधीजी के जीवन के कार्यकलाप को भारतीय इतिहास के एक लिखे जारहे विकासशील अध्याय के रूप में देखना आवश्यक है। हमारे देश का इतिहास मुख्यत. आध्यात्मिक व्यक्तियो द्वारा बनाया गया है। स्मरणीय कला तथा साहित्य-सयुत विशाल राजतन्त्र स्वभावत उस आध्यात्मिक सस्कृति के मूल से उत्पन्न हुए और बढे जिसको इन व्यक्तियो ने मूर्तिमान किया तथा सिखाया। उदाहरणार्थ, अशोक का साम्राज्य तथा अजन्ता की कला एक विशाल वृक्ष की एक ही शाखा के फल है, वह शाखा है गौतम बुद्ध। इस वृक्ष की अनगिनती शाखाये है, और उसका मेरुदण्ड है उन समस्त पूर्ववर्ती बुद्धो की अविभाजन सस्कृति, जिसमें वैदिक ऋषियो तथा कवियो की भी गणना है। उसकी जड़ें पौराणिक गाथाओ मे वर्णित शकद्वीप तथा श्वेतद्वीप की प्राचीनतर मिट्टी में दबी हुई है। यह आवश्यक है कि गाधीजी को भारतीय इतिहास के बीसवी शताब्दी के उस चित्रपट पर एक जीवित केन्द्र-पुरुष के रूप में देखा जावे जिसकी पृष्ठभूमि मे करोडो वर्षो की घटनायें स्थित है।

जिन शक्तिशाली आध्यात्मिक व्यक्तित्वो ने हमारे इतिहास मे मुख्य भाग लिया है वे सदा योग-युक्त पुरुष रहे है। उन्होने अपनी दुष्प्रवृत्त इन्द्रियो को अनुशासन में लाकर अपनेमें योग साधा है। हाथो की, मस्तिष्क की तथा हृदय की क्रियाओ का जितना ही अधिक समरूप एकीकरण होगा, उतना ही महान् व्यक्तित्व होगा। उन्होने बाहरी ऐश्वर्य्य से नही, वरन् आन्तरिक सम्पन्नता से अपनी प्रिय मातृभूमि की सेवा की है। आवश्यकता पडने पर उन्होने राम की तरह राजसी वस्त्र भी धारण किये है। दूसरे युग मे राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने राजदण्ड के बदले बुद्ध का भिक्षा-पात्र ले लिया। ये दोनो आत्मसाधक व्यक्ति थे। इनके अतिरिक्त और भी कवि, ऋषि, महर्षि हुए है जो सब-के-सब बाह्य रूप मे एक-दूसरे से भिन्न तथा विभिन्न परिस्थिति-यो मे काम करनेवाले रहे है परन्तु आन्तरिक ज्ञान मे सब एकसमान थे—इनके मानस आत्मा के प्रकाश से ज्योतिमान तथा हृदय तपोज्ञान की ज्योति से आलोकित थे। इनके विषय मे कहा जा सकता है कि वे इतने भारतीय इतिहास के बनानेवाले नही थे जितना कि स्वयं के इतिहास से अर्थात भारतवर्ष कहलानेवाले तथा कर्मभूमि के नाम से विख्यात भूखण्ड की आत्मा की शक्ति ने उनको बनाया। इन सबने भारत की वास्तविक प्रकृति इसका आत्मिक रूप इसकी आध्यात्मिक नीति और व्यवस्था जो धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत है सबकी रक्षा करके मनुष्य-जाति की सेवा की।

: ५२ :

सत्याग्रह का मार्ग

श्रीमती सोफिया वाडिया

[इंडियन पी० ई० एन बम्बई की संचालिका व सम्पादिका]

गांधीजी एक भारतीय के नाते अत्यन्त महान् पुरुष हैं, जिनके जीवन का दर्शन तथा जिनका राजनैतिक कार्यक्रम एक साथ मनुष्यता के लिए प्रेरणादायक तथा अनेकों के लिए पहेली है। जहाँ एक ओर उनके आत्मिक जीवन के दर्शन का सिद्धान्त कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य समझ सकता है, तथा उनके नियमों का हरेक उत्साही तथा दृढ़-निश्चयी व्यक्ति पालन कर सकता है, वहाँ उनका राजनैतिक कार्यक्रम तबतक पहेली बना रहेगा, जबतक कि उनको भारत के अत्यन्त अतीत काल में से स्वभावतः विकसित होनेवाले और भारत के वर्तमान इतिहास का निर्माण करनेवाली शक्तियों के सच्चे अर्थों में मूर्तरूप देनेवाले पुरुष के रूप में न देखा जावे।

आजकल का भारत ईरान या मिस्र की तरह, प्राचीन भूमि में उगी हुई कोई नई सभ्यता नहीं है। बीसवीं शताब्दी की भारतीय चेतना की जीवन-धारा वही धारा है जो करोड़ों वर्षों से निरन्तर धीर गति के साथ बहती चली आरही है और अब भी गतिशील है। यहाँतक कि भारत में पुरातत्त्व की खुदाई के परिणाम भी एक नया अर्थ ले लेते हैं तथा एक नया महत्त्व रखते हैं, जैसाकि कदाचित् सिवाय चीन के और किसी जगह प्राप्त हुई वस्तुएँ नहीं रखतीं। उदाहरणार्थ मिस्र के स्तूप उस देश के कुछ प्राचीन गौरव की याद दिलाते हैं, परन्तु मोहेन्जोदारो में हम कह सकते हैं कि यह बात नहीं है, क्योंकि यह बात भग्नावशेष नहीं है, बल्कि भारत की जीवित-वस्तु का एक सचेतन केन्द्र है।

वास्तव में जिस अर्थ में हम अर्वाचीन ईरान या आधुनिक मिस्र की बात करते हैं उस अर्थ में अर्वाचीन भारत है ही नहीं, भारत तो उस अर्थ में भी अर्वाचीन नहीं है जिस अर्थ में जापान माना जाता है अर्थात् पुरानी वही जाति बिल्कुल आधुनिकता में ढल चुकी है। नये साँचे में ढला हुआ भारत केवल बड़े-बड़े शहरों में ही पाया जाता है और वहाँ भी थोड़े से ही अंश में। अंग्रेजी जानने वाले बहुत से भारतीयों में "नवीन बनने" की प्रवृत्ति है। दुर्भाग्यवश यह प्रवृत्ति जोर भी पकड़ती जारही है, यद्यपि गांधीजी के लेखों तथा कार्यों से इसकी गति रुक रही है। नई रोशनी का भारत तभी वजूद में आवेगा जब गांधीजी के प्रभाव को लोग न मानेंगे तथा उनके राजनैतिक

तरीक़े निकम्मे हो जावेंगे। यह भारत के लिए तथा संसार के लिए उससे भी महान् आपद् की घटना होगी जो भारत के युद्ध के सिद्धान्तों को त्याग देने के कारण हुई थी। वह त्यागना बुरा और हानिकारक था, परन्तु उसने भारतीय संस्कृति का नाश नहीं किया; हाँ, उसने इसकी बढ़ती हुई लहर के वेग को रोक दिया तथा भारत का संसार की सेवा उतने बड़े पैमाने पर करने का मौक़ा छीन लिया, जितनी वह कर सकता था।

गांधीजी के जीवन के कार्यकलाप को भारतीय इतिहास के एक लिखे जा रहे विकासशील अध्याय के रूप में देखना आवश्यक है। हमारे देश का इतिहास मुख्यतः आध्यात्मिक व्यक्तियों द्वारा बनाया गया है। स्मरणीय कला तथा साहित्य-संयुत विशाल राजतन्त्र स्वभावतः उस आध्यात्मिक संस्कृति के मूल से उत्पन्न हुए और बढ़े जिसको इन व्यक्तियों ने मूर्तिमान किया तथा सिखाया। उदाहरणार्थ, अशोक का साम्राज्य तथा अजन्ता की कला एक विशाल वृक्ष की एक ही शाखा के फल हैं, वह शाखा है गौतम बुद्ध। इस वृक्ष की अनगिनती शाखायें हैं, और उसका मेरुदण्ड है उन समस्त पूर्ववर्ती बुद्धों की अविभाजित संस्कृति, जिनमें वैदिक ऋषियों तथा कवियों की भी गणना है। उसकी जड़ें पौराणिक गाथाओं में वर्णित शाकद्वीप तथा श्वेतद्वीप की प्राचीनतर मिट्टी में दबी हुई हैं। यह आवश्यक है कि गांधीजी को भारतीय इतिहास के बीसवीं शताब्दी के उस चित्रपट पर एक जीवित केन्द्र-पुरुष के रूप में देखा जावे जिसकी पृष्ठभूमि में करोड़ों वर्षों की घटनायें स्थित हैं।

जिन शक्तिशाली आध्यात्मिक व्यक्तित्वों ने हमारे इतिहास में मुख्य भाग लिया है वे सदा योग-युक्त पुरुष रहे हैं। उन्होंने अपनी दुष्प्रवृत्त इन्द्रियों को अनुशासन में लाकर अपनेमें योग साधा है। हाथों की, मस्तिष्क की तथा हृदय की क्रियाओं का जितना ही अधिक समरूप एकीकरण होगा, उतना ही महान् व्यक्तित्व होगा। उन्होंने बाहरी ऐश्वर्य से नहीं वरन् आन्तरिक सम्पन्नता से अपनी प्रिय मातृभूमि की सेवा की है। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने राम की तरह वल्कल वस्त्र भी धारण किये हैं। दूसरे युग में राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने राजदण्ड के बदले बुद्ध का भिक्षा-पात्र ले लिया। ये दोनों अत्यन्त व्यापक व्यक्ति थे। इनके अतिरिक्त और भी कवि ऋषि, महर्षि हुए हैं जो सब-के-सब बाहरी रूप में एक-दूसरे से भिन्न तथा विभिन्न परिस्थिति-यों में काम करनेवाले रहे हैं परन्तु आन्तरिक रूप में सब एकसमान थे—इनके अन्तस् आत्मा के प्रकाश से ज्योतिर्मान तथा हृदय सत्यता की ज्योति से ओतप्रोत थे। इनके विषय में कहा जा सकता है कि वे इतने भारतीय इतिहास के बनानेवाले नहीं थे जितना कि संसार के इतिहास के अर्थात् भारतवर्ष कहलानेवाले तथा कर्मभूमि के नाम से विख्यात भूखण्ड की आत्मा की शक्ति ने, उनको बनाया। इन सबने भारत की वास्तविक प्रकृति इसका आन्तरिक रूप इसकी आध्यात्मिक नीति और व्यवस्था जो धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत है सबकी रक्षा करके मनुष्य-जाति की सेवा की।

यह विचारधारा कदाचित् कल्पनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से युक्तिहीन प्रतीत हो। पाश्चात्य विद्वान् भारत के प्राचीन निवासियो मे ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव की शिकायत करते है। इसमे वे भूल करते है, क्योकि वे उसी तरह का ऐतिहासिक दृष्टिकोण तलाश करते है जिससे वे सबसे अधिक परिचित है। पाश्चात्य सस्कृति इतिहास को जैसा समझती है तथा उसका जो अर्थ लगाती है, उसका वर्णन स्वय गाधीजी ने इस प्रकार किया है —

> "इतिहास वास्तव में प्रेम की शक्ति अथवा आत्मा की एकरस होनेवाली क्रिया मे प्रत्येक रुकावट का आलेख है"'। चूंकि आत्मिक बल एक सरल स्वाभाविक वस्तु है, अत उसका वर्णन इतिहास में नही किया जाता।"

इस उलटे अर्थ में हमारे प्राचीन आलेख बिलकुल अनैतिहासिक है, उनमे अधिकतर आत्मा के कर्मो का वर्णन है और नैतिक शक्तियो तथा आदर्शो पर सासारिक बातो की अपेक्षा अधिक जोर दिया गया है। इस अर्थ में पुराण इतिहास है।

पाश्चात्य इतिहासकार की कठिनाई कुछ परिवर्तित ढग से आधुनिक राजनीतिज्ञो मे—चाहे फिर वे ब्रिटिश हो या पश्चिमी मनोवृत्ति के—दुबारा प्रकट हो रही है, जिनका कहना है कि गाधीजी में राजनैतिक वृत्ति का अभाव है, क्योकि आधुनिक राजनीतिज्ञ के लिए राजनैतिक वृत्ति की अभिव्यक्ति केवल एक ही प्रकार से हो सकती है, दूसरे प्रकार से नही। अयोध्या मे दशरथ के परामर्शदाता वशिष्ठ की भाँति राजाओ तथा सम्राटो के दरबार के महर्षि उच्चतम श्रेणी के राजनीतिज्ञ होते थे। परन्तु आज उनके उत्तराधिकारी इतने भी वोट एकत्र करने मे सफल नही होगे कि वे किसी पाश्चात्य देश की पार्लमेण्ट के सदस्य बन सके।

गाँधीजी की कथित असगतियाँ तथा अव्यावहार्यताये तभी समझ मे आ सकती है जब हम उनको एक 'आत्मा' के रूप मे देखे, और जब हम इस तथ्य को विचार में लावे कि वह उन व्यक्तियो मे से है जो अपने मस्तिष्क तथा हृदय मे समझौता करने से इन्कार कर देते है, जो अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण करने के लिए तैयार नही होते, जो सब घटनाओ को सासारिक दृष्टिकोण से नही देखते, बल्कि उनको अपने लिए आत्मज्ञान का तथा दूसरो के लिए आत्मिक सेवा का मार्ग समझते है। वह अपने तत्त्वज्ञान के अनुसार चलते है अपने सिद्धान्तो का पालन करते है, और इसीलिए वह उन सभी के लिए थोडी बहुत अविगत पहेली बने रहते है जो समझौता करते रहते है तथा इस कारण भ्रान्ति और इन्द्रियो की तथा इन्द्रिय जगत् की नैतिक शिथिलता की अस्तव्यस्त अवस्था मे पडे रहते है।

यदि हम इन दो बातो को समझ जावे कि गाधीजी (१) न तो राजनीतिज्ञ है, न दार्शनिक, न धर्मशास्त्रवेत्ता, बल्कि आध्यात्मिक सुधारक है तथा, (२) वह भारत की आत्मा अथवा आर्य-धर्म के अवतार है और इस प्रकार भारत के वर्तमान-कालीन

"यदि मनुष्य को कोई दिव्य कर्तव्य पूरा करना है, ऐसा कर्तव्य जो उसके योग्य हो, तो वह अहिंसा है। हिंसा के मध्य में खड़ा हुआ भी वह अपने हृदय की ठेठ आन्तरिक गहराई में जाकर बस सकता है और अपने चारों ओर के संसार को यह घोषित कर सकता है कि इस हिंसामय जगत में उसका कर्तव्य अहिंसा है और जिस अंश तक वह उसे पालन कर सकता है, उसी अंश तक वह मनुष्य-जाति का भूषण है। अतः मनुष्य की प्रकृति हिंसा की नहीं, बल्कि अहिंसा की है, क्योंकि वह अनुभव के द्वारा कह सकता है कि मेरा आन्तरिक विश्वास है कि मैं देह नहीं, बल्कि आत्मन् हूँ और मुझे देह का उपयोग इसी उद्देश्य से करना चाहिए कि आत्मज्ञान प्राप्त हो।"

परन्तु इस निश्चय पर दृढ़ रहना चाहिए। जब मनुष्य अपने अन्तर में खोजता है तो उसे पुण्य और पाप दोनों मिलते हैं। उपर्युक्त धर्म में वर्णित ओर्मज्द तथा अहरिमन दोनों मानस उसमें कार्य करते रहते हैं। मनुष्य का अपना अंतःकरण इसके लिए पर्याप्त नहीं है हालांकि वह भी उसके आन्तरिक चैतन्य का ही रूप है। गांधीजी ठीक ही कहते हैं—"अन्तःकरण सबके लिए एक-सी वस्तु नहीं है।" तो मनुष्य के अन्तःकरण की सहायता करनेवाली कौनसी ज्योति होनी चाहिए? एक निर्भ्रान्त धर्मगुरु? कोई श्रुति? गांधीजी के लेखों के मूलमंत्र जैसा वचन देखिए—

"मैं इस बात का दावा नहीं करता कि मेरी मार्ग-प्रदर्शिता तथा आन्तरिक प्रेरणा निर्भ्रान्त है। जहाँतक मेरा अनुभव है, किसी भी मनुष्य का यह दावा करना कि वह निर्भ्रान्त है, मानने के योग्य नहीं है, क्योंकि आन्तरिक प्रेरणा भी उसीको हो सकती है जो द्वन्द्वों से मुक्त होने का दावा करे और किसी भी अवसर पर यह निश्चय करना कठिन है कि द्वन्द्व मुक्त होने का दावा ठीक है या नहीं। अतः निर्भ्रान्ति का दावा सदा एक भयंकर दावा रहेगा। परन्तु यह बात नहीं है कि इससे हमारे लिए कोई मार्ग ही न रहा हो। संसार के ऋषि-महर्षियों के अनुभवों का संचित कोष हमको प्राप्त है तथा भविष्य में सदा प्राप्त होता रहेगा। इसके सिवा मूल सत्य अनेक नहीं हैं, केवल एक ही मूल सत्य है और वह स्वयं सत्य ही है, जिसका दूसरा रूप अहिंसा है। परिमित ज्ञानवाली मनुष्य-जाति सत्य और प्रेम का पूरा स्वरूप से कभी नहीं पा सकेगी क्योंकि ये स्वयं अनन्त हैं। परन्तु हमें अपने मार्ग-प्रदर्शन के लिए उसका काफी ज्ञान है। हम अपने मार्ग-प्रदर्शन के लिए उसका काफी ज्ञान है। हम अपने कार्यों में भूल करेंगे और कभी-कभी भयंकर भूल करेंगे। परन्तु मनुष्य एक स्वशासित प्राणी है और स्वशासन में अनिवार्य रूप से भूल करने का अधिकार भी उतना ही शामिल है जितना जितनी बार वे भूल हों उतनी ही बार उनको सुधारने का।"

क्या गांधीजी से भूलें भी हुई हैं? भूलें सबसे होती हैं। परन्तु भयंकर भूलों के किये जाने से मुख्य कारण क्या है? सब मनुष्य भूल करते हैं परन्तु इन भूलों को पहचानने की शक्ति कितनों में है? और इसके अतिरिक्त कितनों में इतनी साहसपूर्ण सत्य स्वीकृति

शक्तियां क्रियाशील होकर उसकी शान्ति को नष्ट करदें, उसके मस्तिष्क में गड़बड़ उत्पन्न करदें, उसके हृदय को समस्त मानव-मण्डल के विरुद्ध नहीं तो उसके अधिकांश व्यक्तियों के विरुद्ध कठोर बना दें, तो वह मनुष्य संसार में शान्तिपूर्वक नही रह सकता।

वह प्रधान गुण, जो प्रत्येक सच्चे सत्याग्रहियों के आचरण का सिद्धान्त है, साहस है। इस साहस का उपयोग केवल अपनी ही नीच प्रवृत्ति का मुक़ाबिला करने में नहीं, बल्कि उन लुभावनी वस्तुओं के विरुद्ध भी करना चाहिए जो ऐसे संसार में उत्पन्न होती है, जहाँ 'काम' को ग़लती से प्रेम मान लिया जाता है, तथा लोभ जीवन की प्रतियोगिता का एक आवश्यक बल बनकर फूलता-फलता है, जहाँ वे ही सफल प्रतियोगी जीवित रहने के योग्य होते हैं जो अपने प्रतिद्वन्दियों के विरुद्ध क्रोध के बल का प्रयोग करते हैं—उसका वेष चाहे जितनी खूबी के साथ बदल दिया गया हो हमको पग-पग पर आत्मा के उस साहस की आवश्यकता होती है जो हमारे व हमारी विश्वात्मा से अभिन्न अन्तरात्मा के एकीकरण से उत्पन्न होती है।

सत्याग्रही का मार्ग कायर का मार्ग नहीं है। इस बात पर गांधीजी ने बा जोर दिया है तथा इसने कितने ही यूरोपियनों को असमंजस में डाल दिया है, अत इस सम्बन्ध में गांधीजी के ही शब्दों को उद्धृत करना श्रेयस्कर है—

"मैं यह पसन्द करूँगा कि भारतवर्ष अपने गौरव की रक्षा के लिए शस्त्रों का सहारा ले, बजाय इसके कि वह कायरता के साथ स्वयं अपने ही गौरव को असहा[illegible] की भाँति मिट्टी में मिलता देखे।

"यदि हम कष्ट-सहिष्णुता के बल से अर्थात् अहिंसा से, अपनी, अपनी [illegible] की तथा अपने देवालयों की रक्षा नहीं कर सकते तो, यदि हम मनुष्य हैं तो, हम कम-से-कम लड़कर इनकी रक्षा करने की योग्यता होनी चाहिए।"

कुछ दिन हुए, कुछ चीनी अतिथियों के प्रश्नों के उत्तर में गांधीजी ने बतलाया था कि बतौर एक राष्ट्र के अब चीन के लिए समय नहीं रहा कि अहिंसा का [illegible] और जापान चीन में जो खराबी फैला रहा है, उसका मुकाबिला करे। [illegible] नहीं की जा सकती है और उसके सिपाही जितनी [illegible] उतनी शीघ्रता से बुराई का मुक[illegible] । चीन में केवल व्यक्ति अहिंसा का [illegible] 'स्वर्गीय साम्राज्य'[1] के [illegible] पर्याप्त संख्या में सत्याग्रह के [illegible] समय आनेपर—और समय कभी भी आ सकता है—[illegible] । गांधीजी ने समझाया कि '[illegible] निवास करती है [illegible] जबरदस्ती दबा नहीं डाल सकता।

१ चीनवाले अपने देश को स्वर्गीय साम्राज्य कहते हैं—संपादक

अन्धाधुन्ध अथवा गैर-ज़िम्मेदाराना वक्तव्य देना, असत्य कहना, निर्दोष व्यक्तियों के सिर फोड़ना और मन्दिरो अथवा मस्जिदो का अपवित्र किया जाना, ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करना है।" जब उन्होंने अपने मित्रो पर अपना अनशन करने का विचार प्रकट किया तो उनका उपवास छुड़ाने की हर तरह कोशिश की गई, लेकिन चाहे उनका परिणाम कुछ भी हो, वे अपने निश्चय के पथ से विचलित न होने का राम का उदाहरण देकर अपनी बात पर अड़े रहे। १८ सितम्बर को उनका उपवास शुरू हुआ और उसी दिन हकीम अजमलखा, स्वामी श्रद्धानन्द और मौ० मोहम्मदअली ने सब प्रकार के राजनैतिक विचारो के प्रमुख हिन्दुओ और मुसलमानों और दूसरी जातियों, यूरोपियन और हिन्दुस्तानी दोनो के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें उन्हे बहुत जल्दी-दिल्ली में होनेवाली शांति-परिषद् में भाग लेने के लिए निमंत्रित किया था। करीब तीन सौ व्यक्तियो ने जिनमें दोनो जातियो के अधिकाश नेता शामिल थे, निमन्त्रण स्वीकार किया, क्योंकि भारत के सब वर्गों के लोगो में गाधीजी के प्रति अगाध और स्नेहपूर्ण आदर-भाव था, राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में गाधीजी का जो अमूल्य मूल्य था और उपवास में उनके जीवन के खतरे में पड़ने की आशंका थी ही, अत. उनके कारण को दूर करने में जो भी प्रयत्न सम्भव हो करने के लिए सब इकट्ठे हुए। गाधीजी ने खुद अपने मित्रो से कहा था, "मैंने यह उपवास मरने के लिए नहीं, बल्कि देश और ईश्वर की सेवा में उच्चतर और पवित्रतर जीवन व्यतीत करने के लिए किया है। इसलिए अगर मैं ऐसे सकटकाल के निकट पहुँचा (जिसकी कि एक मनुष्य की नाई बोलते हुए मैं किसी प्रकार की कोई सम्भावना नहीं देखता) जबकि मृत्यु और भोजन दो में से किसी एक को चुनना होगा, तब निश्चय ही मैं उपवास भग कर दूँगा।" अन्त में २६ सितम्बर को सगम थियेटर में शान्ति-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ। विस्तृत जन-समूह मच के सामने खुली जमीन पर बैठा था, मंच पर यीशु के सूली लटकते हुए दृश्य का परिचायक एक धुधला-सा पर्दा लटका हुआ था, और मच के एक ओर गादी पर गाधीजी का मढा हुआ एक बडा चित्र रक्खा था। स्वागताध्यक्ष मौ० मोहम्मदअली ने उपस्थित सज्जनो का स्वागत किया और सक्षेप में परिषद् का उद्देश्य बतलाया। इसका क्षेत्र सीमित था और वह था साम्प्रदायिक झगडो के धार्मिक कारणो पर विचार करना। यह तो ज्ञात ही था कि इन झगडो के राजनैतिक और आर्थिक कारण भी हैं, पर उनपर बाद को विचार किया जाने को था। प० मोतीलाल नेहरू सर्वसम्मति से परिषद् के सभापति चुने गये। कुछ प्रारम्भिक भाषणो के बाद इस परिषद् का पहला काम था करीब अस्सी सदस्यो की एक 'विषय निर्वाचिनी समिति' नियुक्त करना जो एक छोटी समिति के द्वारा बनाये गये मसविदो को प्रस्तावो के रूप में तैयार करने की मुख्य जिम्मेदारी ले ले।

परिषद् की कार्रवाई शुरू होने के पहले गाधीजी ने क सन्देश भेज कर इस

बात पर जोर दिया था कि "जिस चीज की जरूरत है वह है हृदय की एकता। प्रत्येक व्यक्ति ने सत्य को जैसा देखा-समझा हो उसे वही कहना चाहिए। यहांतक कि अगर इसमें दूसरों के उपासना-स्थानों को अपवित्र करना भी शामिल हो तो उन्हें वह भी वैसा ही कहना चाहिए। मैं उनकी इस ईमानदारी की क़द्र करूँगा, हालांकि इससे मैं यह जान लूँगा कि उस हालत में अपने इस अभागे देश के लिए शान्ति नहीं है।"

सभापति की ओर से रक्खा गया वह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ जिसमें गांधीजी के धर्म में "मनः पूतं समाचरेत्" के सिद्धान्त को स्वीकार और उपासना-स्थानों के अपवित्र किये जाने, सच्चे दिल से और ईमानदारी के साथ अपना धर्म-परिवर्तन करने के कारण किसी भी व्यक्ति के सताये जाने और जबर्दस्ती धर्मान्तरित किये जाने की निन्दा की गई थी।

परिषद् के आरम्भ होने से पहले चारों तरफ़ से इस बात की तरफ हमारा ध्यान दिलाया जारहा था कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता प्रस्ताव पास कर लेने से नहीं, बल्कि एक मात्र हृदय-परिवर्तन से ही होसकती है। और शुरू के दिनों के वाद-विवाद पर दृष्टि डालने से, मुझे मालूम हुआ कि, धीरे-धीरे वही हृदय-परिवर्तन हो रहा है। पर जिस समय हमने विषय-निर्वाचिनी समिति में छोटी कमेटी द्वारा तैयार किये गये प्रस्तावों पर विचार करना शुरू किया भावों की कटुता और तीव्रता एकदम स्पष्ट दिखाई देने लगी जिसके साथ-ही-साथ गहरे सन्देह की भावना लगी हुई थी। सद्भावना प्रदर्शित करनेवालों को अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता था और उदारतापूर्वक बढ़ाये गये हाथ का बदले में अधिक लाभ उठाने की चाल समझा जाता था। लेकिन पांचवें दिन परिषद् में एक निश्चित परिवर्तन दिखाई दिया और जब मौलाना अबुलकलाम आज़ाद [illegible]

[illegible]

[illegible] गांधीजी [illegible]

अन्धाधुन्ध अथवा गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्य देना, असत्य कहना, निर्दोष व्यक्तियो के सिर फोडना और मन्दिरो अथवा मस्जिदो का अपवित्र किया जाना, ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करना है।" जब उन्होंने अपने मित्रो पर अपना अनशन करने का विचार प्रकट किया तो उनका उपवास छुडाने की हर तरह कोशिश की गई, लेकिन चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो, वे अपने निश्चय के पथ से विचलित न होने का राम का उदाहरण देकर अपनी बात पर अडे रहे। १८ सितम्बर को उनका उपवास शुरू हुआ और उसी दिन हकीम अजमलखा, स्वामी श्रद्धानन्द और मौ० मोहम्मदअली ने सब प्रकार के राजनैतिक विचारो के प्रमुख हिन्दुओ और मुसलमानो और दूसरी जातियो, यूरोपियन और हिन्दुस्तानी दोनों के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें उन्हे बहुत जल्दी-दिल्ली में होनेवाली शाति-परिषद् में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया था। करीब तीन सौ व्यक्तियों ने जिनमें दोनो जातियो के अधिकाश नेता शामिल थे, निमन्त्रण स्वीकार किया, क्योंकि भारत के सब वर्गो के लोगो में गाधीजी के प्रति अगाध और स्नेहपूर्ण आदर-भाव था, राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में गांधीजी का जो अमूल्य मूल्य था और उपवास में उनके जीवन के खतरे में पडने की आशका थी ही, अत. उसके कारण को दूर करने में जो भी प्रयत्न सम्भव हो करने के लिए सब इकट्ठे हुए। गाधीजी ने खुद अपने मित्रों से कहा था, "मैंने यह उपवास मरने के लिए नहीं, बल्कि देश और ईश्वर की सेवा में उच्चतर और पवित्रतर जीवन व्यतीत करने के लिए किया है। इसलिए अगर मैं ऐसे सकटकाल के निकट पहुँचा (जिसकी कि एक मनुष्य की नाईं बोलते हुए मैं किसी प्रकार की कोई सम्भावना नहीं देखता) जबकि मृत्यु और भोजन दो में से किसी एक को चुनना होगा, तब निश्चय ही मैं उपवास भग कर दूँगा।" अन्त मे २६ सितम्बर को सगम थियेटर मे शान्ति-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ। विस्तृत जन-समूह मच के सामने खुली जमीन पर बैठा था, मच पर यीशु के सूली लटकते हुए दृश्य का परिचायक एक धुधला-सा पर्दा लटका हुआ था, और मच के एक ओर गादी पर गाधीजी का मढा हुआ एक बडा चित्र रक्खा था। स्वागताध्यक्ष मौ० मोहम्मदअली ने उपस्थित सज्जनो का स्वागत किया और सक्षेप में परिषद् का उद्देश्य बतलाया। इसका क्षेत्र सीमित था और वह था साम्प्रदायिक झगडो के धार्मिक कारणो पर विचार करना। यह तो ज्ञात ही था कि इन झगडो के राजनैतिक और आर्थिक कारण भी है, पर उनपर बाद का विचार किया जाने को था। प० मोतीलाल नेहरू सर्वसम्मति से परिषद् के सभापति चुने गये। कुछ प्रारम्भिक भाषणो के बाद इस परिषद् का पहला काम था करीब अस्सी सदस्यो की एक 'विषय निर्वाचिनी समिति' नियुक्त करना जो एक छोटी समिति के द्वारा बनाये गये मसविदो को प्रस्तावो के रूप मे तैयार करने की मुख्य जिम्मेदारी ले ले।

परिषद् की कार्रवाई शुरू होने के पहले गाधीजी ने क सन्देश भेज कर इस

ईसाइयों का प्रसिद्ध अंग्रेजी भजन, जो इधर अर्से मे उनका प्रिय भजन था, गाने को कहा। वह है'—

लिये चलो ज्योतिर्मय, मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !
रात अंधेरी, गेह दूर है, मुझे सहारा दिये चलो !!
थामो ये मेरे डगमग पग,
दूर दृश्य चाहे न लखें दृग—
मुझे अलं है देव, एक डग !
कभी न मैने निस्सहाय हो मागा—'मुझको लिये चलो !'
निज पथ आप खोजता-लखता ! पर तुम अब तो लिये चलो !
लिये चलो, ज्योतिर्मय मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !
प्यारा था मुझको जगमग दिन
हेय मुझे थे ये भय अनगिन
अहंकार से गया सभी छिन
मेरे पिछले जीवन को प्रिय, मन में रखकर अब न छलो !
लिये चलो, ज्योतिर्मय, मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !
जबतक है तेरा बल सिर पर,
हूंगा मैं गतिशील निरन्तर,
बीहड़-दलदल, शैल-प्रलय पर,
तबतक, जबतक रात अंधेरी रम्य उषा में आ बदलो,
चिरप्रिय खोये देवदूत वे, मुसकाते फिर मुझे मिलो !
लिये चलो, ज्योतिर्मय मुझको सघन तिमिर से लिये चलो ![१]

१ मूल अंग्रेजी भजन इस प्रकार है :—

Lead, Kindly light, amid the encircling gloom
Lead Thou me on
The night is dark and I am far from home,
Lead Thou me on
Keep Thou my feet I do not ask to see
The distant scene, one step enough for me
I was not ever thus, nor prevad that Thou
Shou'dst lead me on,
I loved to choose and see my path, but now
Lead Thou me on
I loved the garish day, and spite of fears,
Pride ruled my will remember not past years

कमरे का मन्द प्रकाश, पलंग पर सहारे से लपेटी वह दुर्बल-मूर्ति !—एक विलक्षण मर्मस्पर्शी दृश्य था।

डाक्टर की रिपोर्ट मिलने पर खैर निश्चिन्तता हुई। कष्टदायक लक्षण निश्चित रूप से कम हो गये थे, और भय का कोई कारण नहीं रह गया था।

परिषद् के परिणामों का चारों तरफ हार्दिक समर्थन के साथ स्वागत हुआ, यद्यपि यह भ्रम धारणा थी कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित होने का काम समय लेगा। ८ अक्तूबर को मनाये गये 'एकता-दिवस' पर कलकत्ता के 'स्टेट्समैन' में जिन बहुतसे प्रसिद्ध लेखकों के सन्देश प्रकाशित हुए थे, उनमें एक लेखक ने बड़ी अच्छी तरह इस बात को व्यक्त किया था। लिखा था—"जहाँ सुस्पष्ट और प्रबल राजनैतिक युक्तियाँ सर्वथा असफल हुईं, वहाँ गांधीजी के उपवास से उत्पन्न धार्मिक भावनायें सफल होगईं। लेकिन लाखों आदमियों में सहिष्णुता से काम लेने की आदत डालने का वही अधिक कठिन कार्य अभी बाक़ी पड़ा है।' बाद की राजनैतिक घटनाओं के कारण, जिन्होंने राजनैतिक और आर्थिक तनातनी को और अधिक बढ़ा दिया है, यह कार्य सरल नहीं होसका। अगर शान्ति का राज्य स्थापित करना है तो गांधीजी ने जिस, मानवमात्र के हृदय में ईश्वर को संस्थापित करने के उद्देश्य से उपवास आरम्भ किया था, वह अवश्य पूरा किया जाना चाहिए, क्योंकि एकमात्र इसी तरीके से मनुष्य की परस्पर विरोधी इच्छाओं को ईश्वर की एक सर्वोपरि इच्छा के नियन्त्रण में लाया जा सकता है।

: ५८ :

महात्मा गांधी और कर्मण्य शान्तिवाद

रेवरेण्ड जैक सी विनलो

[पूना और लंदन]

और वह यह कि उन्होंने ससार को इस तरह का शान्तिवाद बतलाया है, जो सचमुच युद्ध का स्थान ले सकता है।

वह शान्तिवाद, जैसा कि पश्चिम में अक्सर प्रकट हुआ है, सफलता-पूर्वक युद्ध प्रणाली का स्थान नहीं लेसकता। अवश्य ही युद्ध का निषेध करने में और अपने इस विश्वास में वह सही है कि युद्ध विजयी और विजित दोनो ही के लिए समानरूप से केवल और अधिक तबाही ही लाता है। उनका यह प्रतिपादन भी सही है कि अहिंसा का मार्ग उच्चतर मार्ग है। लेकिन पश्चिमी शान्तिवाद में एक दोष यह है कि उसमें बुराई के मुकाबिले में सुदृढ़ और सफल आक्रमण करने की शक्ति नही है। वह बडी आसानी से निष्क्रियता में डूब जाता है। जिन लोगो का खून अत्याचारो के खिलाफ गुस्से से उबल रहा है और जो हमलो को रोकने का कोई उपाय करने के लिए उतावले होरहे हैं, वे शान्तिवादी को ऐसी ज्यादती के सामने आत्म-तुष्ट और निकम्मा बना बैठा मानते है (और उनका ऐसा मानना सर्वथा अनुचित भी नही है)। उनकी दृष्टि में शान्तिवादियो का तरीका ऐसे कामो का मुकाबिला करने की आशा नही दिलाता जैसे इटली का अबीसीनिया पर आक्रमण अथवा जर्मनी में यहूदियो के खिलाफ अमल मे लाये गये तरीके। यही कारण है कि अपने पीछे उच्च नैतिक बल होने का दावा करने पर भी वस्तुत पश्चिमी शान्तिवाद को सच्चे ईसाइयो तक का पूर्ण या व्यापक समर्थन प्राप्त नही है। शान्तिवादी आमतौर पर यह धारणा बना लेता है कि बहुसख्यक ईसाई उसके मार्ग का परित्याग इसलिए करते है कि वह जो नैतिक मॉंगें करता है, वे उनके लिए बहुत ऊँची है। जबकि वास्तव में बहुत से उसका परित्याग इस कारण करते है, कि उनकी नज़रो में वे मॉंगे बहुत नीची दिखाई देती है। कई ईसाइयो की दृष्टि मे शान्तिवादी नैतिक अपराधो के प्रति ऐसी उदासीनता रखने के अपराध के अपराधी है, जो कि सत्यनिष्ठा और प्रेम के उच्चतम आदर्श से गिरी हुई है। मगल-मय ईश्वर अमगल और अनीति के साथ कभी समझौता नही करता है और उन ईसाइयो की शान्तिवादियो से माग है कि उनमे भी बुराई के प्रति ऐसे ही प्रबल विरोध के भाव की झलक मिलनी चाहिए।

इसी रूप मे महात्मा गाधी की आक्रामक शान्तिवादिता पश्चिम के साधारण शान्तिवाद से उच्चतर सिद्ध होती है। अवश्य ही गाधीजी के सत्याग्रह में शान्तिवादी का चाहा हुआ अहिंसा का सारा तत्त्व मौजूद है, और वह तत्त्व सर्वोच्च और सर्वाधिक सक्रियरूप मे है। गाधीजी लिखते है 'अग्रेज़ी मे अहिंसा' शब्द का वास्तविक अनुवाद 'प्रेम या उदार हृदयता है। "अपने सक्रिय रूप मे अहिंसा का अर्थ है विशाल-से-विशाल प्रेम, बडी-से-बडी उदार हृदयता। "मेरे लिए ईश्वर को जानने का एकमात्र उपाय है—अहिंसा, प्रेम। विरोधी के प्रति केवल सब प्रकार की हिंसा से ही नहीं, बल्कि सब प्रकार की दुर्भावनाओ और कटु विचारो से भी दूर रहना तथा प्रेम और

आत्मपीड़न के द्वारा उसे जीतने की लगातार कोशिश करना सत्याग्रह का सार है। इतने पर भी सत्याग्रह अपने में निर्भय आक्रमक गुण भी रखता है। वह गुण है बुराई के विरोध में अपने पास के आत्म-बल का अधिक-से-अधिक प्रयोग, और वह शक्ति जब तक उस बुराई पर विजय प्राप्त नहीं कर लेती, चैन नहीं लेगी चाहे उसकी प्राप्ति के लिए ज़रूरत हो तो मौत भी मिले।

भारत पर अंग्रेज़ों के आधिपत्य को एक अभिशाप, और उसे अपने देश और खुद अंग्रेज़ों के लिए हानिकर मानकर गांधीजी ने अपने-आपको अपनी आत्म-शक्ति को पूरे ज़ोर के साथ अंग्रेज़ी राज के अन्त करने के लिए लगा दिया। विदेशी के प्रति घृणा न रखते हुए, उसके प्रति एकमात्र प्रेम और सद्भावना रखने हुए भी अपने इसी विश्वास के कारण वे विदेशी जुए को उखाड़ फेंकने के लिए टक्कर लेते हो गये। उन्होंने अपने देश-भाइयों को पश्चिमी आधिपत्य की नैतिक बुराइयों के मुक़ाबिले में बिना विरोध किये निष्क्रिय होकर बैठ जाने की सलाह नहीं दी। वरन् इसके विपरीत उन्होंने अपनेको इस 'गुलाम-मनोवृत्ति' को तोड़ने में लगा दिया, जिसे वह नैतिक दृष्टि से बलात् विरोध से भी गिरा हुआ समझते थे, और अपने अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा उन्होंने भारत को स्वतन्त्रता-प्राप्ति का एक ऐसा उपाय बतलाया जिसमें एक ही साथ बदी की तलवार थी और घृणा का लेश न था। इसमें विदेशी शासन पर हिंसात्मक युद्ध के जैसी निश्चित दृढ़ता के साथ प्रचण्ड आक्रमण की आवश्यकता होती है और इतने पर भी वह चाहता है कि इसमें भाग लेनेवालों में उच्चतम आत्मानुशासन, स्वेच्छा कष्टसहन और प्रेम का भाव हो।

यह ध्यान रखना चाहिए कि सत्याग्रह का यह तरीका ईसा के तरीके से बहुत-कुछ समान है। महात्मा गान्धी ने ईसा-मसीह को सत्याग्रहियों का राजा माना है। यह [illegible]

वास्तविक सचाई का अभाव प्रतीत होगा। फिर भी, मेरी भेंट कितनी ही तुच्छ और नगण्य क्यों न हो, गांधीजी के इकहत्तरवें जन्म-दिवस पर पहुँचने पर, मैं उन्हें बधाई देने के निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं कर सकता। इससे कम-से-कम उनके भारतीय जनता को दिये गये नेतृत्व का मुझपर जो असर पड़ा, उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने का मौक़ा मिल जाता है।

इतिहास में मनुष्य की महत्ता आमतौर पर उसके चरित्र और गुण की अपेक्षा उसके प्रभाव के विस्तार और पायेदारी से नापी जाती है। यह एक माप है जिसे इतिहासकार भुला नहीं सकता और जिससे कि साधारण बुद्धि का समाधान होजाता है। इस तरह के माप से नापे जाने पर—हिटलर, स्टेलिन, मुसोलिनी आदि डिक्टेटर आज दुनिया के महापुरुष हैं। खासकर हिटलर कोलोसस[1] की तरह हमारी छोटी-सी दुनिया पर सवारी गांठे हुए है। आदमियों के मन और जीवन पर उसका ऐसा दबदबा है कि अगर भीषणता का खयाल न करें तो वह हास्यप्रद ही लग सकता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उस व्यक्ति में अवश्य महानता के कुछ तत्त्व हैं, जिसके कार्यों का इतने सारे लोगों के भाग्यों पर असर पड़ता है। फिर भी ईसाई के लिए इस तरह की महानता न तो परमसाध्य है, न प्रशंसनीय। ईसा के समय में दुनिया भर में सिकन्दर महान् समझा जाता था। कुशल सेनानी और शाही शासक के रूप में उसके उल्का के समान चमकीले एवं द्रुत जीवन ने मनुष्य की कल्पनाओं को प्रभावित और उनकी महत्त्वकांक्षाओं को प्रज्वलित कर दिया था। जूलियस सीज़र जब तैंतीस वर्ष की अवस्था में स्पेन में सरकारी खजानची था, इस खयाल से शोक-निमग्न होगया कि यद्यपि मैं उस उम्र तक पहुँच गया हूँ जिसमें कि सिकन्दर मर गया था, फिर भी मैंने कोई महान् कार्य नहीं किया। ईसा के समय के राष्ट्रों में जिनकी गिनती महान् राष्ट्रों में की जाती थी वे वे राष्ट्र थे जिन्होंने विस्तृत भूभागों का हड़प लिया था और बहुसंख्यक लोगों पर शासन करते थे। किन्तु ईसा ने हमारे सामने दूसरे ही आदर्श रक्खे—जो बड़ा या उच्च होना चाहता हो वह सेवक बने। मनुष्यों के हृदय से न अभी प्राचीन मूर्ति-पूजा का उन्मूलन नहीं हुआ लेकिन जिस तरह सिकन्दर ने यूनान और रोम की दुनिया की कल्पना-शक्ति को मोह लिया था उस तरह नेपोलियन उन्नीसवीं सदी के यूरप पर अपना जादू नहीं चला सका। ईसा ने विजेता की शान को धूमिल किया और सेवक के दर्जे को ऊँचा चढ़ा दिया। ईसा के सब अनुयायियों की दृष्टि में महानता प्रभुताओं में नहीं बल्कि उन लोगों में है जो अपनेको दीन और दलितों की सेवा में लगा देते हैं। कोढ़ियों के बीच हवाई पादरी डेमियन और अफ्रीका में सेवा के लिए अपना जीवन तज देनेवाले डेविड लिविंगस्टन जैसे व्यक्ति वास्तविक महानता की प्रतिमूर्ति समझे जाते हैं। अपने समकालीन व्यक्तियों में

१ रोड्स द्वीपस्थ एपोलोदेव की विशाल मूर्ति।

क्या उन लोगों को जो ईसा के आत्म-बलिदान में विश्वास रखते हैं, गांधीको उनसे भेजा हुआ नहीं समझना चाहिए? गांधीजी का नेतृत्व युद्ध के भय और उसके लिए होनेवाली तैयारियों से परेशान दुनिया के लिए एक चुनौती और आशा की एक किरण के समान सामने आता है।

अगर गांधीजी हिटलरों जैसे राष्ट्रीय नेताओं की अपेक्षा अधिक ऊँची सतह पर माने जाते हैं, तो इसका एकमात्र कारण यह है कि उन्होंने राजनैतिक आन्दोलन के क्षेत्र में नैतिक सिद्धान्तों को अपनाया है, बल्कि उनकी दलितों और पीड़ितों के उन सेवकों में गिनती किया जाना भी है, जो ईसा के साथ से नाते जाने पर महान् ठहरते हैं। कुछ भी हो, गांधीजी की स्वराज्य की मांग भारत की पतनकारी दरिद्रता के साथ जबर्दस्त मुकाबिले की आशा से प्रेरित रही है। उनकी ब्रिटिशराज्य की मुख्य आलोचना इस आधार पर नहीं है कि वह ब्रिटिश या विदेशी राज्य है, जितनी इस आधार पर कि उसने गरीबों की अवहेलना की है। जिन बातों की उन्हें निशदिन चिन्ता रहती है, वह है दरिद्रों की, मनुष्यता को ऊँचा उठाना, गांव के मृत-जीवन का पुनरुद्धार और बहिष्कृतों की समाज के अंग के रूप में पुनः प्रतिष्ठा। इन सबमें गांधीजी, कगावा और स्वीट्ज़र के समकक्ष हैं, और वह खुद इस बात को स्वीकार करेंगे कि कम-से-कम कुछ हद तक उनकी प्रेरणा का स्रोत वही है, जोकि इनका है। यहां उनका जीवन और कार्य स्पष्टतः ईसा की, जोकि अपराधियों और पापियों का मित्र कहा जाता है, भावना से मिलता हुआ है। शोषित और पीड़ित वर्ग के प्रति उनकी आत्मोत्सर्गमयी सेवा-निष्ठा में प्रकट होनेवाली उनकी इस वास्तविक महत्ता पर ही उनकी चिरस्थायी कीर्ति कायम रहेगी।

अहिंसा (प्राणों को आघात न पहुंचाना) और सत्याग्रह (आत्मिक बल पर निर्भर रहना) उच्च सिद्धान्त हैं और राजनैतिक व्यवहार के एक नये रूप में उन्होंने कुछ शानदार कोशिशों की प्रेरणा की है। लेकिन दोनों में से कोई भी सिद्धान्त तबतक अपनी वास्तविक अभिव्यक्ति और पूर्ण चरितार्थता को नहीं पहुंचता जबतक कि वह पाप के प्रति क्षमाशीलता में लीन नहीं हो जाता। अपने दोषों को स्वीकार करने की तत्परता और अपने प्रति किये गये अपराधों को क्षमा करने की सदिच्छा के वास्तविक आधार पर ही राजनैतिक स्थिर राष्ट्रीय जीवन और विशुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की नींव खड़ी की जानी चाहिए। गांधीजी का सत्याग्रह क्षमादान की इस व्यवस्था के बिलकुल निकट आता है। लेकिन फिर भी वह उसमें पूर्णरूपेण सन्निहित नहीं है। किसी सुनिश्चित योजना की अपेक्षा दैवयोग के कारण प्रायः दो शताब्दियों से भारत और ग्रेट-ब्रिटेन का भाग्य आश्चर्यजनक रूप में एक दूसरे के साथ गुंथा हुआ है। ब्रिटिश कारनामों में ऐसी बहुत बातें हैं जिन्हें क्षमा कर देने की जरूरत है। साम्राज्यवादिता के कारण भारतीय और ब्रिटिश जनता के सम्बन्ध विषाक्त हो गये हैं और कदाचित् पूर्ण सम्बन्ध-

विच्छेद ही उस विष को दूर कर सकता है। और स्पष्ट ही वह समय आगया है जब कि भारत को अपनी पसन्द के नेताओं की अधीनता में अपने भाग्य का निर्णय कर लेना चाहिए। अवश्य ही अगर हमें जुदा होना हो, तो क्या हम क्षमा और सहिष्णुता की भावना के साथ जुदा नहीं हो सकते? और अगर हम भारतीय और ब्रिटिश दोनों ही सच्चाई के साथ और व्यवहारतः अपराधों की क्षमा के सिद्धान्त में विश्वास रखते हों, तो क्या हमें जुदा होने की कोई आवश्यकता भी है? राष्ट्रीय अहंभाव से पीड़ित और दलित दुनिया को कितना प्रोत्साहन मिले, अगर ब्रिटिश साम्राज्यवाद और अहिंसात्मक असहयोग दोनों ही लुप्त हो सकें और भारत और ब्रिटेन के बीच, पूर्व और पश्चिम के बीच, हार्दिक साझेदारी उनका स्थान ले सके। गांधीजी की इकहत्तरवीं जन्मतिथि मनाने अथवा अपने देशवासियों और मानव-समाज के प्रति की गई उनकी सेवा के लिए ईश्वर का गुण मानने के लिए मेरी कल्पना में मार्ग इससे बढ़कर और कोई मार्ग नहीं हो सकता कि उक्त दोनों ही देशों की जनता के हृदयों में क्षमादान की वह भावना उत्पन्न होने की कल्पना करूँ, जो सम्भव है सच्ची सुन्दर और सुस्थायी मैत्री के रूप में पल्लवित हो।

: ५६ :

गांधीजी—सैंतालीस वर्ष बाद

सर फ्रांसिस यंगहसबैंड, के. सी. एस. आई.

[लन्दन]

महात्मा गांधी अब संसार भर में प्रसिद्ध हो चुके हैं। उनकी यह प्रसिद्धि [illegible]

के प्रवास का प्रश्न उस समय का गर्म सवाल था। नेटाल अपनेको एक समृद्ध उपनिवेश बना रहा था। वह भारतीयों की एक थोड़ी-सी संख्या को आने देने के लिए तैयार था, अपरिमित संख्या को नहीं। दक्षिण अफ्रीकावासियों ने उसे बसाया था और वे उसपर प्रधानतः अपना ही प्रभुत्व रखना चाहते थे। इसलिए जब भारतवासियों ने इस तेजी से आना शुरू किया कि जल्दी ही वहाँ उनकी संख्या अत्यधिक बढ जाती, तो नेटालवासियों ने उसपर रोक लगाने का निश्चय किया। यह मामला ठीकठाक हो सकता था। लेकिन भारतीयों को उस दुर्व्यवहार से, जो उनके साथ किया, गया गहरा असन्तोष हुआ। अमीर और ग़रीब, शिक्षित और अशिक्षित, सबको एकसमान 'कुली' की श्रेणी में रक्खा गया। गाधीजी एक 'कुली' थे, मालदार व्यापारी 'कुली' थे। जिस तरह चीन में सब यूरोपियन 'विदेशी शैतान' कहे जाते थे, वहाँ सब भारतीय 'कुली' थे।

यद्यपि गांधीजी उस समय नवयुवक ही थे, फिर भी भारतीयो के अधिकारो की हिमायत करने में वह भारतीय जनता के नेता बन गये थे। वह डरबन की एक अच्छी सुसज्जित अंग्रेजी कोठी में रहते थे, और एक भोज के समय, जब कि उन्होंने मुझे 'टाइम्स' के सवाददाता के रूप में निमन्त्रित किया था, मैंने उन्हे "एक खास तौर पर बुद्धिमान और सुशिक्षित व्यक्ति" पाया। लेकिन बाद मे उन्होंने जो कुछ किया, उसके लिए महज बुद्धिमत्ता और शिक्षा के अलावा और भी बहुत कुछ चाहिए था। दक्षिण अफ्रीका में फैला हुआ जाति-विद्वेष उस समय भीषण रूप धारण किये हुए था। बोअर और अँग्रेज़ो के बीच, दक्षिण अफ्रीकवासियो और नीग्रो जातियो के बीच, और अंग्रेज और भारतीयो के बीच विरोध फैला हुआ था। एक नौजवान भारतीय वकील का उसके साथ मुकाबिले के लिए खडा होना एक ऐसे साहस और चरित्रबल का परिचायक था, जो कितनी ही बौद्धिक शिक्षा के मुकाबिले में कही अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ।

अपने लाभकारी पेशे का बलिदान करने और भारतीय हितो की हिमायत मे जेल जाने और बदनामी सहने की अपनी तैयारी के कारण वह अपने भारतीय बन्धुओ की प्रशसा के और अन्त में उनकी श्रद्धा के भाजन बन गये।

लेकिन उनका सबसे बडा काम तो उनके अपने ही देश में होने को था। दक्षिण अफ्रीका मे उन्होंने भारतीयो के लिए जो कुछ भी किया, उससे यह जाहिर हो गया था कि वह एक नेता और अगुआ है। जब वह दक्षिण अफ्रीका छोडकर हिन्दुस्तान मे लौटे, तो वहाँ उन्होंने अपने काम के लिए और भी अधिक विस्तृत क्षेत्र पाया। उनका देश एक विदेशी जाति द्वारा शासित था। वह चाहते थे कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी ही शासन करे। हिन्दुस्तानी स्वय हिन्दू और मुसलमान दो बडी जातियो मे बटे हुए थे। वह उनको एक ही भारतीय सूत्र में बांध देना चाहते थे। उनकी अपनी हिन्दू जाति में ही अस्पृश्य जातियो की दुर्दशा, स्त्री-समाज की स्थिति, गावो की

दरिद्रता आदि अनेक प्रकार की बड़ी सामाजिक बुराइयाँ थी। वह इन सबको सुधारना चाहते थे, पर सुधारना चाहते थे अन्दर से।

उन्होंने स्वयं सरकार को चुनौती देने का साहस किया और उसके क़ानून तोड़ने के अपराध में जेल भुगती, मरणासन्न स्थिति पर पहुँच जाने तक उपवास किया। सारे देश का दौरा किया। उन्होंने जन-साधारण का-सा जीवन व्यतीत किया और अछूतों के बीच में और बिलकुल उनके-से बनकर रहे। आत्मबलिदानपूर्ण उनके जीवन ने अबतक अपने देशवासियों पर बिजली प्रभाव छोड़ा है। उनके व्यक्तित्व, उनकी देशभक्ति, उनकी भावना का असर सब जगह देखने में आता है। भारतीय एक महात्मा के रूप में उनकी पूजा करते हैं। बल-प्रयोग की अपेक्षा नैतिक प्रबोधन का उनका सिद्धान्त विजयी सिद्ध हो रहा है। उन्होंने अपने देश को आदरास्पद बना दिया है।

हम अंग्रेज़ सदा यह आशा रक्खेंगे कि भारत साम्राज्य के अन्दर बना रहे। लेकिन कामनवेल्थ में यह आशा करता हूँ कि यह उसकी अपनी इच्छा से ही हो। उसने अपने लिए जो सम्मान प्राप्त कर लिया है, उसी सम्मान के साथ उससे व्यवहार किया जाय।

: ५७ :

देशभक्ति और लोकभावना

सर एल्फ्रेड ज़िमेर्न, एम. ए.

[अध्यापक, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी]

भारत पर यूरोप के राजनैतिक विचारों का बहुत असर पड़ा है। फिर भी [illegible] यूरोप—१९३९ का यूरोप—राजनैतिक दृष्टि [illegible]

[illegible]

के प्रवास का प्रश्न उस समय का गर्म सवाल था। नेटाल अपनेको एक समृद्ध उपनिवेश बना रहा था। वह भारतीयो की एक थोडी-सी संख्या को आने देने के लिए तैयार था, अपरिमित सख्या को नही। दक्षिण अफ्रीकावासियो ने उसे बसाया था और वे उसपर प्रधानत अपना ही प्रभुत्व रखना चाहते थे। इसलिए जब भारतवासियो ने इस तेजी से आना शुरू किया कि जल्दी ही वहाँ उनकी संख्या अत्यधिक बढ जाती, तो नेटालवासियो ने उनपर रोक लगाने का निश्चय किया। यह मामला ठीकठाक हो सकता था। लेकिन भारतीयो को उस दुर्व्यवहार से, जो उनके साथ किया गया गहरा असन्तोष हुआ। अमीर और गरीब, शिक्षित और अशिक्षित, सबको एकसमान 'कुली' की श्रेणी में रक्खा गया। गाधीजी एक 'कुली' थे, मालदार व्यापारी 'कुली' थे। जिस तरह चीन में सब यूरोपियन 'विदेशी शैतान' कहे जाते थे, यहाँ सब भारतीय 'कुली' थे।

यद्यपि गाधीजी उस समय नवयुवक ही थे, फिर भी भारतीयो के अधिकारो की हिमायत करने में वह भारतीय जनता के नेता बन गये थे। वह डरबन की एक अच्छी सुसज्जित अंग्रेजी कोठी में रहते थे, और एक भोज के समय, जब कि उन्होंने मुझे 'टाइम्स' के सवाददाता के रूप में निमन्त्रित किया था, मैंने उन्हे "एक खास तौर पर बुद्धिमान और सुशिक्षित व्यक्ति" पाया। लेकिन बाद में उन्हाने जो कुछ किया, उसके लिए महज बुद्धिमत्ता और शिक्षा के अलावा और भी बहुत कुछ चाहिए था। दक्षिण अफ्रीका में फैला हुआ जाति-विद्वेष उस समय भीषण रूप धारण किये हुए था। बोअर और अँग्रेजो के बीच, दक्षिण अफ्रीकावासियो और नीग्रो जातियो के बीच, और अँग्रेज और भारतीयो के बीच विरोध फैला हुआ था। एक नौजवान भारतीय वकील का उनके साथ [illegible] [illegible] [illegible]

दरिद्रता आदि अनेक प्रकार की बड़ी सामाजिक बुराइयाँ थीं। वह इन सबको सुधारना चाहते थे, पर सुधारना चाहते थे अन्दर से।

उन्होंने स्वयं सरकार को चुनौती देने का साहस किया और उनके क़ानून तोड़ने के अपराध में जेल भुगती। मरणासन्न स्थिति पर पहुँच जाने तक उपवास किया। सारे देश का दौरा किया। उन्होंने जन-साधारण का-सा जीवन व्यतीत किया और अछूतों के बीच में और बिल्कुल उनके-से बनकर रहे। आत्मबलिदानपूर्ण उनके जीवन ने अबतक अपने देशवासियों पर बिजली-प्रभाव छोड़ा है। उनके व्यक्तित्व, उनकी देशभक्ति, उनकी भावना का असर सब जगह देखने में आता है। भारतीय एक महात्मा के रूप में उनकी पूजा करते हैं। बल-प्रयोग की अपेक्षा नैतिक प्रबोधन का उनका सिद्धान्त विजयी सिद्ध हो रहा है। उन्होंने अपने देश को आदरास्पद बना दिया है।

हम अंग्रेज़ सदा यह आशा रक्खेंगे कि भारत साम्राज्य के अन्दर बना रहे। लेकिन अमन्त्रेकम में यह आशा करता हूँ कि यह उसकी अपनी इच्छा से ही हो। उसने अपने लिए जो सम्मान प्राप्त कर लिया है, उसी सम्मान के साथ उससे व्यवहार किया जाय।

: ५७ :

देशभक्ति और लोकभावना

सर एल्फ्रेड ज़िमेर्न, एम. ए.

[अध्यापक, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी]

[illegible] यूरोप के राजनैतिक विचारों का बहुत असर पड़ा है। फिर भी अफ्रीका के [illegible] के सिवा यूरोप—१९३० का यूरोप—राजनैतिक दृष्टि से क्या बाकी बचा [illegible] हुआ नहीं है? राजनीति [illegible] [illegible]

कि आक्रमणकारी लोगों की तरह [illegible] आक्रमणकारी [illegible] में कोई [illegible] सहयोग होने की सम्भावना नहीं है आक्रमणकारी दस फीसदी लोगों पर उसी उसूल क्यों नहीं लागू करते ?

उत्तर है, 'गलत विचार-सरणी।' लन्दन की नब्बे फीसदी में बहुत-सी बुराइयाँ हैं। उनमें से कुछ आलसी हैं, दूसरे कायर हैं और अधिकांश स्वार्थी हैं। लेकिन, अगर इन सबके पीछे एक तरह का 'जोखिम' मौजूद न होता या उन बुराइयों का, जिन्हें कि कुछ भी [illegible] मिल जाता, इतना भयंकर परिणाम न होता जितना कि हम देख रहे हैं। यह नैतिक [illegible] ही है, जो [illegible] शान्ति-व्यवस्था में एकता स्थापित करने के प्रयत्नों को निकम्मा कर देता है। यही मुट्ठीभर आक्रमणकारियों को नेतृत्व पर बलपूर्वक अधिकार करने और उसे अपने कब्जे में रखने का मौका देता है और नब्बे फीसदी के लिए ऐसी दीन-हीन स्थिति में बने रहने का कारण बना है।

अगर हम वर्तमान राजनैतिक समस्या को घटाकर एक अकेले शहर—मान लीजिए लन्दन या दिल्ली—की परिधि में सीमित कर दें, तो हम यह आसानी से देख सकेंगे कि इस तरह के आदमी के साथ, जोकि यूरोप को एक मुसीबत में फँसाये हुए है, व्यवहार करने का सही तरीका क्या है। सब नागरिक ऐसे व्यक्ति को अव्वल नम्बर का सार्वजनिक शत्रु मानेंगे और उनमें बहुतेरे हट्टे-कट्टे लोग अपनेआपको सार्वजनिक शान्ति के लिए जिम्मेदार अधिकारियों को अपनी स्वयं सेवायें देने को तैयार हो जायेंगे। उपद्रवप्रिय दस फीसदी लोगों के बुरे इरादों को समाज के बचे हुए लोगों की सार्वजनिक भावना विफल कर देगी।

वही पद्धति यूरोपीय महाद्वीप के विस्तृत क्षेत्र पर कारगर क्यों नहीं होती ? क्यों हम छोटे राज्यों को भयत्रस्त स्थिति में रहने और कुछ को बेरहमी के साथ मानचित्र पर से मिट जाते हुए देखते हैं ?

उत्तर है, क्योंकि आज की दुनिया में और खासकर यूरोप में पर्याप्त लोकभावना नहीं है।

लेकिन क्या यूरोप-निवासी, प्रायः बिना किसी अपवाद के अत्यन्त देशभक्त नहीं हैं ? क्या वे एकसाथ अपने-अपने देश के लिए मर-मिटने को तैयार नहीं हैं ? क्या एक पीढ़ी पहले उन्होंने बहुत भारी संख्या में ऐसा नहीं किया था ?

अवश्य किया था लेकिन लोक-भावना और देशभक्ति-भावना एक ही तरह की वस्तु नहीं है। लन्दन या दिल्ली में होनेवाली डकैती को वहाँ की जनता अपनी सार्वजनिक भावना से रोक देती है। क्या ऐसी सार्वजनिक भावना सारी दुनिया में या यूरोप में मौजूद है ? इसे ही अगर दूसरे शब्दों में रक्खा जाय तो, क्या वास्तव में कोई विश्व-समाज या यूरोपीय समाज है ?

एकबारगी इस रूप में प्रश्न किया जाने पर यह स्पष्ट है कि उसका उत्तर

देश-भावना सुगम है। लोक-भावना कठिन है। विश्व-बन्धुत्व एक दुष्कर भावना है।

यह तो हुआ प्रथा की कठिनाई के सम्बन्ध में। अब दूसरी को ले। अधिक व्यापक सार्वजनिक भावना के मार्ग की दूसरी रुकावट शुद्ध बौद्धिक है।

इस क्षेत्र की कठिनाई का सार यह है कि वर्तमान यूरोप के राजनैतिक सिद्धात—वे सिद्धात जिनमे कि यूरोप के राजनीतिज्ञ और नागरिक पले है—पुराने पड गये है। वे इस युग की स्थिति के अनुकूल नही है। कोई भी राजनैतिक सिद्धान्त पूर्ण या पवित्र नही कहा जा सकता। राजनैतिक सिद्धान्त की सब रचनाओ का आधार इसके सिवाय और कुछ नही है कि उसके दो महान् आधारभूत तत्त्व, न्याय और स्वाधीनता, किस स्थिति मे किस प्रकार प्रयुक्त होते है। वर्तमान यूरोप का यह दुर्भाग्य है कि उसकी जनता के मस्तिष्क और हृदय पर आज जिन धारणाओ का साम्राज्य है वे वास्तविक स्थिति के अनुपयुक्त है। वे उस ज़माने के बने हुए है जब प्रत्येक व्यक्तिगत राजनैतिक इकाई अपने ही में मस्त और निश्चय ही, एक काफी हद तक, आर्थिक दृष्टि से स्वय तुष्ट रहने में समर्थ हो सकती थी। "Sovereignty" (एकच्छत्र सत्ता) शब्द, जो आज भी यूरोपीय राजनीतिज्ञो और पार्लमेण्टेरियनो को प्रिय है, सोलहवी सदी की उपज है। अवश्य ही उस समय वह नूतन और क्रान्तिकारी था। वह उस ज़माने की परिस्थिति के उपयुक्त था। आज की परिस्थिति के वह उपयुक्त नहीं है।

यूरोप के देश-प्रेम—यानी राष्ट्र की ममता—की मिश्रित भावना में यह दूसरा तत्त्व इतना पुराना नही है। अपने वर्तमान यूरोपीय रूप में वह अठारहवी सदी के अन्तिम चरण से पुराना नही है। फ्रास की राज्यक्रान्ति से कुछ वर्ष पहले ही राजनैतिक विचारको ने राज्य और राष्ट्र को अभिन्न बनाना शुरू किया। फ्रास की क्रान्ति ने फिर उस अभेद को पकडा, जकडा और उसे यूरोपभर के 'प्रगति' वादी दल का प्रचलित और कट्टर सिद्धान्त बना दिया। Nation State (राष्ट्र शासन) के सिद्धान्तवादियो ने इस बात की कुछ परवा नही की कि एक ऐसे महाद्वीप की परिस्थिति के लिए, जहाँ कि राष्ट्र अविभाज्य रूप से एक-दूसरे में मिले-जुले रहते है और जहाँ कुछ सबसे अधिक प्रबल राष्ट्रो की आबादी कुछ लाख से अधिक नही है, उक्त सिद्धान्त सर्वथा अनुपयुक्त है। इसीमे यूरोप का कोई टुकडा लीजिए, महल और झोपडे का अजब जमघट आपको मिलेगा। महलो को हम 'बडे राज्य' कहते है झोपडो को 'छोटे राज्य', पर दोनो में ही रहनेवालो को अपनी हिफाज़त की चिन्ता है। सबको समान सुरक्षा चाहिए। एक-सी पुलिस चाहिए, आग-बचाव के एक-से साधन—आने-जाने को एक सडक, एक मार्ग।

जबतक वे अपनेमे नागरिकता का भाव पैदा न कर लेगे तबतक ये चीज़ें न पा सकेगे। कुछ जगह जो यातनायें सहनी पड रही है और सर्वत्र जो व्यग्रता फैली हुई है, उसके कारण उनमे यह चेतनता पैदा होती जा रही है।

तब गांधीजी और सत्याग्रह का उदय हुआ। उन्होंने सिद्ध किया कि अहिंसा में निःशस्त्र प्रतिरोध की शक्ति है। ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह उनके सिद्धान्तों के अनुकूल, किन्तु वस्तुतः उन लोगों पर ही जो ईसाइयत के पुरातन सिद्धान्तों से हटकर और हिंसा पर आधारित आज के मत में रम चुके थे, मानव-समाज का नवनिर्माण करने जाते हैं। जर्मनी में भी इन सिद्धान्तों में निष्ठा रखनेवाले लोग विद्यमान थे। कुर्ट आइजनार, गुस्ताव लान्डॉयर, कार्ल फान ओसिट्ज़्की, एरिक मूलमान और थियोडार लेसिंग जैसे व्यक्ति कुछ और नहीं चाहते थे। जब गांधीजी हिन्दुस्तान में सफल हो गये तो वह जर्मनी में असफल हो गये थे ?

अब हम इस प्रयास का परिणाम जानते ही हैं। यह सब-के-सब बल-प्रयोग के विरोधी—जिनके नाम आदरपूर्वक ऊपर लिये गये हैं—नृशंसतापूर्वक मार डाले जाकर एक ही कब्र में दबे पड़े हैं। हाँ, ओसिट्ज़्की के मामले में तो हत्यारों की गोली की जगह क्षय ने लेली थी। परन्तु ये सब हत्याकारी—उदाहरण के लिए राटे-नाउ के हत्यारे या मात्तेओत्ति की हत्या को उत्तेजन देनेवाले—आदर और मान का उपयोग करते हैं। जहाँ एक समय जनमत में ही आध्यात्मिकता का राज्य होगया था वहाँ अब सिंहासन पर पशुबल का सम्मान होरहा है, उसकी पूजा हो रही है और उसे चिरञ्जीवी बनाया जा रहा है। प्रकृति और प्राकृतिक वस्तुओं के झूठे आधार बताये गये। जीवन-संघर्ष के नाम से चलनेवाले सिद्धान्त की इकतरफी व्याख्या हुई और दुहाई दी गई कि उससे छँटाव होगा और ऐसे ही मनुष्य उन्नत होगा। और इस प्रकार का समर्थन लेकर स्तूप की भाँति चंगेजखाँ के नये-नये संस्करण उठ रहे हैं। आगे चल नये के नाम पर उन वाद-प्रवादों से पढ़ाई की किताबों में जहर भरा जाता है जो मैसोपोटामिया के हम्मूरब्बी के नीति-संग्रह के वक्त ही झूठे और जीर्ण पड़ चुके थे।

हमें यहाँ यह दिखाने के लिए आधुनिक जीव-विज्ञान का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं कि पशु-बल के पुजारी के सिद्धान्त मिथ्या हैं और प्रकृति के बारे में उनके लगाये हुए अर्थ भी त्रुटिपूर्ण हैं। आज हम गांधी को ईश्वर बधाई देंगे कि वह हिन्दुस्तान में जन्मे और रह रहे हैं और अंग्रेजों से उनका व्यवहार पड़ा है, मध्य-यूरोपियनों से नहीं, क्योंकि उन पशुओं से जो आज वहाँ राज्य कर रहे हैं उनको मानवता के प्रति कुछ भी आदर की आशा नहीं की जा सकती, मगर हम यहाँ उनकी ओर दुख और अनपेक्षणीय कृतज्ञता से देखते हैं। बीस वर्ष पहले उस तेज-बिम्ब को जो उनके चारों ओर था, हमने नवयुग का उषाकाल समझा था। आज हम असमंजस में हैं कि कहीं वह उस युग का मध्यालोक तो नहीं था, जो विश्वयुद्ध के साथ ही बीत गया और जिसके पीछे ऐसी नृशंस बर्बरता का युग आया जिसकी हमने कल्पना तक नहीं की थी। उन स्थानों तक में, जहाँ यहूदी पैगम्बर और ईसाई-मत के दिव्य संस्थापक रहते थे और विचरण करते थे, आज 'त्रास' का राज्य है, वहाँ शस्त्रहीन निर्बलों का रक्तपान

जबर्दस्त आन्दोलन का सूत्रपात किया है कि इधर दो हजार वर्षों से विश्व ने जिसके तुल्य और कुछ नही देखा।' ऐसे समय मे जब एक ओर दूसरे देशो में नेता लोग या तो मानवी स्वभाव जैसी चीज को या विश्वराज्य की नैतिक सत्ता को ललकार रहे थे या फिर समाज के एक वर्ग को मटियामेट करके दूसरे वर्ग के प्रति न्याय करने का प्रयत्न कर रहे थे, तब दूसरी ओर गाधीजी मानव-मात्र की एकता और स्वर्गीय राज्य (रामराज्य) के नाम पर भारत को दूसरे राष्ट्र की अधीनता से तथा भारत की किसी भी जाति को दूसरी जाति की गुलामी से मुक्त करने के लिए धर्मयुद्ध करने में व्यस्त थे। और इसके अलावा सब धर्मों के परमध्येय 'सत्य' तथा परिपूर्णता प्राप्त करने के उसके आग्रहो की मानवात्मा मे जो प्रतिध्वनि होती है उसके सम्बन्ध में 'दर्शनशास्त्र ने जो कुछ सर्वश्रेष्ठ कहा है, उसको, उन्होंने 'कालातीत' भारतदेश ही मे नही, ससार भर मे युगयुगान्तर तक उल्लेखनीय रूप से जीवन मे प्रत्यक्ष कर दिखाया है।'

मैं भला इन पक्तियो मे ऐसा क्या कह सकता हूँ जो इसी ग्रन्थ में अन्यत्र अधिक सुन्दरता से न कह दिया गया होगा ? पर हिन्दू-शास्त्र की सारभूत शिक्षा में, और विशेषतया गाधीजी की उसकी व्याख्या मे, एक शब्द है, जो भ्रमात्मक या अस्पष्ट होने के कारण उन लोगो के गाधीजी की व्याख्या को एकदम स्वीकार कर लेने के मार्ग में रुकावट बन सकता है, जो पश्चिम की वैज्ञानिक और व्यावहारिक भावना से प्रेरित हुए है और उसी पर सक्षिप्त विवेचन के रूप मे कुछ कहने में इस अवसर का उपयोग मैं करना चाहूँगा।

चरम-सत्य के शोध तथा अध्ययन मे प्रोत्साहन देने के उद्देश से सुब्रह्मण्य अय्यर द्वारा स्थापित ब्रिटिश इस्टिट्यूट ऑव फिलासफी की एक सभा में हाल में सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने एक व्याख्यान दिया था। उस व्याख्यान के अवसर पर मुझको वह बात सूझी थी। वक्ता का परिचय कराते हुए सभापति ने कुछ लोगो की इस कठिनाई की तरफ ध्यान दिलाया था जो सस्थापक के 'सत्य' के साथ सामान्य दर्शन-शास्त्र के 'सत्य' (घटना के साथ मत का ऐक्य) का मेल बैठाने में हुआ करती है। इसके विरोध में ऐसा प्रतीत होता था कि पूर्वोक्त 'सत्य' शब्द किसी कदर अस्पष्ट-भाव में इस्तेमाल किया गया है। उसमे बिलकुल भिन्न धारणा सामाजिक नीति-न्याय और सदाचार का ही समावेश नही होता था, बल्कि यह भी उसमे सभव बनता था कि सर्वथा समाधानकारक और अन्तिम सत्य का व्यक्तरूप कोई हो सकता और पाया जा सकता है। इसके जवाब मे वक्ता को यह दिखाने में दिक्कत नही हुई कि सत्य की धारणा की दार्शनिक परिमाप और मर्यादा के पक्ष मे जो कुछ भी कहा जाय, पर खुद पश्चिमी साहित्य उस शब्द के दूसरे व्यापक उपयोग को स्वीकार करता है। सन्त पुरुषो की वाणियो और आर्षग्रन्थो मे वैसे प्रयोग बार-बार दोहराये हुए मिलते है। उदाहरण के लिए यह

: ३ :

आर्थर एच० कॉम्पटन

पी-एच. डी., एल-एल डी.

[प्रोफेसर ऑव फिजिक्स, शिकागो यूनिवर्सिटी]

आपको अवसर मिले तो मेरी इच्छा है कि आप गांधीजी को मेरे परम आदर के भाव पहुँचा दें। उनका जीवन दुनिया के लिए देन है। इस जमाने में जबकि यह परम अनिवार्य है कि हम मनुष्य-जाति की जरूरी समस्याओं को शान्ति के उपाय से सुलझाने का रास्ता पायें, गांधीजी ने भारतवासियों को आत्म-साक्षात्कार में मदद पहुँचाई है। ये अधिक शान्तिपूर्ण उपाय किस प्रकार कारगर हो सकते हैं, यह दिखाने में वह अग्रणी रहे हैं।

२१. सर मिरजा एम. इस्माइल—आप मैसूर राज्य के दीवान हैं। लन्दन में हुई तीनों भारतीय गोलमेज परिषदों में भारत के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि बनकर सम्मिलित हुए थे।

२२. सी. ई. एम. जोड—आप यूनिवर्सिटी ऑव लंदन के बर्कबैक कालेज में दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान के मुख्याध्यापक हैं। अंग्रेजी में दर्शनशास्त्र तथा सामाजिक तत्त्वज्ञान के अनेक अंगों पर प्रामाणिक पुस्तकें लिखी हैं।

२३. रूफस एम. जोन्स—आप हैवरफोर्ड कालेज में दर्शन शास्त्र के अध्यापक हैं। 'दी अमेरिकन फ्रेंड' और 'प्रेजेण्ट डे पेपर्स' के सम्पादक रहे हैं।

२४. स्टीफ़ेन हॉबहाउस—आप इंग्लैंड के प्रभावशाली ईसाई शान्तिवादी हैं।

२५. ए. बेरीडेल कीथ—आप एडिनबरा यूनिवर्सिटी में संस्कृत और दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं। १९०७ में हुई कोलोनियल नेवीगेशन कान्फ्रेंस में आपने स्काटलैंड की सरकार का प्रतिनिधित्व किया था। ब्रिटिश साम्राज्य तथा उसके उपनिवेशों के विधान के आप सर्वमान्य प्रामाणिक विशेषज्ञ हैं।

२६. काउण्ट हरमन काइजरलिंग—आप डार्मस्टाट (जर्मनी) के 'स्कूल ऑव विज़डम' के संस्थापक हैं। जर्मनी के प्रधान विचारकों में से हैं और दार्शनिक क्षेत्र में एक नवीन विचारधारा के निर्माता हैं।

२७. जार्ज लैन्सबरी—आप लन्दन की पार्लमेंट के सम्मान्य सदस्य हैं। कुछ समय पूर्व तक आप लेबर पार्टी के प्रधान और पार्लमेण्ट में विरोधी दल के नेता रह चुके हैं। वहाँ के सार्वजनिक जीवन में आपका बहुत प्रभाव है।

२८. प्रोफ़ेसर जॉन मैकमरे—आप [illegible] के [illegible] यूनिवर्सिटी [illegible]

२९. [illegible] सालवेटोर [illegible]

[illegible]

१०. **डा० भगवानदास**—आप दर्शन शास्त्र के प्रगाढ पण्डित हैं। प्राचीन धार्मिक ग्रंथो का आपका अध्ययन गहन है। आपका जीवन अत्यन्त सात्विक, सरल और सीधा-सादा है। भारत के इनेगिने विद्वानो मे से एक है।

११. **अलबर्ट आइन्स्टाइन**—ससार के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों मे आपकी गणना है। भौतिक शास्त्र के लिए आपको सन् १९३१ मे नोबल पुरस्कार मिल चुका है। आपके सापेक्षवाद के मूल सिद्धान्त ने विज्ञान मे हलचल मचा दी है। यहूदी होने के कारण आप जर्मनी से निर्वासित कर दिये गए है।

१२. **रिचर्ड बी. ग्रेग**—आप अमेरिका के प्रसिद्ध वकील और अर्थशास्त्री है। सन् १९२५-२६ मे सत्याग्रह-आश्रम मे रह चुके है। चर्खा और खादी के विषय में वहाँ आपने शास्त्रीय अध्ययन किया और खादी के अर्थ शास्त्र पर आपने एक पुस्तक लिखी है। अमेरिका में महात्माजी के विचारो के—विशेषकर सत्याग्रह और अहिंसा के—आप समर्थक है तथा गाधी-विचार-वादियो के नेता और पथ-प्रदर्शक है। आपकी नई पुस्तक 'दि पावर ऑव नॉन वायलेंस' का अनुवाद शीघ्र ही मण्डल से प्रकाशित हो रहा है।

१३. **जेराल्ड हेयर्ड**—आप अमेरिका-निवासी है। आपके 'आश्चर्यजनक विश्व' और 'साइंस इन दी मेकिंग' पर हुए ब्राडकास्ट बहुत प्रसिद्ध है।

१४. **कार्ल हीथ**—आप क्वेकर सम्प्रदाय के है। विलायत के गाधी-विचार-वादियों में अग्रणी है। इग्लैण्ड के शासनकर्त्ताओ और राजनीतिज्ञों पर आपका बड़ा प्रभाव है।

१५. **विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग**—आप हारवर्ड यूनिवर्सिटी मे दर्शन-शास्त्र के अध्यापक है।

१६. **पादरी जान हेस होम्स**—अब न्यूयार्क के कम्यूनिटी चर्च के मिनिस्टर है। 'यूनिटी' पत्र का आप सपादन करते है। अमरीका मे गाधीजी के सिद्धान्तो की ओर लोगो का ध्यान खीचने मे आप अग्रणी है।

१७. **आर. एफ. अल्फ्रेड हार्नले**—आप विटवाटर्सरैण्ड, (दक्षिणी अफ्रीका) यूनिवर्सिटी म दर्शन-शास्त्र के अध्यापक और दक्षिणी अफ्रीका के रेस रिलेशन इन्स्टीट्यूट के प्रधान है।

१८. **आनरेबल जान एच. हाफमेयर**—आप विटवाटर्सरैण्ड यूनिवर्सिटी (दक्षिण अफ्रीका) के चान्सलर है।

१९. **लारेंस हाउसमैन**—आप प्रसिद्ध [illegible], कलाकार और गणित के विद्वान है।

२०. **जान एस. हॉयलण्ड**—आप इंग्लैंड की वुडब्रुक बस्ती में अध्यापक है। नागपुर के हिस्लाप कालेज म इतिहास और अंग्रेजी के अध्यापक रह चुके है। भारत के [illegible] के साथ आपने 'फेयर [illegible]' लिखा।

३२. **आर्थर मूर**—आप सुप्रसिद्ध अंग्रेजी के पत्र 'स्टेट्समैन' के प्रधान सपादक है।

३३. **गिलबर्ट मरे**—आप ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी मे अध्यापक है। कुछ काल तक आप ग्लासगो यूनिवर्सिटी में ग्रीक साहित्य के अध्यापक रहे है। यूरोप के प्राचीन साहित्य के प्रधान विद्वान माने जाते है।

३४. **योन नागूची**—आप जापान के प्रसिद्ध राजकवि है। येकियो यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी के प्रोफेसर है। जापानी काव्य साहित्य पर आपने कई पुस्तके अंग्रेज़ी में लिखी है।

३५. **डा० पट्टाभि सीतारामैया**—देश के प्रमुख कांग्रेसी नेताओ में से आप एक है। प्रभावशाली लेखक और वक्ता है। कांग्रेस महासमिति के सदस्य रह चुके है।

३६. **कुमारी मॉड डी. पेट्री**—आप सुप्रसिद्ध लेखिका और कैथलिक मॉडर्निस्ट है

३७. **हेनरी एस. एल. पोलक**—आप इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध वकील है। दक्षिण अफ्रीका में महात्माजी के साथी रह चुके है और सत्याग्रह आन्दोलन में जेल भी जा चुके है। महात्माजी की आत्मकथा में आपका ज़िक्र आया है।

३८. **लिवलिन पाविस**—आप स्वीज़रलैण्ड में रहते है। कुछ वर्षो तक न्यूयार्क शहर में जर्नलिस्ट रहे है।

३९. **एम. क्युओ तै-शी**—आप लन्दन में चीन के प्रतिनिधि है।

४०. **सर अब्दुल कादिर**—आप भारत-मंत्री के सलाहकार है। पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष थे। राष्ट्र-सघ की सातवी असेम्बली में भारत के प्रतिनिधि बनकर गए। पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य रह चुके है।

४१. **डा० राजेन्द्रप्रसाद**—आप देश के प्रमुख राष्ट्रीय नेताओ में से एक है। भारतीय राष्ट्रीय महासभा के सभापति रह चुके है। गांधी विचार-धारा के पूर्णरूपेण समर्थक है। आपका व्यक्तित्व अत्यन्त सरल है।

४२. **रेजिनाल्ड रेनाल्डस्**—आप अंग्रेज़ युवक और विचारक है। विलायत के समाजवादी लेखको में आपका विशिष्ट स्थान है। सन् १९३० में सत्याग्रह का आन्दोलन प्रारम्भ होते समय आप भारत में ही थे और वाइसराय के नाम महात्माजी का प्रसिद्ध पत्र लेकर दिल्ली आये थे।

४३. **रोम्याँ रोलाँ**—आप सुप्रसिद्ध फ्रेंच लेखक है। सन् १९१५ में साहित्य पर आपको नोबल पुरस्कार मिला। आपने फ्रेंच साहित्य को एक नवीन दिशा दी है।

४४. **मिस मॉड रॉयडन**—आप स्वर्गीय सर थामस रॉयडन की सुपुत्री है। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी एक्स्टेन्शन डेलीगेसी में अंग्रेजी साहित्य की अध्यापिका रह चुकी है।

४५. **वाइकाउण्ट सेम्युअल**—आप माउण्ट कार्मेल तथा टोक्सटेथ (लिवरपूल) के सर्व प्रथम वाइकाउण्ट बनाये गये। लंकास्टर की डची के चांसलर रह चुके है। फिलासफी के ब्रिटिश इन्स्टीट्यूशन के अध्यक्ष है। ब्रिटिश लिबरल पार्टी के प्रसिद्ध नेताओ में से एक है।

५८. **आरनल्ड ज़्वीग**—आप प्रसिद्ध उपन्यासकार और नाटककार हैं।

५९. **लार्ड हैलीफ़ैक्स**—आप इंग्लैण्ड में वैदेशिक सचिव हैं और इससे पहले युद्ध-सचिव भी रहे हैं। १९२६–३१ में आप भारत के वाइसराय, १९३२–३५ में बोर्ड ऑव एडूकेशन के अध्यक्ष रहे हैं। सन् १९३१ में गांधीजी का आपसे ही समझौता हुआ था जो गांधी-अर्विन पैक्ट कहलाता है।

६०. **अप्टन सिंक्लेयर**—आप सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक हैं। समाजवादी विचारों को फैलाने मे आपने बहुत परिश्रम किया है। आपको साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार भी मिल चुका है।

६१. **ए० एच० काम्पटन**—आप शिकागो यूनिवर्सिटी में फिजिक्स के अध्यापक हैं। पजाब यूनिवर्सिटी के विशेष लेक्चरार और शिकागो यूनिवर्सिटी क्लब के अध्यक्ष रहे हैं। फिजिक्स में आपको नोबल पुरस्कार मिला है।

६२. **जे० एच० मुरहैड**—आप बर्मिंघम यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक थे। ग्लास्गो यूनिवर्सिटी में लेटिन के अध्यापक रहे थे।

आभार

सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने मेरे इकहत्तरवें जन्मदिन को खास महत्त्व दे डाला है। उन्होंने मुझे अपनी पुस्तक भेजी है, जिसमें मेरे प्रति परिचित-अपरिचित मित्रों की प्रशंसायें हैं। साथ का पत्र भेजते हुए उसमें कुछ और भी बड़ाई की कृपा की है। नहीं जानता कि इस ग्रन्थ में जमा किये गये उन सब बधाई के लेखों को पढ़ने का समय मैं कब पाऊँगा। यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि ईश्वर मुझे शक्ति दे कि लेखकों के मन में जो भी तस्वीर मेरी है, मैं वैसा बन सकूँ। श्री सर्वपल्ली और उन सबको, जिनके आशीर्वाद और बधाइयाँ मुझे प्राप्त हुई हैं, मैं धन्यवाद देता हूँ। निजी तौर पर कृतज्ञता भेज सकूँ, यह मेरे लिए सम्भव नहीं है।

पर प्रशंसकों को एक चेतावनी मैं ज़रूर देना चाहूँगा। कुछ लोग सार्वजनिक स्थानों पर मेरी मूर्ति खड़ी करना चाहते हैं, कुछ तस्वीरें चाहते हैं, और कई हैं जो जन्म-दिन को खास छुट्टी का दिन बना देना चाहते हैं। पर श्री च० राजगोपालाचारी मुझे अच्छी तरह जानते हैं। सो उन्होंने दानिशमन्दी के साथ मेरे जन्म-दिन को खास छुट्टी का दिन बनाने की बात को रद कर दिया है। आजकल भेदभाव और तनातनी जारी है। मुझे गहरी लज्जा अनुभव होगी, अगर मेरा नाम किसी तरह भी इस भेदभाव को बढ़ाने का मौक़ा बना। ऐसे अवसर को न आने देना देश की और मेरी सच्ची सेवा होगी। मूर्ति, चित्र या और ऐसी चीज़ों का आज दिन नहीं है। जिस एक प्रशंसा को मैं पसन्द करूँगा और क़ीमती समझूँगा वह तो उन प्रवृत्तियों में योग देना है, जिनमें मेरी ज़िन्दगी लग गई है। हरेक वह स्त्री-पुरुष, जो साम्प्रदायिक मेल पैदा करने या अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने या गाँव के हित-साधन करने में कोई एक भी काम करता है, वह मुझे सच्चा सुख और शान्ति पहुँचाता है। [illegible]

रेल से—दिल्ली जाते हुए

१ अक्तूबर १९[illegible]

—मो० क० गांधी